Digitized by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साधु दर्शन
एवम्
सत्प्रसंग

Q:332(R292)
152N6.3

म.म.पं. गोपीनाथ कविराज

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Q:332 (R292) 8596
152 NG
Gopinath Kaviraj
Sadhudarshan evam
Satprasang

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Q:332(K292)
152N6.3

S.J.V.J. PRATISHTHAN
LIBRARY

SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
(LIBRARY)
JANGAMAWADIMATH, VARANASI

❁ ❁ ❁ ❁ ❁

Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साधुदर्शन एवम् सत्प्रसंग

[तृतीय भाग]

मूल बंगला से अनूदित

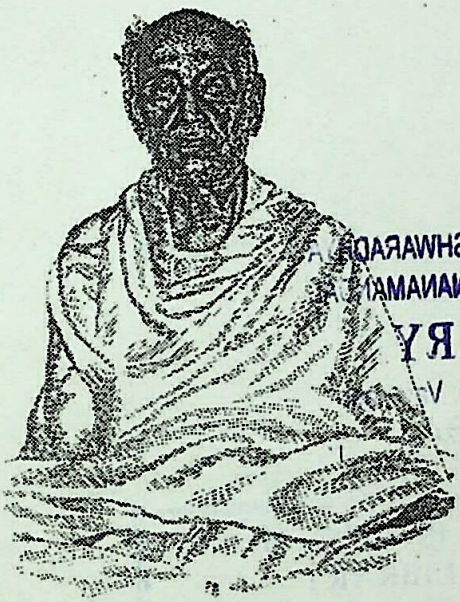

LIBRARY

महामहोपाध्याय

श्री पं० गोपीनाथ कविराज

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

SADHUDARSHAN EVAM SATPRASANG
Part : 3

by

M.M. Pt. Gopinath Kaviraj

1996

Q:332(R292)
152N6.3

अनुवादक

विश्वनाथ मुखर्जी

GADGURU VISHWARADHYA
VA SIMHASAN JNANAMANDAL
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No.....8596.....

द्वितीय संस्करण : १९९६ ई०

S.J.V.J. PRATISHTHAN
LIBRARY
Jangamawadimath, Varanasi
Acc. No. 143

प्रकाशक

विश्वविद्यालय प्रकाशन

विशालाक्षी भवन, चौक, वाराणसी-१

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रानिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

विशालाक्षी भवन, चौक, वाराणसी-१

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निवेदन

भारतीय मनीषा के अन्यतम विद्वान् स्व० महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथजी कविराज एक विभूति थे। उनका चिन्तन, मनन, अध्ययन सभी जीवन से स्फूर्त था। उन्हें ग्रन्थों, विद्वानों का ही सम्पर्क नहीं प्राप्त हुआ, अनेक संतों, महात्माओं तथा अलौकिक व्यक्तियों का सान्निध्य भी मिला। ग्रन्थों में प्रगट सत्य को उन्होंने साक्षात् देखा। अपने गुरु सूर्यविज्ञान-प्रणेता स्वामी विशुद्धानन्दजी से प्रज्ञा की सभी दिशाओं में आपने प्रवेश किया। स्वाध्याय तथा साधना आपके जीवन के चरम लक्ष्य थे। इसीलिए आपने समय से पूर्व सेवा से अवकाश ग्रहण किया और जीवन पर्यन्त अध्ययन, मनन एवं चिन्तन स्वाध्याय में लगे रहे।

'साधुदर्शन सत्प्रसंग' में उन संतों महात्माओं के संस्मरण हैं जिनसे कविराजजी का सम्पर्क हुआ। अत्यन्त निष्ठा पूर्वक कविराजजी ने संतों-महात्माओं के प्रेरक प्रसंगों की रचना की है। बंगला में ५ भागों में ये सत्प्रसंग प्रकाशित हुए हैं। हिन्दी में प्रथम और द्वितीय भाग संयुक्त रूप से प्रकाशित हो चुके हैं। इस भाग में बंगला के ३, ४, तथा ५ भागों में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से सभी सत्प्रसंग एकत्र कर प्रकाशित किये गये हैं। आशा है सहृदय पाठकों को इन सत्प्रसंगों से प्रेरणा मिलेगी।

श्री कविराज जी के पौत्र श्री शशिशेखर कविराज के हम बहुत आभारी हैं जिन्होंने हमें इसे प्रकाशन करने की अनुमति प्रदान की।

—प्रकाशक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुक्रम

१.	रामदयाल मजुमदार	१
२.	पालधी महाशय	९
३.	तारकेश्वर माँ	५
४.	सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय	१७
५.	जगदीश मुखोपाध्याय	३२
६.	टीला बाबा रासबिहारी साधु	३४
७.	स्वामी ब्रह्मानन्द	३५
८.	नवीनानन्द	३७
९.	अन्ध मास्टर	४०
१०.	माधव पागला	४५
११.	दिगम्बर बाबा	५८
१२.	लोकनाथ ब्रह्मचारी	६७
१३.	हरिहर बाबा	७२
१४.	परमहंस विशुद्धानन्दजी महाराज	८७
१४.	(अ) आनन्दमयी माँ	१३१
१५.	मधुसूदन ओझा	१४५
१६.	मेहेर बाबा	१५१

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१७. सन्तदास बाबा जी १५५
१८. शोभा माँ १६०
१९. भोलागिरि १६७
२०. योगप्रकाश ब्रह्मचारी १७१
२१. बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ १७६
२२. माता चैतन्य १८०
२३. प्रेमानन्द तीर्थ स्वामी १८३
२४. बालानन्द ब्रह्मचारी १९५
२५. भूपेन्द्रनाथ सान्याल १९९
२६. आचार्य ब्रजेन्द्रनाथ शील २०२

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१

रामदयाल मजुमदार

जाग्रत शक्ति के तेज से उद्दीप्त सत्य की ऐसी महिमा है जो उसका स्निग्ध प्रकाश काल और देश के विपुल व्यवधान को भेद करता हुआ, अपने प्रभाव का विस्तार करने में समर्थ है। दयाल महाराज की वह सौम्य मधुर करुणा मिश्रित मुखच्छवि किंचिदधिक अर्द्ध शताब्दी की यवनिका के भीतर से, आज भी मेरी अन्तर्दृष्टि के सामने उज्ज्वल रूप में झिलमिला उठती है। अन्तर के स्मृति-फलक में वह म्लान नहीं हुई है। जीवन के प्रथम भावोन्मेषकाल में, कैशोर और तारुण्य के शुभ मुहूर्त के समय, उनके दर्शन का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। यह दर्शन मेरे भावी जीवन के मानस-पट में अंकित हो गया था, इसीलिए आज भी उन्हें अपने हृदय में चिरस्मरणीय बना रखा है।

सन् १९०७ के ज्येष्ठ मास की बात है। सन् १९०६ में ढाका जुबली स्कूल से एंट्रेंस परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद दुरारोग मलेरिया से पीड़ित होकर जीर्ण-शीर्ण हो गया था। ढाका में पढ़ने गया था और कालेज में भर्ती भी हुआ था। किन्तु बार-बार बुखार से पीड़ित होने के कारण एक साल के लिए अध्ययन से विरत होना पड़ा और हवा बदलने के कारण सामयिक रूप से स्वस्थ हो गया। स्वयं मेरी इच्छा थी और कुछ लोगों ने परामर्श भी दिया था कि पछाँह के किसी स्वास्थ्यकर स्थान में जाकर अध्ययन करूँ तो ठीक रहेगा। कहाँ जाऊँगा, यह निश्चित नहीं था। कारण, आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि किसी व्ययसाध्य स्थान में जाना मेरे लिए सुविधाजनक होता। यही वजह है कि कलकत्ता में भी डेरा नहीं जमा सका। इसके अलावा वहाँ शुद्ध जलवायु का अभाव था जिसके कारण ज्वर का पुनः आक्रमण होने की संभावना थी। अपने एक मित्र के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साथ सन् १९०७ के ज्येष्ठ मास में घर से पैदल टाँगाइल चला आया। टाँगाइल मेरे अपने गाँव दान्या (जिला मैमनसिंह) से लगभग तीन या चार मील की दूरी पर है। यद्यपि टाँगाइल में भी कालेज था, प्रमथ मन्मथ कालेज (P. M. College)। वहाँ अध्ययन की सुविधा कितनी प्राप्त होगी, इसकी जानकारी करने के लिए मैं नहीं गया था। एक विशिष्ट महात्मा का दर्शन करने गया था। यह महात्मा थे—उक्त कालेज के अध्यक्ष दयाल महाराज यानी रामदयाल मजुमदार महाशय।

मजुमदार महाशय के बारे में मैं पहले से ही कुछ जानता था। पूजनीय श्रीयुक्त केदारनाथ सांख्य-तीर्थ महाशय की जबानी उनके बारे में पहले से कुछ सुना था। पूज्यपाद सांख्यतीर्थ महाशय मुझे बालकाल्य से ही स्नेह देते आये हैं और मैं स्वयं उन्हें हमेशा भक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से देखता रहा। केवल यहीं नहीं, उनके पितृदेव का भी मेरे प्रति अकृत्रिम स्नेह था। इसके अलावा उनकी बहन के साथ मेरी पूजनीय माँ की गहरी प्रीति थी। फलतः मजुमदार महाशय का नाम और महात्म्य मेरे निकट अज्ञात नहीं था। किन्तु प्रत्यक्ष रूप से दर्शन करने का यह प्रथम अवसर था। उन्हें सूचित करते ही उनका दर्शन प्राप्त हुआ। उनका दर्शन करते ही उनके चरणों में मेरा मस्तक झुक गया। हृदय से भाव-भक्ति का उच्छ्वास मानो अपने आप प्रकट होने लगा। अपना नाम बताया तो उन्होंने तुरत पहचान लिया। धामराई के कौशिक मोहन दादा और कांठालिया के पूजनीय सांख्यतीर्थ महाशय से वे इसके पूर्व मेरे बारे में जानकारी प्राप्त कर चुके थे। मजुमदार महाशय मेरे स्वर्गीय पिता के सहपाठी और अन्तरंग मित्र में थे। मेरी विधवा माता और मेरी शिक्षा के सम्बन्ध में सारी बातें जानते हैं, ऐसा मैंने अनुमान किया। स्वयं मैं भी उन्हें देखकर जैसे अपने जन को पहचान पाया। यद्यपि तबतक इस बात की जानकारी मुझे नहीं थी कि वे मेरे पितृबंधु हैं।

काफी देर तक उनके निकट था। शायद उन्होंने जलपान भी कराया था। बातचीत के सिलसिले में मेरी पढ़ाई की चर्चा चलने पर उन्होंने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कहा—"तुम काशी जाकर पढ़ो। वहाँ सारी सुविधाएँ प्राप्त होंगी। ननी (उनका साला) वहाँ है, उसे मैं सारी बातें लिख दे रहा हूँ। जाने के पहले उसे तार भेज देना। वह स्टेशन आकर तुम्हें ले जायगा और सारा प्रबन्ध कर देगा।" इतना कहने के बाद उन्होंने किस भाषा में तार करूँ, उसका एक ड्राफ्ट लिखकर दिया। बाद में उन्होंने कहा—"नारद घाट पर उसका घर है।"

इसके बाद मैंने उनसे दो-चार प्रश्न किये। एक प्रश्न था—"भगवान सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और दयामय हैं, संसार के सभी अध्यात्मशास्त्रों में इसका उल्लेख है। लेकिन ये तीन विशेषण युगपत् क्या उनमें उत्पन्न होते हैं? जगत् दुःखमय है, जीव जन्म-जन्मान्तर से दुःखों का बोझ ढोता आ रहा है, इसे सभी स्वीकार करते हैं। दुःख के कारण चाहे जो भी हों, दुःख है, या उसका अनुभव किया जाता है, यह सत्य है। जो सर्वज्ञ हैं, इसे वे सम्यक् रूप से जानते हैं। इसे वे दूर क्यों नहीं करते? दुःख दूर करने की इच्छा को दया कहा जाता है, यह भी उनके पास है, क्योंकि वे अहेतुक कृपासिन्धु हैं। तो क्या वे दुःख दूर करने में असमर्थ हैं? यह भी नहीं कहा जा सकता। वे तो सर्वशक्तिसम्पन्न हैं। इन तीनों विशेषणों में से किसी एक के न रहने पर शेष दोनों की उपपत्ति होती है, एक साथ तीनों विशेषणों की सार्थकता समझ में नहीं आती।"

मेरे प्रश्न को सुनकर वे हँस पड़े। बोले—"पाश्चात्य-नवीन चिन्ताशील व्यक्तियों में कुछ लोग इस प्रकार का विचार करते हुए ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में संशय प्रकट करते हैं। इसका सदुत्तर है—नैतिक संयम के भीतर से एक निष्ठा के सहित अन्तर्मुख रूप से सरल पथ पर अग्रसर होने से अपने जीवन में ही इस प्रश्न का समाधान प्राप्त किया जा सकता है।" इतना कहने के बाद उन्होंने मुझे गीता-पाठ करने का उपदेश दिया।

सुना कि आप दीर्घकाल तक एकान्त साधना करते रहे जिसके कारण

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साधारण पाठकों के उपयोग में आने लायक आपने गीता-व्याख्या-प्रणयन किया। उक्त व्याख्या को अपने द्वारा प्रकाशित 'उत्सव' नामक पत्रिका में धारावाहिक रूप में प्रकाशित कर रहे हैं। उल्लेखनीय है कि सन् १९०७ के वैशाख मास से उक्त पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ था। इस पत्रिका का मैं आरम्भ से ही ग्राहक और पाठकों की श्रेणी में आ गया था। मजुमदार महाशय का दर्शन करने के बाद से मैं क्रमशः उनकी लेखमाला पढ़ने लगा। धीरे-धीरे भारत-समर, भद्रा, लीला उपाख्यान आदि उनके अनेक लेख पढ़ने में आये। विचार-चन्द्रोदय पहले ही पढ़ चुका था। 'उत्सव' के सम्पादक थे—मजुमदार महाशय स्वयं और सहकारी सम्पादक थे—पूजनीय सांख्यतीर्थ महाशय। दोनों ही भावगर्भ तथा शिक्षाप्रद अनेक निबन्धों के माध्यम से 'उत्सव' के कलेवर को अलंकृत करने लगे।

मैं टाँगाइल से वापस आ गया। काशी जाने का मौका नहीं मिला। सुदूर पश्चिम राजपूताना की मरुभूमि स्थित जयपुर नगर में चला आया। स्थान स्वास्थ्यकर था, राज्य का संचालन बंगाली सज्जन के द्वारा हो रहा था और कालेज (महाराजा कालेज) अवैतनिक होने के कारण मेरे अनुकूल था। जयपुर चला गया जरूर, किन्तु 'उत्सव' की स्मृति मेरे हृदय में जागरूक बनी रही। जयपुर आकर मैं नियमित रूप से 'उत्सव' पढ़ता रहा। केवल मैं नहीं पढ़ता था, बल्कि अपने मित्रों को भी पढ़ने के लिए देता रहा। मौका मिलने पर २-१ ग्राहक भी बना देता था और 'उत्सव' के विषय को लेकर अधिकतर विचार-विमर्श करता था। सचमुच उन दिनों इस तरह की पत्रिका एक भी नहीं थी। प्राचीनकाल में अनेक धार्मिक पत्रिकाएँ थीं, किन्तु इस तरह नित्यसंगी बनाकर रखने लायक कोई पत्रिका मेरे देखने में नहीं आयी। केवल तत्त्व की चर्चा से यह पर्यवसित नहीं रहती, उस तत्त्व को जीवन-रस-रक्त रूप में परिणत करने में सहायता करती थी, यही उस पत्रिका का उद्देश्य था।

प्राचीन मुनि-ऋषि के आदर्श को वर्तमान जीवन में यथाशक्ति

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रतिफलित करना, इस पत्रिका का अन्यतम लक्ष्य था। इसके लिए नाना उपाय किया जाता था। उपदेश, विवरण, सरस आख्यान आदि। जब गीता-व्याख्या तीन खण्डों में प्रकाशित हुई तब उसे खरीद लिया। मुझे याद है कि मेरे एक मित्र ने अपने एक विशिष्ट बन्धु को मजुमदार महाशय की गीता की प्रति अत्यन्त आदर के साथ उपहार में दी थी। वह व्यक्ति भी अपने जीवन में अत्यन्त उपकृत हुआ था।

मजुमदार महाशय जब जहाँ रहते थे तब वहाँ भक्त-मण्डली उत्सव करने लगती थी। हरि सभा, सत्संग तो होता ही रहता था, जिज्ञासु लोग व्याकुल भाव से उनके निकट सान्त्वना पाने के लिए आते थे। कोई निराश होकर लौट गया, ऐसा कभी नहीं सुना। उनका हृदय 'विगलित करुणा' से परिपूर्ण था।

दीन-जनों की आर्त्ति-स्पर्श से वह अप्रतिहत वेग में उनकी ओर प्रवाहित होता था। टाँगाइल स्थित पी० एम० कालेज के अध्यक्ष काल से लेकर 'उत्सव' आफिस के सत्संग काल तक उन्होंने न जाने कितने अविश्वासियों के हृदय में श्रद्धा के बीजों का रोपण किया है, कितने लोगों के शुष्क हृदय में भक्तिरस संचारित किया है और कितने पाप-मलिन अन्तःकरणों में अनुतापरूपी प्रायश्चित्त के माध्यम से, दिव्य जीवन का स्वच्छ प्रकाश और सुबास उत्पन्न किया है, आज उनकी संख्या बताना कठिन है।

उनके प्रथम दर्शन के २४–२५ वर्ष बाद द्वितीय बार उनका पुनः दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यह काशी की घटना है। भारत धर्म महामण्डल द्वारा आयोजित किसी उत्सव में वे आये हुए थे। उन दिनों मैं काशी में रहता था। वे मेरे परम पूज्यपाद गुरुदेव श्री श्री विशुद्धानन्द परमहंस के आश्रम में (मलदहिया मुहल्ले में) उनका दर्शन करने के लिए कई मित्रों के साथ गये हुए थे। जिस वक्त उनका आगमन हुआ था, उस समय मैं आश्रम में उपस्थित था। उस समय श्री गुरुदेव सूर्य विज्ञान के रहस्यों को प्रायोगिक रूप में सिखा रहे थे। एक लोहे की

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

छड़ को खड़ा करके उसके ऊपर एक घूमते हुए चक्र पर एक आइना रख दिया गया, उसके आवर्त्तन क्रम में उससे प्रतिफलित सूर्य-रश्मि के सहारे, वर्णों की विश्लेषण प्रणाली समझा रहे थे। जैसे शुभ्र, शुद्ध सत्त्व पर त्रिगुणात्मिका प्रकृति के अवयवभूत अशुद्ध गुणत्रय आवर्त्तित होकर भिन्न-भिन्न वर्णों का संचार करता है, ठीक उसी प्रकार सवितृदेव के अन्तरस्थ स्वच्छ आलोक के ऊपर रश्मिगत विभिन्न वर्ण संचारित करने पर वे सभी वर्ण परिस्फुट रूप में प्रकट होते हैं। उस समय उन्हें अच्छी तरह पहचाना जा सकता है। वर्ण-परिचय का यही उपाय है। इसके बाद उक्त सभी वर्णों के संयोजन प्रणाली को सीखना चाहिए। वर्ण-परिचय की पृष्ठभूमि में जैसे शुभ्र प्रकाश की आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकार वर्ण-संयोग के सम्बन्ध में भी। किन्तु पहले से प्रकाश में यदि किसी रंग का आभास रहे तो उससे प्रतिफलित सभी रंग विकृत रूप में दिखाई देते हैं, क्योंकि प्रकाश का रंग और दृश्य का रंग मिल जाता है, इसलिए रंग का कौन सा स्वरूप है, यह पकड़ में नहीं आता। वर्ण-संयोग में भी तद्रूप शुभ्र आलोक की आवश्यकता है। भित्ति को पहले सफेद न रखने पर किसी रंग को आबद्ध नहीं किया जा सकता। कारण सभी वर्ण आशु संचारी होते हैं। एक वर्ण प्रकट होकर दूसरे ही क्षण अप्रकट हो जाता है। एक वर्ण के साथ दूसरे वर्ण की योजना संभव नहीं होता। योजना के बिना सृष्टि या अभिव्यक्ति भी नहीं होती। इसमें एक रहस्य है। जबतक अभिव्यंजक वर्ण समष्टि में क्रमशः अन्तिम वर्ण प्रकट नहीं होता तबतक सभी वर्णों की सामूहिक क्रिया या अभिरंजन की घटना सम्भव नहीं होती।

श्री गुरुदेव ने दृष्टान्त के रूप में कई वैज्ञानिक सृष्टि का प्रदर्शन किया। सिर्फ नाना प्रकार के गन्ध ही नहीं, विभिन्न स्थूल पदार्थ भी उक्त प्रक्रिया से करके दिखाया। कर्पूर, पुष्प, स्फटिक आदि। जात्यन्तर परिणाम को भी दिखाया—एक वस्तु को दूसरे वस्तु के रूप में परिणत करके दिखाया। मजुमदार महाशय ने पूछा—"इस विज्ञान के साथ योग का कोई सम्बन्ध है या नहीं ?"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बाबाजी ने कहा—"यौगिक सृष्टि में इस प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं होती। विज्ञान में ज्ञान और क्रिया की परस्पर सहयोगिता है। इसके द्वारा इष्ट वस्तु का निर्माण होता है, किन्तु योग में इच्छा ही प्रधान है—इच्छाशक्ति से ही ज्ञान और क्रिया के कार्य सम्पन्न होते हैं—निर्माण तक संघटित होता है। सविषय तीव्र इच्छा ही Focussing का स्थानापन्न है।"

मजुमदार महाशय ने कहा—"भावना ही तो योग का मुख्य उपाय है। यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी। भावना तीव्र होने पर सिद्धि अवश्यम्भावी है।"

बाबा ने कहा—"सही बात है। विकल्पहीन, संकल्प शुद्ध संकल्प—चिन्ता अगर एकाग्र हो तो लक्ष्यप्राप्ति निश्चित है।" इतना कहने के बाद एक छोटा पुष्प हाथ में लेकर उसकी ओर तीव्र दृष्टि से देखते हुए उन्होंने कहा—"देखो, तीव्र भावना के कारण पुष्प मेरी इच्छानुसार पाषाण में परिणत हो रहा है।"

दो-तीन मिनट के भीतर पुष्प पाषाण के रूप में बदल गया। यह दृश्य देखकर वे चकित रह गये। बोले—"भावना के कारण मुहूर्त में स्थूल वस्तु तक आविर्भूत हो सकती है।"

बाबा ने कहा—"अवश्य। इसमें सन्देह कहाँ है? यह लौकिक उदाहरण का प्रदर्शन मात्र है। चरम में योग और विज्ञान एक ही महालक्ष्य की प्राप्ति के साधन हैं।" मजुमदार महाशय वहाँ लगभग एक घंटा थे। इसके बाद बाबाजी को प्रणाम कर चले गये। मैंने भी उन्हें प्रणाम किया।

एक और स्मरणीय दिन की बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह घटना दस वर्ष बाद की है। उन दिनों मजुमदार महाशय कलकत्ता में थे और मैं काशी में। एक बार गर्मी के मौसम में कलकत्ता गया तो 'उत्सव' कार्यालय में उनका दर्शन करने चला गया। उनका आमन्त्रण था और मेरी उत्कट इच्छा थी। मैं उनके यहाँ आ रहा हूँ सुनकर अनेक लोग वहाँ आ गये थे। इस मुलाकात की सन्-तिथि स्मरण नहीं है। पर यह घटना

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मेरे अवकाश ग्रहण या श्री श्री गुरुदेव के तिरोधान के कुछ पूर्व की है अर्थात् सन् १९३७ ई० के पहले की बात है। वह स्मृति अति उज्ज्वल रूप में आज तक मेरे मानस-पट में अंकित है। यही मेरा अन्तिम दर्शन रहा। प्रथम दर्शन के समय मैं नवयुवक विद्यार्थी था और अन्तिम दर्शन के समय वृद्ध न होने पर भी प्रवीण था। शिक्षा और कर्म-जीवन समाप्त करने के पश्चात् विश्राम ग्रहण के लिए प्रस्तुत हो रहा था। दोनों ही समय उनके स्नेह-सरस हृदय की अमृत मन्दाकिनी में स्नान कर पवित्र हुआ था। वे मेरे पितृसन्निभ गुरुजन थे और मैं उनके अनुशासनयोग्य स्नेह का पात्र रहा। हम दोनों के मन में यही भावना जागरूक थी। जहाँ तक स्मरण है, कल्पित-अकल्पित ध्यान के सम्बन्ध में उनके यहाँ उन्हीं दिनों कुछ चर्चा हुई थी। मैं अन्तर्जीवन में उनके निकट बहु विषय में ऋणी हूँ—कृतज्ञता भार से बद्ध हूँ।

आज उन्हें स्मरण करते समय उक्त संचित ऋण की स्मृतियाँ जाग उठी हैं। भाराक्रान्त हृदय के भार को हल्का करने की इच्छा हो रही है। आज इस क्षुद्र लेख की पुष्पांजलि उनके चरणों में अर्पित करते हुए अपने को धन्य समझ रहा हूँ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२

पालधी महाशय

पालधी महाशय के गृहस्थाश्रम का नाम था—हरि नारायण। पालधी कौलिक उपाधि है। वे इसी नाम से जाने जाते थे। आप बाल्यकाल से ही ब्रह्मचारी थे। इसी कारण से परवर्तीकाल में सिद्ध महात्मा के रूप में सहज ही परिगणित हुए थे।

अन्दाजन आज से ४८ वर्ष पूर्व सन् १९३३ या १९३४ ई० में उनके साथ मेरी मुलाकात हुई थी। आप काशी के प्रसिद्ध महायोगी श्री श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय के दीक्षित शिष्य थे। उनकी दौहित्री वीणापाणि देवी मेरी गुरुभगिनी हैं। बंगाली टोला में उन्होंने गुरुधाम नाम से एक आश्रम स्थापित किया था, किन्तु मेरे साथ उनका कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं था। यही वजह है कि पालधी महाशय के साथ उनके माध्यम से किसी प्रकार का सम्पर्क करना सम्भव नहीं हुआ था।

पालधी महाशय के एक शिष्य मेरे मित्र थे। एक दिन सुविधानुसार उनके साथ पालधी महाशय से मेरी मुलाकात हुई थी। आगे चलकर पालधी महाशय के साथ क्रमशः मेरी घनिष्ठता बढ़ गयी थी। यहाँ तक कि उनके यहाँ जाकर सत्संग के माध्यम से आनन्द प्राप्त करता था। वे पातालेश्वर के समीप अपने भवन में रहते थे। उनसे हुई बातचीत से ज्ञात हुआ कि सन् १८८४ ई० में उन्होंने लाहिड़ी महाशय से दीक्षा ली थी। बाद में २४ वर्ष तक साधना करने के बाद सिद्धि प्राप्त की।

एक दिन उनके पास बैठा था। ठीक उसी समय एक व्यक्ति ने पालधी महाशय के पास आकर अपनी साधना की व्यर्थता की चर्चा करते हुए कहा—"महाराज, साधना में कोई उन्नति नहीं हो रही है और न कोई

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपलब्धि प्राप्त कर रहा हूँ।" यहाँ तक कि उनका मन अब इतना भारा क्रान्त हो उठा है कि वे अपनी साधना से मुख मोड़ लेना चाहते हैं। अब यही उन्होंने निश्चय कर लिया है।

पालधी महाशय ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—"यह शीघ्र कभी नहीं होता। निष्ठा के साथ गुरु की आज्ञा का पालन करते रहिये, साधना कभी नष्ट नहीं होती। जो जितना करता है, उसे उतना ही लाभ मिलता है। मैं अपने गुरु के निकट ११ वर्ष था, पर किसी प्रकार की साधनलब्ध अनुभूति प्राप्त न करने पर भी गुरु के सान्निध्य के कारण आनन्द प्राप्त करता रहा। सन् १८९४ ई० में गुरुदेव के शरीरान्त के पश्चात् मैं गुरु-विच्छेद के कारण शोक से अभिभूत हो उठा था और सोचता रहा कि बिना गुरु के आध्यात्मिक जीवन का उत्कर्ष असम्भव है। मन ही मन सोचा करता था कि ऐसे महान गुरु के सान्निध्य में रहने पर भी जब किसी प्रकार का अनुभव या किसी प्रकार की प्राप्ति नहीं हुई तब गुरु के शरीरान्त के पश्चात् कैसे साधना सम्भव होगी ? कभी-कभी मेरा देह-मन-प्राण अवसादग्रस्त होकर विषाद में परिणत हो जाते थे। यहाँ तक कि साधना छोड़ देने की इच्छा प्रबल हो उठती थी। ठीक इसी समय भीतर से विवेक वाणी होने लगी—"परमार्थ प्राप्त करना ही मानव-जीवन की सार्थकता है और सात्त्विकता ही जीवन-धारण का एकमात्र उपाय तथा उद्देश्य है, अतएव किसी भी अवस्था में क्यों न रहो, साधना चलाते रहो। साधना-त्याग कभी मत करना।"

इसीलिए पूर्व की भाँति दृढ़ संकल्प के साथ साधना में रत हो गया। बाद में निश्चय किया कि साधना में किसी प्रकार का फल मिले या न मिले, साधना से कभी विरत नहीं होऊँगा। साधना से झुँझलाना नहीं चाहिए। फलतः गुरु के मार्गानुसार और उनके दिये नियम की भाँति, गुरु से शरीरान्त के बाद तेरह वर्ष तक नियमित रूप से साधना करता रहा।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक दिन प्रातःकाल शौच करने गया तो शौचागार में जाकर समाधिस्थ हो गया। उस समय मेरा देहात्मबोध गायब होकर मुझमें ब्रह्म-ज्ञान तथा एक महान सत्ता का प्रकाश हुआ था। इसके बाद अपने गुरुदेव श्री लाहिड़ी महाशय की चिन्मयमूर्त्ति प्रत्यक्ष देखकर मैं धन्य हो गया। प्रकाश के बाद आगे कभी उसपर आवरण नहीं पड़ा।

इस अवस्था में प्रायः मैं कई घंटे तक अवस्थान या इस स्थिति में रहता था। यह देखकर घर के लोग विस्मित होकर इस स्थिति में सहायता करते थे। यहाँ तक कि कोई मुझे स्पर्श नहीं करता था। काफी देर बाद इस स्थिति से उत्थान करने पर कोई दुःखादि या शोक मुझे स्पर्श नहीं करता था।

फलतः यह बात निस्सन्देह रूप से कही जा सकती है कि किसके भाग्य में कब वह महाक्षण आयेगा, यह कहना कठिन और दुरुह है। इस-लिए किसी तरह भी साधना से विच्युत नहीं होना चाहिए और साधक का किसी स्थिति में निराश होकर अपने कर्त्तव्य या गुरुदत्त कर्म से विरत होना, उचित नहीं है।"

श्री पालधी महाशय ने अपने इन अनुभवों को सापेक्ष रूप में हिंन्दी और बंगला पुस्तकों में लिखा है। इन ग्रन्थों में कुछ की भूमिका मैंने लिखी है। उसका सारांश यों था।

उनका कहना था—चित्तरूपी ब्रह्म का आभास ही चैतन्य के नाम से अभिहित है, त्रिगुणात्मिका माया के द्वारा जब ज्ञान होता है तब उसे जीव कहते हैं। इसमें देहात्मबोध तीव्रतर होता है। यह भी आभास है, इसी समय जीव अपने को मानव के रूप में जान लेता है।

गर्भावस्था या प्रसवावस्था में भेद परिलक्षित होता है। गर्भावस्था में मन माया के साथ एकात्म होकर निर्गुण प्रणवरूपा चिद्शक्ति के साथ मिलकर सुषुम्ना के साथ खेलता रहता है।

प्रणवात्मिका चिद्शक्ति ही ध्यानात्मक 'सोहं' शब्द है। वह ब्रह्मसूत्र जो आज्ञाचक्र के चित्ताकाश रूप में वर्णित है, उस समय ध्यानात्मक शब्द

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और भूतात्मक शब्द एक साथ चलते रहते हैं—आरोहक्रम एवं अवरोह क्रम से चलते हैं अर्थात् उत्थान और पतन होता रहता है।

मायाचक्र अर्थात् चन्द्रमण्डल से मणिपुरचक्र अर्थात् सूर्यमण्डल तक 'हं' शब्द एवं मणिपुरचक्र अर्थात् सूर्यमण्डल से मायाचक्र चन्द्र तक जो भूतक्रिया के नाम से अभिहित है—'सः' शब्द से वह उच्चारित होता है।

बाहर जाने का नाम है—संचार, प्रवेश करने का नाम प्रत्याहार, यही 'ऊँकार'—अ, उ, म, अर्थात् चिद् शक्ति अधः और ऊर्ध्व ज्योति परिलक्षित होता है। जीवन उसकी रेखा के सहारे आकाश में विचरण करता है, यही गर्भावस्था का विचरण है।

इसके बाद भूमिष्ठ होने पर जीव नाना प्रकार के मल-विक्षेप के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है, अनेक अनित्य वस्तुओं के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है, आसक्ति जन्म लेता है। इसके प्रभाव से ही उसकी (जीव की) सुषुम्ना गति बन्द हो जाती है। तब इड़ा-पिंगला में गति उत्पन्न होती है; इसी गति को दक्षिणावर्त्त कहा गया है और वामावर्त्त के नाम से भी परिचित है। इसी में माया का प्रभाव चलता है, तमः और रजः गुणों के प्रभाव तथा आवरण को शक्ति कहा गया है। हंस और सोहं शब्द के साथ मूलाधार से माया तक संसार प्रत्याहार होता है।

शून्य से सृष्टि 'हंस' शब्दात्मक सर्पाकार कुण्डलिनी शक्ति यही प्राणवायु है अर्थात् हंस। इसकी गति मणिपुरचक्र तक व्याप्त हो जाती है, भूमिष्ठ होने के बाद मणिपुरचक्र से मूलाधार तक विस्तार होता है। मायाचक्र से मणिपुरचक्र तक 'हंस' शब्द के साथ प्राणवायु का संचार होता है और प्रत्याहार भी। मूलाधारचक्र से मणिपुरचक्र तक अपान वायु 'सोहं' शब्द के साथ स्पन्दित एवं निस्पन्दित होता रहता है जिसे सुना जा सकता है। वह भी परस्पर विपरीत शब्दों के साथ विपरीत गति होती है। इस प्रकार ऊर्ध्व और अधः होता है या विरुद्ध भाव में उत्पन्न होता है।

इस ऊर्ध्व और अधः गति के प्रभाव से मन की गति विपरीत हो

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जाती है, गर्भावस्था में मन का मुख ऊर्ध्व अर्थात् मायाचक्र की गति मणिपुर तक रहती है। किन्तु भूमिष्ठ होने के बाद—द्विधा विभक्त होने पर—'हंस' एवं 'सोहं' होने के कारण मन का मुख मूलाधार में रहता है तथा पिछवाड़ा रहता है—मणिपुर चक्र में। गर्भच्युत होने या भूमिष्ठ होने के साथ ी साथ दो अंशों में विभक्त होने के कारण को यह कहा जा सकता है कि उसका पतन निम्न गति होता है एवं इसके साथ ही साथ जीव का पतन प्रारम्भ हो जाता है।

ब्रह्मचारीजी विद्या-माया के बारे में कहा करते थे कि प्राणवायु सुषुम्ना में रहने पर सत्त्वगुणों का आविर्भाव होता है एवं हंसात्मक शब्द संसार होने की वजह से प्रतिपन्न होता है। यही त्रिसंसार—स्वर्ग, मर्त्य और पाताल है। ध्यानात्मक 'सोहं' शब्द के साथ गति होने के बाद पंच-भौतिक शरीर का आत्मबोध तक विलुप्त हो जाता है। उसी समय चित्त-रूपी ब्रह्म अर्थात् आभास चैतन्य अपनी जीव चेतनशक्ति समझ लेता है। तब ईश्वर अर्थात् सत्त्वगुणात्मक चैतन्य का बोध उत्पन्न होता है एवं उसके साथ प्रेम-विनिमय होने लगता है। इसी आनन्दात्मक अनुभव की स्थिति में उसके जड़ शब्द और स्पर्शादि का (तन्मात्रादि का) प्रभाव दूर हो जाता है। हंस शब्द वर्णात्मक एवं सोहं ध्वनि रूप है। 'सोहं' शब्द के साथ 'हंस' शब्द का संयोग था। नादात्मक 'सोहं' शब्द के द्वारा आकृष्ट होकर वर्णात्मक 'हंस' को ऊर्ध्व गति प्राप्त होती है।

आभास चैतन्य ही ब्रह्म है। माया के साथ मिलकर नामरूप हो जाता है। आत्मस्वरूप भूलकर अपने को जीवस्वरूप समझने लगता है या सोचता है। इससे भ्रम होता है, अपने को अमुक-तमुक सोचता है। किन्तु ओंकार उच्चारण के प्रभाव से त्रिगुण प्रवाह बहने लगता है। माया का संसर्ग प्रस्फुटित होता है, स्वरूप में अवस्थान करने में सक्षमता उत्पन्न होती है और स्थिति प्राप्त होती है। इसके बाद अन्त में वह जान पाता है ब्रह्म या अवधूत या परब्रह्म को। अपनी इच्छा के माध्यम से वह समा-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वर्तन या संन्यास या वानप्रस्थ त्यागकर गृहस्थी में प्रवेश करता है। कहा जाता है कि यह अनेक रहस्यमय घटना है।

कारण शरीर 'ध्वनि'-सोहं शब्द जीवात्मा से मायाचक्र तक प्रवाहमान है, स्थूल शरीर (वर्ण 'हंस' जो माया से विशुद्धाख्याचक्र तक प्रसारित है), किन्तु सूक्ष्म शरीर—(ध्वनि सोहँ) इसकी ध्वनि को विस्तार करने के बाद स्थूल-शरीर ग्रहण होता है। यह स्थूल-शरीर भी—वर्ण, हंस शब्द एव ओंकार है।

पालधी महाशय के इन उपदेशों से यह ज्ञात होता है कि साधक का कर्त्तव्य है तीन प्रकार से ज्ञान प्राप्त करना; जैसे कर्म (गुरुकर्म या आत्म-कर्म), (अकर्म), (विकर्म)। कर्म अर्थात् साधना हंस-मंत्र का उच्चारण है, अकर्म अर्थात् भजन अर्थात् सोहं मंत्र का उच्चारण एवं विकर्म अर्थात् ब्राह्मी स्थिति या परमपद में विश्राम करना।

इसके प्रभाव से शरीर का त्याग एवं कैवल्यमुक्ति, निर्वाणमुक्ति आदि प्राप्त करना। इसी प्रकार के तत्त्वों के साथ आध्यात्मिक विषयों के बारे में चर्चा होती थी।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

३

तारकेश्वर माँ

आज से पचास वर्ष पूर्व सन् १९३२ ई० के लगभग तारकेश्वर माँ से मेरी मुलाकात हुई थी। आप बंगाल की महिला थीं। आप तारकेश्वर (जिला हुगली) शिव के परमभक्त के रूप में प्रसिद्ध रहीं। कहा जाता था कि तारकेश्वर माँ को तारकेश्वर शिव नित्य दर्शन देते थे। लोग इस किंवदन्ती पर विश्वास करते थे। शंकरजी की विशेष कृपा के प्रभाव से आप जिस प्रकार निर्भरता के साथ अपना जीवन व्यतीत करती थीं, ठीक उसी प्रकार दूसरे लोगों को भगवत भाव में दिन व्यतीत करने के लिए उत्साहित करते हुए अनेक लोगों के जीवन को स्वस्थ तथा नया जीवन देने में सहायक रहीं।

आप इस बात पर विश्वास करती थीं कि अत्यन्त दयालु प्रकृति होने का कारण है—एक मात्र शारीरिक रोगों से मुक्ति तथा मुख्यतः मनुष्य के ध्येय और महत् उद्देश्य। शरीर स्वस्थ रहने पर कोई भी कार्य निर्विघ्न रूप से सम्पादित होता है। भगवत कर्म और अन्य कर्म सभी शृंखला के साथ सुसम्पन्न होकर आलस्य तथा तन्द्रा को दूर कर देता है। सभी शरणागतों के नामों को स्मरण करती हुई तारकेश्वर माँ शिव को फूल अर्पण करती थीं। बाद में जिन लोगों की रोगमुक्ति के लिए फूल तारकेश्वर शिव से वापस आ जाता था, उसे उन लोगों को आशीर्वाद स्वरूप बाँट देती थीं। इससे दुरारोग व्याधि से लोग मुक्ति प्राप्त करते थे। मैं स्वयं उनकी कृपा और आशीर्वाद से अनेक रोगियों को रोगमुक्त होते देख चुका हूँ।

याद है, एक दिन एक रोगी पक्षाघात से पीड़ित होकर उनके निकट

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आया। कुछ देर बाद अपनी सिद्धि के प्रभाव से माताजी ने उसे रोगमुक्त कर दिया। रोगी स्वस्थ होकर प्रशान्त चित्त से घर वापस चला गया। आप किसी भी रोगी के लिए जब तक वह आरोग्य लाभ नहीं करता था तबतक वे क्रमशः आराध्य देवता के निकट प्रार्थना करती रहती थीं। इससे पर्याप्त लाभ होता था। तारकेश्वर माँ का प्रधान कार्य था—प्रत्येक जीव का शारीरिक कष्ट दूर या निवृत्त करना। इस साधिका का प्रधान लक्ष्य था—देहकष्ट से जीव परिश्रान्त और उद्‌भ्रान्त होकर अनेक प्रकार के कष्टों को सहता है, फलतः यदि देहकष्ट न रहे तो जीव अन्य कार्य सहज में सुसम्पन्न करने में सक्षम हो सकता है। काफी दिनों तक काशीवास करने के बाद शिव धाम काशी में उनका शरीरान्त हुआ। उनकी स्मृति में उनके भक्तों ने तिलभाण्डेश्वर के निकट स्मृति सौध बनवाया है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय

राष्ट्रीय आन्दोलन के नवीन युग-प्रवर्त्तक सतीश बाबू सर्वमान्य व्यक्ति होते हुए भी बहुत कम लोग उनके बारे में जानते या उन्हें पहचानते हैं। एक प्रकार से उन्हें भारतीय-स्वतन्त्रता को नयी दिशा देनेवाले युग-प्रवर्त्तक पुरुष कहा जा सकता है।

बंग-भंग आन्दोलन (स्वदेशी-आन्दोलन) के समय 'डान सोसायटी' की स्थापना करनेवाले उद्यमी कार्यकर्ता और स्वदेशी-आन्दोलन के कर्मठ लोगों में आप अग्रणी थे। उन्हें बंगीय नेशनल कालेज आफ एजुकेशन के प्रतिष्ठाता का मूल केन्द्र बिन्दु कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

राष्ट्रीय आन्दोलन को तेज करने के लिए श्री अरविन्द को बड़ौदा से कलकत्ता ले आने में आपकी मुख्य भूमिका थी। डा० राजेन्द्र प्रसाद, डा० विनय कुमार सरकार, डा० राधाकुमुद मुखर्जी, डा० सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त, सर अतुलचन्द्र चटर्जी, हाराणचन्द्र चाकलादार प्रमुख मनीषियों की हर तरह से आपने सहायता की थी और ये लोग इनके विशेष अनुरागी थे।

आप बचपन से ब्रह्मचारी थे। आपके प्रधान पथप्रदर्शक प्रभुपाद श्री विजयकृष्ण गोस्वामी थे। यहाँ तक कि उनके आध्यात्मिक-जीवन के एकमात्र सहायक थे।

सतीश बाबू के साथ मेरी मुलाकात प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्व सम्भवतः सन् १९१४ के लगभग हुई थी। उन दिनों मैंने बनारस संस्कृत कालेज और सरस्वती भवन का कार्यभार ग्रहण किया था। इन्हीं दिनों आचार्य सतीशचन्द्रजी अस्वस्थ होकर कलकत्ता से काशी स्वास्थ्य सुधारने के लिए आये। यहाँ दशाश्वमेध घाट के समीप टेढ़ी नीम मुहल्ले में रहते थे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आपके साथ कुछ छात्र और स्वेच्छा सेवक आये थे। इनमें कृष्णदास और सतीशचन्द्र गुह प्रमुख थे। कई वर्ष बाद सतीश बाबू के निर्देशानुसार कृष्णदासजी अहमदाबाद स्थित महात्मा गाँधी के आश्रम में जाकर रहने लगे।

काशीवास के दिनों कृष्णदासजी कभी-कभी पुस्तक लेने के लिए सरस्वती भवन में मेरे पास आया करते थे। इसी सूत्र से सतीश बाबू के साथ मेरा परिचय हुआ।

धीरे-धीरे सतीश बाबू से मेरी घनिष्ठता बढती गयी। इसके बाद वे बराबर मेरे घर आने लगे। मैं भी उनके टेढ़ी नीमू मुहल्ले में स्थित भवन में जाता रहा। उनका घनिष्ठ सान्निध्य प्राप्त कर मैं अत्यन्त उपकृत हुआ था।

इन्हीं दिनों उनके गुरुभाई ब्रह्मचारी कुलदानन्द की आध्यात्मिक डायरी 'सद्गुरु प्रसंग' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इस ग्रन्थ का संशोधन सतीश बाबू ने किया था। प्रथम पुस्तक तृतीय खण्ड प्रकाशित होने के बाद उक्त पुस्तक मुझे पढ़ने के लिए दी गयी।

उक्त पुस्तक का प्रथम तथा द्वितीय खण्ड बाद में प्रकाशित हुआ था। इस अपूर्व ग्रन्थ का प्रभाव मेरे आध्यात्मिक जीवन पर व्यापक रूप से पड़ा है। मैं यहाँ तक कह सकता हूँ कि ऐसी पुस्तकें प्रत्येक साधक को सहचर की भाँति सर्वदा साथ रखनी चाहिए।

सतीश बाबू क्षणजन्मा महापुरुष थे। उन्होंने अपने गुरु-प्राप्ति का अपूर्व वृत्तान्त सुनाया था। उनकी गुरु-प्राप्ति अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना थी। एक दिन उन्होंने कहा—"मैं पहले सन्देहवादी था। मेरे पिता भी इसी प्रकृति के थे। किसी साधु-संन्यासी की सान्निध्यता प्राप्त करना मेरी प्रकृति के विरुद्ध था। ईश्वर के प्रति भी ऐसी भावना थी।"

सतीश बाबू स्वामी विवेकानन्द के समकालीन और विवेकानन्द से अच्छी तरह परिचित थे। फिर भी श्री रामकृष्ण परमहंस के निकट कभी नहीं गये।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सहसा एक अलौकिक घटना के कारण उनके जीवन में परिवर्तन हुआ। वे प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी के आकर्षण की विचित्र प्रणाली पढ़ चुके थे। इस बात को आगे बताऊँगा।

सतीश बाबू में विद्याबल, चरित्रबल एवं नैतिकबल की उत्कर्षता अतुलनीय थी। इन्हीं दिनों आप महापुरुष के रूप में प्रसिद्ध हुए थे। जीव-सेवा, निःस्वार्थता, पवित्रता जिस प्रकार आप में थी, ठीक उसी प्रकार गुरुवाक्य-पालन में ऐसे महापुरुष का मिलना कठिन है।

सतीश बाबू की नैतिक उत्कर्षता अतुलनीय थी। प्रभुपाद श्री विजय-कृष्ण गोस्वामी महाराज के एक शिष्य के साथ उनकी गहरी मैत्री थी। इनके मित्र के मन में यह भावना जागरित हुई कि किसी तरह से प्रभुपाद के निकट इन्हें उपस्थित कर पाने पर, इनके जीवन की धारा मंगल की ओर अग्रसर होगी। उन्होंने अपनी इच्छा प्रभुपाद के निकट व्यक्त की।

प्रभुपाद ने आदेश दिया—"कल सतीशचन्द्र को यहाँ लेते आना।" मित्र ने सारी बातें सतीशचन्द्र से कहीं, पर वे राजी नहीं हुए। प्रथम दिन मित्र महोदय असफल होकर वापस चले गये। दूसरे दिन घर में रहने पर वह अवश्य प्रभुपाद के पास ले जायगा, इस आशंका से भोर के समय आप घर से रवाना हो गये और इधर-उधर घूमने लगे ताकि प्रभुपाद से साक्षात न हो या उनके यहाँ जाना न पड़े। फलतः वे प्रभुपाद के घर के विपरीत दिशा की ओर चलते गये।

आश्चर्य का विषय यह हुआ कि प्यास के कारण वे लस्त हो गये। अगर वे चाहते तो किसी मकान से पानी माँग सकते थे, पर उस समय उनकी बुद्धि लोप हो गयी थी और यन्त्रचालित की तरह श्री प्रभुपाद के भवन के सामने आकर खड़े हो गये। वहाँ एक युवक दरवाजे के समीप बैठा था। उससे सतीशचन्द्र ने कहा कि मुझे प्यास लगी है, कृपया पानी पिला दीजिए। वह युवक उन्हें पानी पिलाने के लिए मकान के भीतर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पहली मंजिल में ले गया। वहाँ एक आसन बिछा था जिसे देखते ही सतीशचन्द्र को ज्ञान हुआ कि यह भवन तो श्री विजयकृष्ण गोस्वामी का है और यह युवक श्री प्रभुपाद का पुत्र 'योग जीवन' है।

सतीशचन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्हें सारी घटनाएँ रहस्य-मय प्रतीत हुईं कि विपरीत दिशा में जाने पर भी वे कैसे मुग्धावस्था में यहाँ आ गये ? अनिच्छा होते हुए भी कैसे प्रभुपाद से मुलाकात सम्भव हुई एवं किस शक्ति के प्रभाव से वे यहाँ आये ?

श्री प्रभुपाद के कमरे में उन्होंने प्रवेश किया। श्री प्रभुपाद ने सम्बो-धित स्वर में कहा—"आप ठीक समय पर आये हैं। मैं आपकी प्रतीक्षा कर रहा था।" यह कहकर वे सतीशचन्द्र को बगल के कमरे में ले गये जहाँ पहले से आसन बिछा हुआ था।

श्री प्रभुपाद ने कहा—"यहाँ बैठिये, आपकी दीक्षा होगी।" यह सुन-कर सतीशचन्द्र चकित रह गये। प्रतिवाद करने की शक्ति गायब हो गयी। केवल इतना ही वे कह सके—"मैं यहाँ नहीं आना चाहता था फिर भी कैसे आ गया ?"

श्री प्रभुपाद ने कहा—"अवश्यम्भावी अवश्य होता है। आज ही आपकी दीक्षा लेने का वास्तविक दिन है।"

इस पर सतीशचन्द्र मुग्ध हो उठे और सिर झुकाकर बैठ गये। श्री प्रभुपाद ने विधिपूर्वक दीक्षा दान की। इसके बाद से सतीशचन्द्र के नये जीवन के अनुभूतिमूलक अध्याय की सूचना प्रारम्भ हुई।

उनके व्यक्तिगत जीवन में परिवर्तन होने लगे। उन्हें अपना प्रकृत-स्वरूप और गुरुदेव का स्वरूप तथा दर्शन हुआ था। वह भी नित्य शाश्वत रूप में, निरन्तर प्रत्यक्षीभूत रूप में, अन्तःदर्शन भी खुल गया था।

इसके बाद वे मन्त्रमुग्ध भाव से घर वापस आ गये। इस घटना के बाद से उनके मन में बार-बार प्रश्न उत्पन्न होने लगा—सत्यवस्तु क्या

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है ? भगवत्ता की अनेक दिव्यानुभूति के बाद भी संशय का विशेष भाव निर्मूल नहीं हुआ। मन विचलित होता गया। क्या यह किसी अलौकिक शक्ति का प्रभाव तो नहीं है ? इस तरह के प्रश्न मन में उठने लगे। मन में उठने वाले सभी द्वन्द्व-संघात उन्हें दिन भर परेशान करते रहे।

शाम के समय जब वे स्नानागार में गये तब एक अलौकिक ध्वनि उत्थित हुई—"मैं हूँ ! मैं हूँ !" यह भीतर या बाहर का शब्द नहीं था। पुनः उसी शब्द की ध्वनि हुई जो शुद्ध बोधात्मक थी। तब वे भगवत्ता के सम्बन्ध में निःसंशय हो गये। यहाँ तक कि इसके बाद किसी दिन भी उनके मन में किसी प्रकार की शंका उत्पन्न नहीं हुई।

गुरुप्राप्ति के बाद से आखिरी दिन तक सतीश बाबू में भक्ति और श्रद्धा अक्षुण्ण रूप में थी। गोस्वामी महाशय अपने दूसरे शिष्यों को जप संख्या बढ़ाने का आदेश देते थे, पर सतीश बाबू को जप घटाने का आदेश दिया था। गोस्वामी महाशय अपने शिष्यों का आधार और पात्रता समझकर जप करने का निर्देश देते थे; कम या अधिक जप का निर्देश श्री गुरु अधिकारी समझकर देते हैं।

इसके बाद गोस्वामी महाशय (प्रभुपाद) ने सतीश बाबू को जप क्रिया बन्द करने का आदेश देते हुए कहा—"अब आपको जप करने की जरूरत नहीं है। आपके लिए जो कुछ करणीय है, वह मैं करूँगा। आप साधना-स्तर पहले ही पार कर चुके हैं। आपके जीवन में कुछ असमाप्त आवश्यक कार्य करना बाकी रह गया है। उन कार्यों को ठीक से पूरा करना है। लोकशिक्षा के माध्यम से आपको खण्डन करना ही पड़ेगा। इसके लिए आप अपने को तैयार करिये। इस कार्य के लिए आपका पुनर्जन्म हो सकता है, साधना के लिए नहीं।"

गुरुदेव का आदेश पाने पर सतीश बाबू ने 'डान सोसायटी' की स्थापना की। सोसायटी की पत्रिका का प्रकाशन, सभा द्वारा लोक शिक्षा का आयोजन करते रहे। कुछ दिनों बाद उन्होंने गुरुदेव से पूछा—'इस तरह कब तक कार्य करते रहना पड़ेगा ?'

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गुरुदेव ने कहा—"जब तक मैं निवृत्त होने को न कहूँ। मेरे आदेश से कार्य शुरू हुआ है और मेरे निर्देश से बन्द होगा।"

सन् १८९८ ई० से सन् १९१४ तक डान सोसायटी का कार्य तथा पत्रिका का प्रकाशन होता रहा। सन् १९१४ ई० में गुरु के निर्देश पर सब बन्द करना पड़ा।

आध्यात्मिकता के प्रारम्भिक काल में एक दिन उनका चित्त अत्यन्त व्याकुल हो उठा था। इसका मुख्य कारण था—गृहस्थी का दुःखानुभव। उन दिनों इस बात की चिन्ता सताया करती थी कि कैसे आर्त्तजनों के कष्टों को दूर करूँ? दुःख की निवृत्ति मोक्ष है। यह बात वे जानते थे, पर उसकी प्राप्ति में उन्हें संशय था इसी प्रकार का चिन्तन करते हुए एक दिन रात को बिना भोजन किये सो गये। महानिशा (मध्य रात्रि) के समय अपने कक्ष में उन्होंने देखा—एक उज्ज्वल प्रकाश। उक्त प्रकाश में से एक महापुरुष का आविर्भाव हुआ। उक्त ज्योतिर्मय महापुरुष सामने खड़े थे। उनकी आकृति पर करुणा प्रस्फुटित थी।

सतीशचन्द्र को सम्बोधन करते हुए मूर्त्ति ने पूछा—"बेटा, चिन्ताग्रस्त क्यों हो? तुम्हें इतना कष्ट अनुभव क्यों हो रहा है?"

सतीश बाबू ने निवेदन किया—"महाराज, इस अनित्य संसार तथा जागतिक कष्ट को देखकर मेरा चित्त व्याकुल हो उठा है।"

महापुरुष ने कहा—"मैं तुम्हारा कष्ट देखकर आया हूँ। एक शब्द दे रहा हूँ, उसे ग्रहण करो, तुम्हारा कष्ट सदा के लिए दूर हो जायगा।"

सतीश बाबू ने अनुभव किया कि महापुरुष कोई मन्त्र देना चाहते हैं। सतीशचन्द्र को ऊहापोह करते देख उक्त महापुरुष ने समझाते हुए कहा—"तुम कुछ सोच-विचार मत करो।"

सतीश बाबू को लगा जैसे महापुरुष कोई बीज मंत्र देना चाहते हैं। उन्हें द्विधाग्रस्त देखकर महापुरुष ने कहा कि तुम अपनी चिन्ता, भावना तिरोहित कर मेरे आदेशानुसार ग्रहण करो। इस मन्त्र के प्रभाव से तुम्हारा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दुःख पूर्ण रूप से निवृत्त हो जायगा। सहसा उनके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि इस महापुरुष से मन्त्र ले लेने से कौन सी हानि हो जायगी—'मेरे आदेशानुसार शब्द ग्रहण करो। इसके प्रभाव से तुम्हारे समस्त दुःखों की परम निवृत्ति हो जायगी।''

उनके मन में संकल्प-विकल्प के विचार उठने लगे। उन्होंने अनुभव किया कि उनके अन्तर में अशान्त भाव प्रकट हो रहे हैं।

अपने निश्चय पर पहुँचने के पहले वे शान्तभाव से सोचने लगे—'मैं तो सद्गुरु का शिष्य हूँ। अगर दुःख से निवृत्ति प्राप्त करनी है तो उनके द्वारा यानी सद्गुरु की कृपा के प्रभाव से होगा। इसके लिए मैं दूसरी ओर क्यों देख रहा हूँ?' अपने मन में इस बात का निश्चय करके उन्होंने उक्त महापुरुष से कहा—''महाराज, मेरा दुःख दूर करने के लिए आप जो कुछ देना चाहते हैं, वर्तमान स्थिति में उसकी जरूरत मैं महसूस नहीं कर रहा हूँ। अगर इसकी आवश्यकता होती तो स्वयं गुरुदेव मुझे प्रदान करते। आपसे क्यों लूँ? मैं अपने हृदय में चंचलता अनुभव कर रहा हूँ। अगर इससे दुःख बना रहता है तो रहने दें। इसे आपके माध्यम से दूर नहीं करना चाहता। गुरुदेव को जो कुछ करना है, वह उनकी कृपा से हो जायगा। वे जो अच्छा समझेंगे, वही होगा।''

सारी बातें सुनने के बाद महापुरुष अत्यन्त प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हुए बोले—''मैं तुम्हारी गुरुभक्ति देखकर आनन्द अनुभव कर रहा हूँ। मेरे शब्द को तुम्हें ग्रहण करने में अनिच्छुक देखकर मैं प्रसन्न हो गया। तुम जो कुछ प्राप्त करोगे; अपने गुरु के निकट से पाओगे। मैं आन्तरिकता से कह रहा हूँ कि इससे भी बड़ी वस्तु प्राप्त करोगे।'' इतना कहने के बाद उक्त महापुरुष अकस्मात अन्तर्हित हो गये। उस रात को फिर सतीश बाबू सो नहीं सके।

साधुओं के संगत की आवश्यकता है, पर इसका अर्थ यह नहीं कि गुरु के आदेश या उपदेश की उपेक्षा की जाय। साधु-सन्त स्वतः ही अपने-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपने गुरु द्वारा निर्देशित पथ पर चलने का आदेश देते हैं। कारण गुरु के साथ का सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध होता है जो परम्परारूप में नित्य एवं शाश्वत है।

दूसरे दिन सवेरे उठकर वे यथासम्भव नित्य क्रिया सम्पन्न करने के बाद व्याकुल भाव से गुरु के यहाँ चल पड़े। उन्हीं दिनों ज्ञात हुआ कि गुरुदेव आजकल कलकत्ता में हैं। एकान्त में गुरुदेव से मुलाकात करने के बाद उन्होंने सारी घटना सुनायी।

इसके बाद उन्होंने पूछा—"उक्त महापुरुष कौन थे ?"

गोस्वामी महाशय ने उत्तर दिया—"वे एक सिद्ध महात्मा या महापुरुष थे। महानिशा काल में संचरण करते समय तुम्हें योग्य आधार समझने के बाद तुम्हारा दुःख दूर करने के लिए, विगलित हो महाकरुणावश तुम्हारे निकट आये थे। अगर तुम उनके आदेशानुसार कार्य करते तो वास्तव में तुम्हारा दुःख दूर हो जाता, इसमें कोई संदेह नहीं।"

सतीश बाबू ने कहा—"मेरे मन द्विधा उत्पन्न हो गयी थी। उनसे कुछ ग्रहण करने से कहीं किसी प्रकार का व्यभिचार भाव हो जाय तो ? कुछ भी पाने या लेने की इच्छा होने पर मैं अपने गुरु से प्राप्त करूँगा या लूँगा। उनसे क्यों लूँगा या क्या पाऊँगा ? पर महाराज, एक बात है। दुःख-निवृत्ति ही मोक्ष है, इससे बढ़कर और कौन सी बात हो सकती है ? जिसे प्राप्त करने के लिए महात्माजी ने मुझे आशीर्वाद दिया है।"

गोस्वामी महाराज इस बात का समाधान करने के लिए बोले—"मोक्ष अध्यात्म-साधना की आखिरी वस्तु नहीं है, इससे बड़ी वस्तु है। अनेक सिद्धजन एवं भक्त तथा महापुरुष मुक्त होकर मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं, किन्तु परमवस्तु प्राप्त करने के लिए उनका चित्त अशान्त होकर घूम रहा है। मुक्त होने से होता क्या है ? उससे जीवन में सफलता प्राप्त नहीं होती। परमवस्तु है—भगवत-प्रेम। इसके लिए अनेक मुक्त पुरुष हाहाकार कर रहे हैं। यह सभी के भाग्य में नहीं होता।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सतीशचन्द्र ने जब कलकत्ता से पुरी जाने का निश्चय किया तब गोस्वामी महाराज ने उन्हें एकान्त में बुलाकर कुछ उपदेश दिया और कहा कि इनका यथाशक्ति आजीवन पालन करते रहना।

इस आदेश का यथार्थ उद्देश्य यह था कि भगवान के प्रति अपना आत्म समर्पण एवं पूर्ण रूप से उन पर विश्वास करते हुए निर्भर रहना। अर्थ-उपार्जन की चेष्टा से विरत रहना—निर्देशों में अन्यतम था।

कलकत्ता हाईकोर्ट में वकालत करना वे पहले ही छोड़ चुके थे। अर्थप्राप्ति के लिए कोई नौकरी न करें, पुस्तक प्रकाशनादि के द्वारा रकम न पैदा करें, व्यवसाय या अपनी आवश्यकता के लिए भीख न माँगे। लेकिन स्वतःस्फूर्त रूप में, सात्त्विक रूप में जितनी रकम आ जाय, उससे जीवनयापन करने का आदेश प्राप्त हो गया था। यद्यपि यह सब आदेश कठोर, कठिन और अद्भुत थे, तद्यपि सतीश बाबू अपने में इन आदेशों का अक्षरशः पालन करते रहे। सन् १९१४ ई० की प्रथम मुलाकात से लेकर देहावसानकाल सन् १९४८ ई० तक इन नियमों में कोई व्यतिक्रम होते नहीं देखा।

प्रति माह हजारों रुपये आते थे, पर इन रुपयों को वे छूते तक नहीं थे। गलत ढंग से प्राप्त रकम को वे किसी भी रूप में स्वीकार नहीं करते थे। प्रयोजन के अतिरिक्त धन प्राप्त करने की न तो चेष्टा करते थे और न ग्रहण करते थे।

एक बार कलकत्ता से एक प्रमुख उपद्योगपति सेठ गौरीशंकर गोयनका उनका दर्शन करने आये थे। उस समय सतीश बाबू फटहा कुर्त्ता पहने हुए थे। यह देखकर उन्होंने एक कुर्त्ता भिजवाया। सतीश बाबू ने उसे नहीं लिया। वापस करते हुए उन्होंने कहा—"अभी दूसरे कुर्त्ते की आवश्यकता नहीं हुई है, कारण इस कुर्त्ते से मेरा काम चल रहा है। फलतः इस कुर्त्ते की आवश्यकता नहीं है।"

उनके पास जो रुपये आते थे, उसीसे उनका काम चल जाता था। शेष रकम जगन्नाथ देव के भोग तथा अन्य धार्मिक कार्यों में व्यय करते

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

थे। सतीश बाबू ने निर्देश दिया था कि उनके तिरोधान के पश्चात् धर्म-कार्य यथावत चलता रहे।

सतीश बाबू कहा करते थे—"साधन-जीवन में साधक सर्वदा भगवान की सान्निध्यता अनुभव करता है। दृढ़ रूप में भगवान की कृपा-वर्षा होती है, वह भी मुक्ति पाने पर सम्भव है—उस समय साधक का विश्वास सुदृढ़ होकर प्रत्यक्षीभूत रूप में दृष्टिगत होता है। जब तक मुक्ति प्राप्त नहीं होती तब तक ऐसा अनुभव नहीं होता। श्रीमूर्त्तिदर्शन-पूर्ण आत्म समर्पण के बाद सम्भव है। तभी भगवान पर विश्वास होता है। यह भाव भी स्थायी नहीं होता, अपनी साधना के जरिए उच्चमार्ग तक जाना सम्भव नहीं होता, इसीलिए जब प्रभु या गुरु पर सम्पूर्ण रूप से निर्भरता होती है तब ज्ञान होता है कि उन्होंने मुझे ग्रहण किया है, जो कुछ मैं कर रहा हूँ, सब कुछ उन्हीं के द्वारा सम्पादित या अनुष्ठित हो रहा है—सभी कार्य स्वाभाविक रूप से निवेदित हो रहे हैं। यह भाव होने पर साधक का मुख्य उद्देश्य पूर्ण होता है अर्थात् भगवान या श्री गुरु के प्रति प्रीति और प्रसन्नता प्राप्त होती है।

अपने प्रयत्न से साधक जब कामना सिद्ध करने में असमर्थ होता है तब कर्तृत्वाभिमान अन्तर्हित हो जाता है। जब कर्तृत्वाभिमान क्रमशः क्षय प्राप्त करता है तब ईश्वरोपलब्धि क्रमशः तीव्रतर होती है और साधक अपने निर्दिष्ट मार्ग पर निर्दिष्ट रूप से अग्रसर होता है। अपने प्रयत्न से लभ्य वस्तु प्राप्त करने पर अहंकार, अन्यथा होने पर हताशा होती है। साधक की प्राथमिक आकांक्षा क्या है? गुरु की प्रीति प्राप्त कर, अपने विवेक के अनुसार निर्णय करके साधना के मार्ग पर बढ़ना चाहिए। गुरु की प्रीति प्राप्त करने पर ही साधक का भविष्य बनता है।

जीवों की दुर्दशा और कष्ट के कारण हैं—मूलतः भगवान से विच्छिन्नता। मायाचक्र में फँसकर, भागवत कार्यक्रम को विस्मरण कर देना ही जीव का रोग और व्याधि है।

दुःख, कष्ट और दुर्दशा से निष्कृति पाने बाद—आनन्द पाने के-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लिए—जप, ध्यान एवं भगवत्-अनुष्ठान प्रधान कार्य हैं, पर इससे भव-रोग विनष्ट नहीं होता। संकल्प-विकल्प रूप में कुछ आशा-आकांक्षा जगती है, वह सब धीरे-धीरे निवृत्त होता है।

साधन-भजन के द्वारा आनन्द प्राप्त होगा, ऐसी आशा करना ही श्रेष्ठ है। इससे यथाविध रीति-अनुसार वह प्राप्त होता है।

अपने प्रयत्न तथा स्वतन्त्र-शक्ति के आश्रय से आनन्द की आकांक्षा अवश्य होती है। अगर इससे आनन्द न मिला तो चित्त म्रियमान हो जाता है तब साधना में मन नहीं लगता।

यह भावना रखना उचित है कि जो कुछ करता हूँ, कहता या सोचता हूँ, उससे तुम्हें प्रसन्न करूँगा। अपने आनन्द के लिए नहीं। भगवत् विमुखता होने पर कर्तृत्वाभिमान होता है जिसके प्रभाव के कारण गुरु के ईप्सित कर्म से दूर हो जाना पड़ता है। यहाँ तक कि अपना सामर्थ्य भी नष्ट हो जाता है। भगवत विषय में उपाय और उद्देश्य रहने पर उसे भगवत्ता कहा जाता है। यही साधक के जीवन का उद्देश्य है, इसमें सफलता या विफलता कुछ नहीं रहती।

भगवत्-प्रेम के नाम पर अगर कोई साधक यथाशक्ति प्रयत्न करता है और उसमें उसका लक्ष्य रहे, भगवत्-कार्य के प्रति दृष्टि रखते हुए किसी कार्य में लिप्त हो जाय, यहाँ तक कि अगर मन में किसी प्रकार की स्वार्थ-सिद्धि करने की वासना न रहे तो सारा कार्य गुरु की शक्ति के प्रभाव से सिद्ध हो जाता है।

यहाँ ध्यान रखना होगा कि सर्वदा यथार्थ धर्म-जीवन और आदर्शगत अनुभूति प्राप्त न होने पर भी श्रीगुरुचरणों में आत्मनिवेदन करते रहना। आत्मनिवेदन के बाद आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त होता है। वास्तविक उन्नति आध्यात्मिक अनुभव से प्राप्त नहीं होती, इससे केवल अहंकार उत्पन्न होता है और उसमें वृद्धि होती है किन्तु आत्मनिवेदन के बाद जो आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त होती है, उसमें अहंकार नहीं रहता।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सतीश बाबू कहा करते थे—'मुक्त पुरुष को ही अलौकिकत्व और नाना प्रकार की शक्ति का अनुभव होता है। पर मुक्ति प्राप्त करने के पहले अगर इस शक्ति का अनुभव हुआ तो आफत आती है। इससे आत्माभिमान स्फीत हो उठता है और धार्मिक-जीवन की प्रगति अवरुद्ध हो जाती है।

भगवान के चरणों में आत्मनिवेदन करने के बाद श्रीभगवान आश्रित जीव को आत्मसात कर लेते हैं। शक्ति और अनुभव बाहर की वस्तु है। इसमें आसक्ति होने पर परम वस्तु की प्राप्ति में बाधा आती है।

श्रीभगवान की गोद में बैठे रहने पर वह उपलब्धि नहीं होती। साधक का मुख्य उद्देश्य ऐसा होना चाहिए कि 'श्रीभगवान की गोद में बैठा हूँ' इस तरह का भाव सर्वदा अपनाना चाहिए। उस स्थिति में डर की बात नहीं रहती। यहाँ तक सैकड़ों अनुभूतियों का क्रमशः स्फुरण होता है, उस ओर साधक का ध्यान नहीं रहता। आत्म-निवेदन के माध्यम से उसका अहंकार पहले ही दूर हो गया है, इसलिए नाम, जप आदि साधना का एकमात्र उद्देश्य नहीं है। भगवत-प्रीति के लिए भगवान के आदेशों का पालन करना साधक का लक्ष्य होना आवश्यक है।

भगवत्-आश्रय या गुरु-शरणागति के बारे में आपका सिद्धान्त है कि शिष्य की साधना वहीं तक जहाँ तक गुरु का अनुगत हुआ जा सके एवं गुरु का आदेश पाने पर किसी प्रकार की साधना या तपस्या की आवश्यकता नहीं होती। श्री गुरु स्वयं ही सब कर देते हैं या करा देते हैं।

जो लोग श्री गुरु के चरणों का आश्रय लेकर निर्भर रहते हैं या दिन गुजारते हैं, उनका कोई प्रारब्ध हो ही नहीं सकता, उनका कोई कार्य बाकी नहीं रहता, धीरे-धीरे समयानुसार सभी कार्य सम्पन्न हो जाते हैं।

सतीश बाबू की साधना के तीन स्तर हैं—(१) शिशुभाव इसमें जीव-सेवा प्रति जीव भगवान की सन्तानें शिशु, (२) शास्त्रानुवर्त्तन, (३) भगवत

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आराधना। जब भगवान के साथ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, तब इन तीनों के बाद साधना की दशा समाप्त होकर भजन आरम्भ होता है।

सतीश बाबू की जीवन-यात्रा उत्तरोत्तर विकसित होने में तीनों स्तरों की स्थिति स्पष्ट है।

प्रस्तावनाकाल—१८६५ ई० से १८९१ ई० तक शिक्षा-अध्ययन, वकालत। दीक्षा-वित्तेषणा समाप्त करने के बाद आकाशवृत्ति ग्रहण करना। इसके बाद एषणा-जीवन धारण करना आध्यात्मिक-जीवन की भूमिका मात्र है।

प्रथम स्तर

सन् १८९३ से १९१३ ई० तक उनका जीव-सेवा काल था। हाईकोर्ट की प्रेक्टिस छोड़ने के बाद एकान्तवास और योग-साधना निरन्तर करते रहे। आपके गुरु का कहना था कि इनके लिए सभी साधना आवश्यक नहीं है। इनका मुख्य कर्त्तव्य है जगत के लोगों को शिक्षा देना, निस्स्वार्थ रूप से जन-सेवा इनके जीवन का प्रधान लक्ष्य होना चाहिए।

अर्थ की ओर दृष्टि या आग्रह करने की मनाही थी। श्रीगुरु के आदेशानुसार १६ वर्ष तक सतीश बाबू शिक्षा के क्षेत्र में काफी कार्य करते रहे। डान सोसायटी, भागवत चतुष्पाठी आदि संस्थाओं की स्थापना करके बंगाल में राष्ट्रीय-शिक्षा का प्रशंसनीय कार्य उन्होंने किया था।

द्वितीय स्तर

सन् १९१३ से १९३० ई० तक उनका शास्त्रानुवर्त्तन युग था। इन्हीं दिनों सतीश बाबू से मेरा परिचय हुआ था।

तृतीय स्तर

सन् १९३० से १९४८ ई० तक उनका भगवत-आराधना का समय था। इन्हीं दिनों उनका भगवत्-साक्षात्कार हुआ था। १८ अप्रैल १९४८ ई० में उनका देहावसान हुआ था।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उनके गुरुदेव श्री विजयकृष्ण गोस्वामी का मन्तव्य था—'सतीश चन्द्र अपने दो पूर्व जन्म में संन्यासी थे, इसलिए यह जन्म उनका आखिरी ज़न्म था।' इस जन्म में पूर्ववत जीवन व्यतीत करते रहे। श्री गुरु की कृपा से उन्होंने भगवत-कृपा प्राप्त की थी। इसे वे परम पुरुषार्थ मानते रहे।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के संचालक आशुतोष मुखर्जी उनके बचपन के मित्र थे। दोनों एक साथ प्रेसिडेंसी कालेज में पढ़ते थे। गणित में आशुतोष मुखर्जी और सतीशचन्द्र मुखर्जी अंग्रेजी में प्रथम श्रेणी बराबर प्राप्त करते रहे। दोनों एक दूसरे को बहुत चाहते थे।

जिन दिनों सतीश बाबू काशीवास करते रहे, उन दिनों सर आशुतोष उनसे मिलने के लिए आये थे। दोनों व्यक्तियों में देर तक बातें होती रहीं। यहाँ तक कि सर आशुतोष सतीशचन्द्र के जीवन-आदर्श से प्रभावित हुए थे। विदा लेते समय उन्होंने कहा था—"सतीश, छात्र जीवन और वकालत करते समय हम दोनों एक थे, लेकिन अब देख रहा हूँ कि तुम विजयी हो गये हो और मैं हार गया हूँ।"

गांधीजी भी सतीश बाबू से श्रद्धा करते थे। असहयोग आन्दोलन काल से लेकर अपने निधन काल तक दोनों में प्रगाढ़ मैत्री थी। दोनों व्यक्तियों में बराबर पत्राचार होता था। डा० राजेन्द्रप्रसाद (प्रथम राष्ट्रपति) गाँधीजी के परम भक्त थे। दूसरी ओर डा० राजेन्द्रप्रसाद सतीशचन्द्र के अत्यन्त प्रिय अनुगत शिष्य थे।

डा० राजेन्द्रप्रसाद के माध्यम से गाँधीजी के साथ सतीश बाबू से सम्पर्क होता रहा। असहयोग आन्दोलन के समय 'यंग इंडिया' के सम्पादन में सतीश बाबू के द्वारा ही गाँधीजी के नैतिक जीवन की उत्कर्षता, निष्ठा शुद्धिवृत्ति, सात्त्विकता, आचार आदि प्रभावित हुए थे। फिर भी दोनों में एक विषय पर पर्याप्त मतभेद था।

सतीश बाबू गुरु के परम भक्त थे और गुरु की कृपा से पूर्णता प्राप्त

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर चुके थे या पूर्ण से साक्षात किया था। सद्गुरु प्राप्त करने के कारण वे अपने को धन्य समझते रहे।

उनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य गुरु थे, इसलिए गुरु वाक्य पालन करने को महान आदर्श समझते रहे। पूर्ण आन्तरिकता के साथ गुरु-आज्ञा का पालन करने का महाव्रत उन्होंने ले रखा था। इसमें यानी गुरु-वाक्य में अपने विचार या विवेक को कोई स्थान नहीं देते थे। यही वजह है कि उनकी गुरु-निष्ठा सत्वर प्रतिष्ठित हुई थी। गाँधी के विचार इसके विपरीत थे।

गाँधीजी का सिद्धान्त था कि शुद्ध भाव और विचार के द्वारा आचार एवं अनुष्ठान के माध्यम से विवेक उत्पन्न होगा। उसका अनुसरण करना या उसी के अनुसार जीवन को संचालित करना चाहिए। वे यह भी मानते थे कि संस्कार युक्त विवेक वाणी में कभी-कभी गलतियाँ हो सकती हैं जो कि मन के प्रभाव से उत्पन्न होती हैं, क्योंकि विवेक वाणी साधारणतः कल्पना से उत्पन्न होती है, इसीलिए गांधीजी इसे बीच-बीच में छोड़ देते थे। शोधित विवेक वाणी, युक्ति-पूर्ण विचार ही उनके कर्त्तव्यों का दिग्दर्शन है।

गुरु का आदेश अगर युक्ति विरुद्ध मालूम पड़े और अपने विवेक के प्रतिकूल हो तो गाँधीजी उसे नहीं मानते थे। सद्गुरु की कृपा जब तक प्राप्त न हो तबतक विचार और विवेक से काम चलाना श्रेयस्कर है। लौकिक दृष्टि से गाँधीजी तथा तात्त्विक दृष्टि से सतीशचन्द्र का आदर्श यथायथ है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जगदीश मुखोपाध्याय

आप एक नवयुवक थे। अचानक एक दिन गंगा किनारे दशाश्वमेध घाट पर टहलते समय इनके साथ मेरा परिचय हुआ। यद्यपि वे युवक थे तथापि उनकी अलौकिक सामर्थ्य देखकर मैं मुग्ध हो उठा था।

मैंने यह सुना था कि आप काशी के प्रसिद्ध विद्वान गोविन्द वेदाध्यायी महाशय से सम्बन्धित थे। आपके श्वसुर महाशय काशीवास कर रहे थे जो कलकत्ता के किसी योरोपीय फर्म से अवकाश ग्रहण करने के बाद वे काशी आकर बस गये। वे अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। तिल-भाँडेश्वर स्थित उच्च विद्यालय के निकट रहते थे। जगदीश महाशय इनके साथ रहते थे। मैं अनेक बार उनके घर जाकर उनसे बातचीत और विभिन्न विषयों पर चर्चा करता था वे। स्वयं भी मेरे यहाँ आया करते थे।

उनका कहना था कि गुरु का महत्त्व क्या है, इसे समझने के लिए गुरु का संग करना चाहिए। मैंने उनके श्वसुर महाशय की जबानी सुना था— इनके भीतर ऐसी सामर्थ्य है कि अगर इनके निकट कुछ देर शान्त होकर बैठें तो शान्ति प्राप्त होती है तथा नाना प्रकार के दिव्य दर्शन की अनुभूति होती है। इसके लिए किसी प्रकार के जप की आवश्यकता नहीं और न किसी प्रकार के ध्यान की।

इन्हीं दिनों बसन्त कुमार भट्टाचार्य नामक एक पूर्वी बंगाल के डाक्टर काशी में रहते थे। वे धार्मिक प्रवृत्ति के थे और मेरे परिचित थे। उन्होंने भी इनके सिद्धि के संबंध में काफी बातें सुनी थीं। आपकी जबानी कुछ बातें सुनने के बाद मैं उनके अनुरोध पर उन्हें साथ ले, शाम के बाद मुखोपाध्याय जी के यहाँ गया था।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जगदीश बाबू शान्त प्रकृति के व्यक्ति थे। उन्होंने कहा—"मैं बैठा रहूँगा। आप लोग भी मेरी तरह बैठे रहें। प्रयत्न करिये जिससे चिन्ताशून्य हो सकें। इसके बाद देखिये, क्या होता है।"

डाक्टर बाबू उनके निर्देशानुसार इसी प्रकार देर तक बैठे रहे। इसके बाद उन्हें अद्‌भुत दर्शन एवं अनुभव हुआ। ध्यान भंग होने के बाद उन्होंने मुझसे कहा—"मेरा चित्त शान्त हो गया है। चारों और नाना प्रकार के प्रकाश देखने के बाद अकस्मात मेरा इष्ट मंत्र जाग्रत हुआ। सिर्फ यही नहीं, इसी समय वृक्षादि देखने में आये। मैंने यह भी देखा कि उन वृक्षों के पत्ते-पत्ते पर मेरा इष्ट मंत्र अंकित है। इस तरह की स्थिति लगभग ४५ मिनट तक थी। बाद में बड़ा आश्चर्य अनुभव होने लगा—चित्त विक्षेप अधिकांश क्षेत्र में शान्त हो गया था। लेकिन मैंने अपने इष्ट मंत्र के बारे में किसी को नहीं बताया था, आखिर वह कैसे प्रकट हो गया ?"

इसके बाद से जगदीश बाबू की अलौकिक शक्ति देखकर डाक्टर बाबू के मन में किसी प्रकार का संदेह नहीं रहा।

डाक्टर बाबू की जबानी इस तरह के अनुभव की बातें सुनकर मैं उत्साहित हो उठा और दूसरे दिन जगदीश बाबू के यहाँ चलने का प्रस्ताव रखा। किन्तु वे पुनः जाने को तैयार नहीं हुए। कहा—"अब फिलहाल नहीं जाऊँगा, इस वक्त पुनः जाना उचित नहीं लग रहा है। कारण, कुछ प्रतिकूल अवस्था मेरे भीतर उसी दिन प्रवेश कर गयी है। उसे दूर करने के बाद ही मैं वहाँ जाऊँगा।"

इनके अलावा अन्य अनेक लोगों की जबानी जगदीश बाबू के बारे में इस प्रकार की चर्चाएँ सुन चुका था, पर कोई भी स्थायी रूप से उनका अनुरागी नहीं बन सका था। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि उनमें कुछ शक्ति का विकास था, संभवतः आधार के अनुकूल या प्रतिकूल विचार करने की सामर्थ्य उनमें नहीं थी। काफी दिनों तक काशी में रहने के बाद वे हरिद्वार चले गये। इसके बाद पुनः मुलाकात नहीं हुई।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

६

टीला बाबा (रासबिहारी साधु)

इस महात्मा के साथ मेरा परिचय हुआ था—बंधुवर भूषण बाबू के माध्यम से। भूषण बाबू इंगलिशिया लाइन स्थित नीला कुटीर के स्वत्वाधिकारी थे। कलकत्ता के प्रद्योतकुमार ठाकुर के रिश्तेदार थे। उनके मैनेजर के रूप में यहाँ निवास कर रहे थे।

आप टीला बाबा के पास आते-जाते थे। इन बाबाजी का नाम था-रासबिहारी साधु। चूँकि वे एक टीले पर रहते थे, इसलिए उनका नाम टीला बाबा हो गया था। यह टीला जगतगंज से रेलवे स्टेशन की ओर जाते समय इंडियन प्रेस के समीप था। टीले के ऊपर वे एक कुटिया बनाकर रहते थे। भूषण बाबू टीला बाबा के पत्र-लेखक थे यानी उनके पास जितने पत्र आते थे, उसे पढ़कर सुनाते और आदेशानुसार उत्तर लिखते थे। टीला बाबा पढ़ना-लिखना नहीं जानते थे। भूषण बाबू बड़े मनोयोग से उनकी सेवा करते थे।

टीला बाबा दीर्घायु थे। कहा जाता है कि सन् १८५७ वाले विद्रोह में उन्होंने भाग लिया था। एक बंगाली डिप्टी कलक्टर उन्हें डिब्रूगढ़ (आसाम) से यहाँ ले आये थे।

टीला बाबा के लिए उक्त डिप्टी कलक्टर महाशय नियमित रूप से प्रतिमाह रुपये भेजा करते थे। इसके अलावा कुछ धार्मिक लोग भी कुछ दान देते रहते थे जिससे उनका निर्वाह हो जाता था। वे अत्यन्त ज्ञानी पुरुष थे।

अक्सर कहा करते थे—'मानव माया से मुक्त होने के लिए माया की उपासना करता रहता है।' वे देवी-देवताओं की आराधना करने पर जोर नहीं देते थे। आत्मज्ञान, आत्मदर्शन और आदर्शगत जीवनयापन के प्रति उनका लक्ष्य था।

●

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

७

स्वामी ब्रह्मानन्द

इन महात्मा का गृहस्थ-नाम था—मोतीलाल गांगुली। ब्रह्मानन्द नाम गुरु ने दिया था। वे काशी में काफी दिनों तक थे। उच्चकोटि के महात्मा हैं, इस बात की ख्याति यहाँ थी। प्रत्यक्ष रूप से गृहस्थाश्रमी होने पर भी वास्तव में उनका व्यवहार, आचार और निष्ठा संन्यासियों की तरह थी।

अनेक प्रसिद्ध संन्यासी इनके निकट आकर उपदेश ग्रहण किया करते थे। मैंने उन्हें ज्ञानी और रसायनशास्त्र की प्रक्रिया में एक असाधारण अधिकार-सम्पन्न पुरुष के रूप में देखा था। उनका पुत्र अतुल गांगुली मेरे घर आता-जाता रहा, इसीलिए उनके साथ मेरी अन्तरंगता हुई थी।

मेरी दीक्षा सन् १९१८ ई० के जाड़े में हुई थी। इसी वर्ष प्रयाग में महाकुंभ हुआ था। महाकुंभ समाप्त होने पर अनेक साधु-संत प्रयाग से काशी आते हैं। ऐसे लोग दशाश्वमेध घाट तथा उस पार बालू पर रहने लगते हैं। यहाँ शिवरात्रि तक रहने के बाद अपने-अपने स्थान वापस चले जाते थे। इस समय भी मैंने देखा कि अनेक उच्चकोटि के महात्मा भी गांगुली महाशय के निकट सत्संग करने के लिए आये थे।

एक दिन वे गंगा तट पर बैठे थे। मैं वहाँ टहल रहा था। मुझे देखते ही उन्होंने कहा—"आपकी आँखें देखकर मैं समझ गया कि आपकी दीक्षा हो गयी है। मैं आपके अधिकार के अनुसार आपको एक वस्तु देना चाहता हूँ, कारण आप योग्य व्यक्ति हैं। इसलिए आप किसी भी दिन सबेरे ८ से १० बजे के भीतर मुझसे अवश्य मुलाकात करें।"

स्वामीजी के कथनानुसार कुछ दिनों बाद निर्दिष्ट समय पर उनसे मिलने के लिए उनके घर गया। मुझे आया देखकर उन्होंने आदर के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के साथ बाहर के बैठक में बैठाया। उस समय वहाँ कोई बाहरी व्यक्ति नहीं था। यह देखकर उन्होंने मुझे कुण्डलिनी एवं क्रियाशक्ति के बारे में उपदेश दिये। इसके बाद श्वास-प्रश्वास के रहस्यों के क्रम तथा विषयों के बारे में अनेक उपयोगी निर्देश दिये।

मैंने इस सम्बन्ध में उनके निजी अनुभवों के बारे में प्रश्न किया। वे मुझे साथ लेकर अपने कमरे में गये और कुछ अनुभव कराया। उससे यह ज्ञात हुआ कि यह वस्तु अखण्ड मण्डलाकार सूर्य की तरह है। यह प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क में विराजमान है। इसके साथ कुण्डलिनी का विशेष सम्बन्ध है।

इसके ऊपर भावनाओं के द्वारा अभ्यास करना चाहिए। उन्होंने बताया—"कोई भी साधक, किसी प्रकार की साधना या साधना मार्ग में, कुण्डलिनी का स्थान और उसकी अभिज्ञता सभी के लिए आवश्यक है। यही ज्ञान और भक्ति का प्रधान तथा एकमात्र सहायक है।"

विश्वास और अभ्यास से कुण्डलिनी-योग प्रत्यक्ष होता है। यह महात्मा और गृहस्थ होने पर भी वास्तव में एक महापुरुष थे। इनके निकट से कुछ प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त हुआ था।

स्वामीजी ने मुझसे कहा था कि उन्होंने इस गुप्त तत्त्व का ज्ञान अपने पूर्व-कर्मस्थल मेरठ के एक नागा बाबा से प्राप्त किया था।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

८

नवीनानन्द

काशी के कुरुक्षेत्र नामक स्थान में नवीनानन्द रहते थे। गुरुदेव के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के पूर्व ही नवीनानन्द के पास दो-एक बार दर्शन करने गया था। मेरे मित्र जो कि आगे चलकर गुरुभाई हुए, भूषण-चन्द्र दास वसु महाशय मलदहिया स्थित नीलकुटी में रहते थे। वे भी कभी-कभी स्वामीजी के पास आते थे। उनके साथ अनेक बार स्वामीजी के साथ मुलाकात कर चुका हूँ। श्री नवीनानन्द एक प्रसिद्ध योगी थे। आपकी योग-प्रणाली में विशिष्टता थी।

आप पूर्वी बंगाल के थे। उनका कहना था कि हम जिसे योग-प्रक्रिया कहते हैं, वही यज्ञ-क्रिया है, केवल नाम में अन्तर है। आजकल के यज्ञ में क्रिया-काण्ड, कर्म-काण्ड, की जो विविध प्रणालियाँ देखने में आती हैं, वह सब यज्ञ के बहिरंग हैं, इसीलिए अन्तरंग साधना ही योग के नाम से विख्यात है।

नवीनानन्द के मतानुसार प्रकृत-योग उसी को कहा जा सकता है जिसके द्वारा जीव को परिपूर्ण आत्मसत्ता प्राप्त होती है या आत्मा में प्रतिष्ठित होता है।

जो असीम अनन्त में परिछन्न होकर सीमाबद्ध हो गये हैं, दूसरी ओर वही इस प्रकार के सीमाबद्ध परिछन्न से मुक्त होकर असीम अनन्त में विस्तार प्राप्त कर सकते हैं। इसीलिए विभिन्न प्रकार के यज्ञों के अनुष्ठान की आवश्यकता है।

इसकी प्रथम अवस्था है—कुण्डलिनी-शक्ति को जाग्रत रखना। इसका नाम है—'गोमेध यज्ञ।' इसके बाद नाभि में जब यह कुण्डलिनी जाग्रत अवस्था में रहती है, उसे 'अश्वमेध यज्ञ' कहा जाता है। इसके बाद और

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उच्चावस्था में जब कुण्डलिनी हृदय में गमन करती है तब उसे 'श्वेन बाजपेय यज्ञ' कहा जाता है। क्रमशः ऊर्ध्व गति प्राप्त होने के बाद द्विदल या कुटस्थ में, इसके बाद सहस्रार में कुण्डलिनी के आने पर उसे 'सोम यज्ञ' कहा जाता है। यही है—अविराम आनन्द भूमि। अगर इस स्थिति को प्राप्त कर लिया जाय तो अहंकार दूर हो जाता है या नहीं रहता।

वे योग या यज्ञ के बारे में तरह-तरह की बातें कहा करते थे। उनके मतानुसार दक्षिणान्त क्रिया का अर्थ है—आत्मसमर्पण या आत्मनिवेदन।

विभिन्न स्थानों से अनेक लोग नवीनानन्द के पास शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे। एक युवक ने एक घटना के कारण उनके चरणों में आश्रय ले रखा था। स्वामीजी से योग-शिक्षा ग्रहण कर रहा था। किस मार्ग से आत्मा शरीर से बाहर होती है, स्वामीजी उसे अच्छी तरह देहाश्रित नाड़ियों का विवरण समझा रहे थे।

योगियों को नाड़ियों का ज्ञान अथवा संचारण-मार्ग की जानकारी रखना चाहिए। इसके कारण कभी-कभी विपद आती है। यह शिष्य स्वामीजी के निकट योग-शिक्षा प्राप्त करने के बाद पूर्वी बंगाल स्थित अपने घर चला गया।

कुछ दिनों बाद नारायणगंज (ढाका) से एक तार आया कि आपका अमुक शिष्य पागल हो गया है, लिहाजा इस सम्बन्ध में कोई उपाय करिये। विशिष्ट योग-क्रिया के कारण उसका दिमाग खराब हो गया था। डाक्टरों को इसकी जानकारी नहीं होती या उनके द्वारा इस रोग का इलाज संभव नहीं होता। तार पाने के बाद स्वामीजी नारायणगंज चले गये। वहाँ जाने पर उन्होंने देखा कि शिष्य को कुछ हुआ नहीं है, पर योग-भ्रष्ट होने के कारण यह दशा हुई है।

शिष्य के मस्तिष्क-विकार को दूर करने के बाद स्वामीजी जल्द वापस आ गये।

जब स्वामीजी से उक्त विकृति के बारे में प्रश्न किया गया तब उन्होंने कहा—"विकृत नहीं हुआ था। उसे जिस केन्द्र बिन्दु से बाहर होने का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपदेश दिया था, उसी मार्ग में गमन और आगमन करना उचित था। प्रवेश तो उसने ठीक मार्ग से ही किया था, समाधि भी हुई थी, लेकिन लौटते समय पथभ्रष्ट हो गया था। जिस मार्ग से बाहर अर्थात् जिस नाड़ी की सहायता से बाहर होना चाहिए, उसे वह भूल गया और दूसरी नाड़ी का आश्रय ले लिया था।"

फलस्वरूप इस नाड़ी से बहुत दूर जाने पर भी ब्राह्म-जगत तक पहुँच नहीं सका, इसीलिए रास्ता भूल गया और पागल हो गया। उसकी हालत ऐसी हो गयी थी कि वह किसी को पहचान नहीं पा रहा था। शिष्य की य : योग-भ्रष्टता गुरु के लिए बाहर कर देना कष्ट-साध्य कार्य नहीं है। अपने योगबल से इस शिष्य के बहिर्मुखी स्रोत को अन्तर्मुख के केन्द्र बिन्दु तक पहुँचा दिया था, इसके बाद उसे केन्द्र बिन्दु से अपनी धारा में गतिशील ढंग से चलने में सहायता दी। इस धारा से बहिर्मुख कभी न जाकर भी वह प्रकृतिस्थ या सटीक मार्ग का पता पा लेता।

यह योग प्रणाली 'राजाधिराज योग' के नाम से प्रसिद्ध है। इस घटना के कुछ दिनों बाद स्वामीजी का देहान्त हो गया।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

९

अन्ध मास्टर

जिन दिनों मैं बनारस संस्कृत कालेज के सरस्वती भवन में कार्य करता था, उन दिनों काशी में एक विशिष्ट महात्मा रहते थे। इस महात्मा का नाम अक्सर सुना करता था।

इस महात्मा का नाम था—वेणी माधव मुखोपाध्याय। आप पूर्ण रूप से अंधे थे। उम्र ८० वर्ष से अधिक थी। जवानी के दिनों आप काशी आये और फिर वापस नहीं गये। आपका जन्म एक संभ्रांत परिवार में हुआ था और उच्च शिक्षा प्राप्त कर चुके थे।

जहाँ तक स्मरण है, आपका जन्म स्थान हुगली (पश्चिमी बंगाल) के निकट कोई गाँव था। बचपन में चेचक की बीमारी में दोनों आँखें खराब हो गयीं। इसके बाद गृहस्थी छोड़कर किसी सज्जन की सहायता से शिवधाम काशी चले आये। अब बाबा विश्वनाथ के चरणों में पड़े हैं। काशी में आप बंगाली टोला के समीप पांडे हवेली मुहल्ले में रहते थे। यहाँ आने के बाद से अंतिम दिनों तक आप इसी मकान में निवास करते रहे। यहाँ तक कि जिस कमरे में आकर बसे, उस कमरे को भी नहीं छोड़ा।

कुछ ही दिनों में उनके तपस्या, ज्ञान और विभूति की ख्याति फैल गयी। वे मुहल्ले के छोटे-छोटे बच्चों को अपने कमरे में बुलाकर नित्य पढ़ाया करते थे। प्रत्येक बच्चा साध्यानुसार उन्हें महीने के अंत में रुपये देता था। इन्हीं रुपयों से उनके जीवन का निर्वाह होता था। इसीलिए काशी के लोगों में अंधा मास्टर के नाम से प्रसिद्ध थे।

आध्यात्मिक-साधना के क्षेत्र में इस महात्मा ने पर्याप्त उन्नति की थी। आपकी अनुभूति के बारे में वर्तमान लेखक से अनेक बातें हुई हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

काशी के अनेक विज्ञ व्यक्ति इन्हें जीवन्मुक्त पुरुष समझते थे। अपने बारे में उनकी धारणा ऐसी थी, ऐसा मेरा अनुमान है। कुछ लोगों को उनके पास जाकर योग सीखते देख चुका हूँ। स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर पृथक् करने की प्रणाली, बाद में आवश्यकतानुसार सूक्ष्म शरीर से भ्रमण तथा आवश्यकतानुसार ज्ञान संग्रह करके पुनः स्थूल शरीर में वापस आ जाना। उनके शिष्यों में इसी योग-प्रणाली को देखने के लिए ही मैं आया था। उनके शिष्यों में कुछ योग मार्ग में सिद्ध हो गये थे और कुछ विभूति अर्जन कर चुके थे। गंगा किनारे स्थित एक अन्नसत्र का रक्षक उनका शिष्य था।

अपने शिष्य, अन्नसत्र के रक्षक को गंगा किनारे सोने के लिए ले जाते थे और सो जाने पर उसे उसके घर पहुँचा देते थे। यह उनका नित्य का कर्म था। तीन दिन विश्व रूप देखने के बाद पुनः लौट आया। उस समय बातचीत या लौकिक व्यवहार उसमें नहीं था।

सन् १९१९–२० में नागा बाबा नामक एक महात्मा काशी में आये थे। वे सर्वदा दिगम्बर रूप में रहते थे तथा असाधारण सिद्ध थे। दशाश्वमेध से दरभंगा घाट के बीच रहते थे। भोजन वे नहीं करते थे, फिर भी आने-जाने वाले लोगों से प्रसन्न मुद्रा में बातचीत करते थे। कभी किसी से कुछ ग्रहण नहीं करते थे। मैं नित्य उनके यहाँ जाकर सत्संग करता था।

इस सिद्ध महापुरुष के पास अनेक प्रकार के ज्ञान भण्डार एवं अलौकिक तत्त्व थे। गंगा में अवगाहन करते समय कभी-कभी अपने शरीर से आँतें आदि बाहर निकालकर साफ करते थे। यह दृश्य अनेक लोग देख चुके थे। उक्त महापुरुष जितने बड़े ज्ञानी, योगी और सिद्धात्मा थे, उतने ही लौकिक व्यवहार में मिलनसार और सरल प्रकृति के थे। वे कोई रहस्य गुप्त नहीं रखते थे। तत्त्वों के बारे में जिस प्रकार कुछ गोपनीय नहीं रखते थे, उसी प्रकार साधारण विषयों के बारे में जो कुछ जानते थे, उसे बिना संकोच दूसरों के सामने प्रकट कर देते थे। यहाँ

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तक कि उससे दूसरे लोग लाभान्वित हो सकें, इसके लिए प्रयत्न भी करते थे। अगर कोई उनके निकट आकर उपदेश माँगता तो किसी को भी उपदेश देने में कुंठित नहीं होते थे।

एक दिन की बात याद है। उस दिन हम लोग नागा बाबा के साथ शाम को, दरभंगा घाट की बुर्जी पर बैठे तत्त्व-चर्चा कर रहे थे। ठीक इसी समय हमने देखा कि एक भक्त के साथ अंध मास्टर चले आ रहे हैं। भक्त उनका हाथ पकड़कर ला रहा था। इसके पूर्व नागा बाबा ने उन्हें न कभी देखा और न उनके बारे में कुछ सुना था। लेकिन हमने देखा कि ज्योंही नागा बाबा के समीप अंध मास्टर आये त्योंही नागा बाबा उठकर खड़े हो गये। जब अंध मास्टर ने आसन ग्रहण किया तब नागा बाबा ने अपना आसन ग्रहण किया। मैंने विशेष रूप से यह भी देखा कि नागा बाबा सिर झुकाये तीक्ष्ण दृष्टि से उनकी आँखें और मुँह को एकाग्र भाव से देखते रहे।

नागा बाबा से मैंने पूछा—"आपने इन्हें कभी देखा नहीं है। इनके बारे में कुछ जानते भी नहीं हैं, पर आप क्यों खड़े हो गये ?"

नागा बाबा ने कहा—"यह पुरुष ज्ञानी है, जीवन्मुक्त भी कहा जा सकता है, पर अभी मातृ-ऋण चुका नहीं सके हैं।"

मैंने पूछा—"मातृ-ऋण चुकाने से आपका क्या तात्पर्य है ?"

मेरे प्रश्न के उत्तर में नागा बाबा ने जो कुछ कहा, उसे सुनने पर बोधगम्य हुआ।

नागा बाबा कहा करते थे—"श्रवण के बिना मनन नहीं होता। नाम जप इस प्रकार करना चाहिए ताकि अपने द्वारा उच्चारित नाम स्वयं सुन सकें। मन ही मन नाम जप करने पर मन ही मन स्वयं सुनना आवश्यक है। अगर इसका अभ्यास कर लिया जाय तो सहज ही मनन या स्मृति उदय होती है, श्रुति ठीक न रहने पर स्मृति उत्पन्न नहीं होती। नाम के बिना श्रुति कैसे हो सकता है ? स्मृति होने पर धृति या निदिध्यासन अपने आप आता है। इसके बाद ही दर्शन या साक्षात्कार होता है।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नामयोग से देह-शुद्धि अपने आप होती है। कारण कुण्डलिनी के चैतन्य होने पर देह की शुद्धि में कमी नहीं होती।

"रस द्वारा देह-शोधन करना अत्यन्त कठिन है।" बाबाजी कहा करते थे—"देहशुद्धि करने में उन्हें लगभग साढ़े तीन वर्ष लगे थे। बिना देह-शुद्धि किये, देह को मुक्त नहीं किया जा सकता। जीवन-मुक्त अवस्था हो सकती है, किन्तु परब्रह्म प्राप्ति नहीं हो सकती। कहने का मतलब मातृ-ऋण परिशोध नहीं हो सकता। मायापाश छिन्न नहीं हो सकता। पंच तत्त्वों का स्वाभाविक आकर्षण अटूट रहता है, इसके लिए सोहं भाव जगता नहीं। अक्सर ऐसा देखा गया है कि किसी-किसी की आत्मा ब्रह्मलोक तक चली जाती है (गोकि मनन के कारण), किन्तु देह अशुद्ध होने के कारण वह ऊपर उठ नहीं पाता। वह भूलोक में पड़ा रहता है। इसलिए देह को साथ कर लेना आवश्यक है, यही है—देहशुद्धि। देह-शुद्धि न होने पर विज्ञान से पुनः अज्ञान में एवं अद्वैत से पुनः द्वैत में उतर नहीं पाता। अनेक लोग इसीलिए अद्वैत में अटके रह जाते हैं। उनके द्वारा परोपकार नहीं हो पाता। देह शुद्ध होने पर अविनाशी होता है।"

जलंधरनाथ इसी प्रकार के 'अविनाशी' थे। गोरखनाथ महासिद्ध जरूर थे, पर अविनाशी नहीं थे। देहशुद्धि का अर्थ है—देह का शून्यमय हो जाना। कंठ से सारा निचला भाग शून्य हो जाना, ऊपरी भाग में चैतन्य रहता है। पंचतत्त्व-शून्य होने का अर्थ है; देह का शून्य होना। देहशुद्धि न होने पर परब्रह्म तक स्थिति नहीं होती। ब्रह्मलोक में ही अवसान हो जाता है। यह जीवन्मुक्ति के अलावा अन्य कुछ नहीं है।

जगत् से पृथक होते समय प्रकृति से अलग होने पर भी आकर्षण रह जाता है। फलतः प्रकृति का त्याग नहीं हो पाता और न किया जा सकता है। प्रकृति और पुरुष का नित्य आवश्यक है। उस समय स्थिति से प्रकृति अलग न रहे, पुरुष के साथ विद्यमान रहे, तो पुरुष को किसी रूप

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में आशंका नहीं रहती। इसी का नाम है मातृ-ऋण-परिशोध। इसके बिना पूर्णत्व की प्राप्ति नहीं होती, पर सिद्ध अवस्था आ सकती है।

इसके बाद अंध मास्टर महाशय का साहचर्य प्राप्त हुआ था। काशी में ही उनका देहान्त हुआ था।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१०

माधव पागला

आज से ८१ वर्ष पूर्व दिसम्बर माह के प्रथम सप्ताह में, सन् १९०१ अगहन की १९वीं तिथि मंगलवार को, ढाका जिला के विक्रमपुर परगना के अन्तर्गत बिदगाव गाँव में स्थित ननिहाल में माधव पागला ने जन्म-ग्रहण किया था। उन लोगों का आदि निवास विक्रमपुर स्थित काची आइल (काइचाल) नामक गाँव में था।

आपके पिता अच्छे गायक थे। माता श्री श्रीराम ठाकुर के यहाँ रहती थीं। शैशव और बाल्यकाल में वे विदगाँव में थे। प्राथमिक अध्ययन समाप्त होने के बाद तेलीरबाग गाँव में उच्च विद्यालय में आकर भर्ती हुए और यहीं से मैट्रिक पास करने के बाद कलकत्ता चले आये। इसके बाद आपका कालेज-जीवन प्रारंभ हुआ। आशुतोष कालेज से विशेष कृतित्व के साथ उत्तीर्ण हुए। स्कूल और कालेज में आपका नाम था—शैलजाकान्त। बाल्यकाल से ही आपने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। गोपाल नाम से आप काशी में प्रसिद्ध थे।

पिताजी के निधन के पश्चात् माताजी को साथ लेकर काशी चले आये, क्योंकि नानाजी आनन्दचन्द्र विद्यालंकार (पण्डित) धुरंधर विद्वान थे। वे बंगीय सारस्वत समाज के सभापति तथा काशीनरेश के सभा पण्डित थे।

श्री श्रीराम ठाकुर से दीक्षा लेने के बाद से गोपालचन्द्र के मानसिक-जगत में एक परिवर्तन होना प्रारंभ हो गया। विषय विष लगने लगा। इसके बाद वे गुरुतत्त्व की साधना में लग गये।

शायद इसीलिए उच्च शिक्षित होने पर भी वे वैषयिक उन्नति को जीवन का चरम लक्ष्य स्वीकार करने में सक्षम नहीं हुए। फलतः आर्थिक

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्थिति दिन प्रति दिन खराब होती गयी। छात्रों को पढ़ाने से इन्हें १५ रुपये मिलते थे, उसी से माँ-बेटे का निर्वाह होता रहा।

काशी के दवनाथपुरा स्थित पंचमुण्डी के आसन (शव-शिवा मंदिर) पर बैठकर वे साधना करते थे। इससे उन्हें मंत्रसिद्धि प्राप्त हुई थी। उन दिनों की मानसिक स्थिति के बारे में माधव पागला ने स्वयं ही कहा है—"मंत्र सिद्धि के पश्चात् मैंने अनुभव किया कि मेरे तन-मन पर एक प्रकार का परिवर्तन हुआ है। मन सर्वदा उदासीन रहता था। शरीर काफी हल्का हो गया था। यहाँ तक कि सर्वदा ऐसा अनुभव होता कि जमीन पर पैदल न चलकर हवा में उड़ता रहूँ तो अच्छा हो।

साधारणतः लोगों के साथ बातचीत करने की इच्छा नहीं होती थी। ऊपर से वैषयिक कामों से दूर रहने की इच्छा बराबर बनी रहती थी। मित्रों के साथ बातचीत करते समय ज्ञान और धर्म के बारे में अधिकतर बातें किया करता था।"

कुछ दिनों के भीतर श्री श्री ठाकुर की कृपा से शिक्षा गुरु से मुलाकात हुई। उन्हें महापुरुष के रूप में पहचान लिया। वे थे—योगीवर श्रीयुक्त नरेन्द्रनाथ वंद्योपाध्याय। आगे चलकर वे पाण्डेचेरी स्थित श्री अरविन्द आश्रम में चले गये थे।

धीरे-धीरे गोपालचन्द्र के साधन-भजन में उन्नति होती गयी और पूर्व जीवन की स्मृतियाँ उभरती गयीं। कुछ दिनों बाद वे काशी में 'माधव पागला' के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

माधव पागला नामकरण रहस्य के बारे में उन्होंने कहा था—"ठीक किस नाम से इष्ट को बुलाने से मेरा मन तृप्त होगा? मेरे इष्ट के इतने नाम रहते हुए भी मेरा मन तृप्ति अनुभव नहीं कर रहा था। अचानक एक दिन कोदई की चौकी पास से शाम को गुजर रहा था। बरगद के पेड़ के नीचे ज्योंही आया त्योंही न जाने किसने कहा—'तू मुझे माधव कहकर पुकारना। इससे मैं संतुष्ट हो जाऊँगा।'

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यह बात सुनने के बाद से पुनः आनन्द की प्राप्ति हुई और तन-मन-प्राण में सिहरन तथा पुलक प्रभाव प्रवाहित होने लगा। लगता था, जैसे मेरा शरीर आनन्द का वेग सह्य नहीं कर पा रहा है। उस वक्त मैं तन्द्राग्रस्त की भाँति चल रहा था। तन्द्रावस्था में ही मेरे संस्कार प्रत्यक्ष हुए अर्थात् पूर्व जन्म की बातें याद आ गयीं—'मैं वही माधव पागला हूँ।'

विहार प्रान्त के छपरा जिला के एक गाँव में श्री श्रीमाधवजी का मंदिर है। मैं उसी मंदिर का पुजारी था। साधन-भजन के कारण मैं उन्मादी होकर हमेशा कहा करता था—'मेरा माधव बहुत अच्छा है।'

खाना-पीना भूल गया। फटही कथरी ओढ़कर पागलों की तरह चक्कर काटता। यह दृश्य देखकर लोग मुझे 'माधव पागला' कहते थे।

वट वृक्ष के नीचे 'माधव' नाम सुनते ही मेरी आँखों के सामने पूर्व जन्म की स्मृतियाँ उभर आयीं। तभी से माधव पागला-संस्कार मुझमें समाहित हो गया। इसके बाद से गोपालचन्द्र काशी में 'माधव पागला' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।"

इस महात्मा के साथ मेरी पहली मुलाकात श्री नरेन्द्रनाथ वंद्योपाध्याय के यहाँ हुई थी। यह सन् १९३६-३७ ई० की बात है। श्री नरेन्द्रनाथ उन दिनों काशी में बस स्टैण्ड के समीप श्री निताई मल्लिक के घर किराये पर रहते थे। वे अत्यन्त शान्त महापुरुष थे।

उनके निकट नित्य सुबह-शाम अनेक लोग शास्त्र अध्ययन करने आते, अनेक तत्त्वानुसंधानी अपनी जिज्ञासा लेकर आते, कुछ लोग अपनी शंकाओं का समाधान करने के लिए आते थे। एक दिन जब मैं दशाश्वमेध घाट पर गंगा-स्नान के पश्चात् उनके साथ गया तब उनके यहाँ माधव पागला को बैठे देखा। श्री वंद्योपाध्याय ने हम दोनों का आपस में परिचय कराया।

उन दिनों माधव पागला का स्वाध्याय योग चल रहा था। वे नित्य श्री वंद्योपाध्याय के यहाँ आकर नियमित रूप से प्रकृत-पथ-प्राप्ति की

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जानकारी प्राप्त कर रहे थे। मैं उनकी सरलता और तत्त्वज्ञान का परिचय प्राप्त कर प्रभावित हुआ था।

द्वितीय बार उनसे मेरी मुलाकात भदैनी स्थित श्री श्रीमाता आनन्दमयी आश्रम में आयोजित एक संत-सभा में हुई थी। उस संत-सभा में महामहोपाध्याय फणिभूषण भट्टाचार्य, स्वामी शंकरानन्द, स्वामी अखण्डानन्द, स्वामी मुक्तानन्द, सर पन्नालाल देव, शंकर मित्र, सतीश महाराज, प्रभात वंद्योपाध्याय, रवि बोस आदि महानुभाव व्यक्ति उपस्थित थे। उस सभा में माधव पागला ने खड़े होकर गीता के इस श्लोक का पाठ किया था—

बहुनां जन्मनामान्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥ (गीता)

आगे उन्होंने कहा कि किसी शक्ति के प्रभाव से या किसी शक्ति के प्रकट होने पर सर्वत्र वासुदेव के दर्शन होते हैं अर्थात् 'वासुदेव सर्वमिति' का भान होता है।

तब हमें लगा कि यह महात्मा इस सम्बन्ध में चिन्तन करते हैं। हम लोगों ने एक स्वर से इस सम्बन्ध में व्याख्या करने का अनुरोध किया। श्री श्रीमाता आनन्दमयी ने इसका समर्थन किया था। उन्होंने माधव पागला से अपने अनुभवों को अभिव्यक्त करने के लिए अनुरोध किया था।

माधव पागला ने व्याख्या करना प्रारम्भ किया—भक्ति की तीन प्रकार की शक्तियाँ है—संधिनी, संवित एवं ह्लादिनी। इनके स्वरूपों के बारे में अधिकांश लोग जानते हैं, इसलिए इन सभी का विवरण देना अनावश्यक है। मेरे अनुभव से इनमें संवित-शक्ति के प्रभाव से ही 'वासुदेव सर्वमिति' का बोध उत्पन्न होता है। महाप्रभु ने स्वयं ही स्पष्ट करते हुए कहा है—

स्थावर जंगम नाहं देखे, देखे कृष्णमूर्त्ति।
याहा याहा नेत्र परे हय इष्टस्फूर्त्ति॥ (चैतन्य चरितामृत)

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस घटना के बाद से माधव पागला से मेरी घनिष्ठता बढ़ गयी थी। श्री श्रीराम ठाकुर (उनके गुरुदेव) की साधना-पद्धति लिखकर वे क्रमशः मेरे पास भेजा करते थे। इन सबको पढ़कर मुझे आनन्द मिला था। ३–४ दिन बाद मैं उनसे मिलने गया। उनकी साधना के चतुर्थ क्रम की व्याख्या करने का उनसे अनुरोध किया, जहाँ इष्ट और साधक तदात्म होकर तत्त्वगत एक हो जाता है।

उन्होंने कहा—"जब साधक के चित्त में अहंकार कणमात्र नहीं होता या नहीं रहता तब तदात्म-बोध होता है या वह स्थिति प्राप्त होती है, इसकी मूल प्रेरक शक्ति प्रेममिश्रित भक्ति है, जब किसी प्रकार के पार्थिव विषय से सम्बन्ध नहीं रहता या नहीं होता।"

इसके बाद योग-साधना में उनकी अनुभूति देखकर मैंने उनसे 'शाम्भवी मुद्रा' का स्वरूप या साधन-प्रणाली की प्रक्रिया के सम्बन्ध में अपनी अनुभूतियों को सुनाने की प्रार्थना की। उस वक्त उन्होंने एक श्लोक सुनाया था।

इसके बाद उन्होंने कहा—"साधारण मनुष्यों की एक दृष्टि होती है; पर साधकों के पास दो दृष्टि होती है। एक बाहरी दृष्टि, दूसरी अन्तःदृष्टि। असली दृष्टि भीतरी होती है, इसी को ज्ञानदृष्टि कहा जाता है और बाहरी दृष्टि को व्यावहारिक दृष्टि कहा जाता है। दोनों दृष्टि सम्पन्न साधकों की आँखों की पलकें बहुत कम गिरती हैं अर्थात् अनिमेष नाम से अभिहित होता है। जिनके पास दो दृष्टि नहीं होती, वे वेद-शास्त्र के बारे में सम्यक् ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते अर्थात् वेदों के गुह्यार्थ नहीं समझ पाते। सांसारिक व्यक्ति व्यावहारिक दृष्टि से सन्तुष्ट रहते हैं।

शाम्भवी मुद्रा में अन्तःनिर्हित तत्त्वों को सिद्धयोगी के बिना हृदयंगम करना सहज नहीं है। यहाँ तक कि शाम्भवी मुद्रा की व्याख्या नहीं हो सकती। इस बारे में उपदेश देना या व्याख्या करना निरर्थक है। कारण, योगी की अन्तःदृष्टि की साधनालब्ध विषयवस्तु, इसका रहस्य साधना के माध्यम से ही जाना जा सकता है।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मैंने पूछा—"अन्तःलक्ष्य होने पर बहिःलक्ष्य या दृष्टि कहाँ रहती है ?"

उन्होंने कहा—"दहराकाश में, हृदय के भीतर द्वादश अंगुल के बराबर जो स्थान शून्य रहता है, उसे 'दहराकाश' कहा गया है।"

मैंने पूछा—"बाबा, आप इन विषयों से परिचित हैं, पर अन्य लोग किस तरह इसे प्राप्त कर सकते हैं ?"

उत्तर में उन्होंने कहा—"इस विद्या के बारे में प्रत्यक्ष उपदेश नहीं दिया जा सकता। यह एक मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क में रूपान्तरित मात्र होता है। गुरु के मन से शिष्य के मन में इस तत्त्व की प्रत्यक्षता संक्रमित होती है। शाम्भवी मुद्रा के जप अजपा में रूपान्तरित होते हैं।"

दूसरे दिन पुनः उनसे मिलने के लिए गया और सत्संग प्रारंभ किया। मैंने कहा—"आपकी स्थिति और गति अवधूतों की तरह लग रही है। आपको अपने गुरुदेव से जो प्राप्त हुआ है (आदेश) कृपया उसे कहिए। आपने संन्यास ग्रहण तो नहीं किया है।"

उत्तर देते हुए उन्होंने कहा—"एक दिन ११ बजे गंगा-स्नान कर रहा था तभी देखा—गुरुजी चिन्मय शरीर से गंगा पर खड़े हैं। हाथ दिखाते हुए उन्होंने कहा—'आप अपना जनेऊ मुझे दे दीजिए।' मैं विवश और अवाक् हो गया उनके उद्देश्य से (गुरुजी) अपना जनेऊ उतार कर समर्पित कर दिया। मेरा जनेऊ गंगा में डूब गया। स्नान करके जब घर वापस आया तब यज्ञोपवीत के बारे में परिताप होने लगा। मुझे लगा जैसे सामयिक उन्माद में आकर कहीं उसे फेंक तो नहीं दिया ? दूसरे ही क्षण यह विचार-विवेक मन में आया—'जब मैं अपना देह या शरीर को बाबा के चरणों में अर्पित कर चुका हूँ तब ऐसी चिन्ता नहीं करना चाहिए या इस तरह सोचने की आवश्यकता नहीं है। जनेऊ रहेगा या नहीं रहेगा, इस बारे में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है'।"

शास्त्रों का विधि-निषेध पालन करना अब मेरा कर्त्तव्य नहीं रहा। मैं सभी ओर से मुक्त हो गया हूँ। आगे चलकर भागवत में मैंने देखा कि

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No.....8596.....

दिगम्बर संन्यासी किसी पवित्र स्थान में जाकर अपना यज्ञोपवीत त्याग देते हैं।

इसके बाद इस सम्बन्ध में मुझे कुछ कहने का उन्होंने निर्देश दिया। मैंने कहा—"तत्त्व दृष्टि से आप अवधूत हैं, परन्तु आपके गुरुदेव ने जब आपका यज्ञोपवीत ग्रहण करके सभी प्रकार के वर्णाश्रम से मुक्त कर दिया है तथा सभी प्रकार के विधि-निषेध से मुक्त कर अब आपको रागानुगा भक्ति में प्रतिष्ठित कर चुके हैं तब किसी प्रकार के विधि-निषेध की आवश्यकता नहीं है, ऐसा मेरा विचार है।"

एक बार मैं जब देहरादून वाले आश्रम में था तब माधव पागलाजी ने एक पत्र एक व्यक्ति के हाथ भिजवाते हुए पूछा था—"भजन करते-करते जब मेरे शरीर का अवसान हो जायगा तब क्या पुनर्जन्म लेना पड़ेगा?" मैंने उक्त पत्रवाहक से कहा—"बाबाजी से कहना कि भक्तों के लिए सब-कुछ संभव है।" बाद में जब उनसे मुलाकात हुई तब उन्होंने कहा था—"आपका संदेश पाने के बाद इस विषय पर गंभीरतापूर्वक विचार किया था। मैंने अनुभव किया था कि यह जन्म दस बार हो चुका है। आगे मुझे जन्म नहीं लेना पड़ेगा।"

इसके बाद माधव पागला ने अपने पूर्व जीवन के बारे में विस्तार के साथ सुनाया था जो अद्‌भुत था। इस सम्बन्ध में कुछ तथ्य नीचे लिख रहा हूँ।

चार वर्ष की उम्र में पितृहीन हुए, कुलीन ब्राह्मण वंश में जन्म ग्रहण किया था। जब १२ वर्ष के हुए तब हरिद्वार में इनकी मुलाकात महात्मा भोलानन्द गिरि से हुई थी। इनकी इच्छा थी कि महात्मा भोलानन्द गिरि से दीक्षा लूँगा, पर महात्मा भोलानन्द गिरि ने स्पष्ट रूप से कहा था—"मेरे निकट तुम्हारी दीक्षा नहीं होगी। आगे एक महापुरुष तुम्हें दीक्षा देंगे।"

२२ वर्ष बाद यह संयोग प्राप्त हुआ। कुछ दिनों बाद महात्मा भोलानन्द गिरि के योग्य शिष्य मंडलेश्वर महादेवानन्द गिरि महाराज से काशी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No.

में मुलाकात हुई। बातचीत के सिलसिले में माधव पागला ने मंडलेश्वरजी से कहा—"आपके गुरुदेव ने मुझे दीक्षा देना अस्वीकार किया था जबकि मेरी इच्छा थी कि उनसे दीक्षा लूँ।"

मंडलेश्वर महादेवानन्द गिरि ने हँसकर कहा—"गुरु को खरीदा नहीं जा सकता। तुम्हारे गुरु जो हैं, वही तुम्हें दीक्षा देंगे।" मंडलेश्वर महादेवानन्द गिरि मैमनसिंह जिला स्थित टाँगाइल सब डिवीजन के प्रसिद्ध वकील थे। उपाधि थी—लाहिड़ी।

इसके बाद मैं कलकत्ता चला आया। वहाँ एक साल (सन् १९३६) तक रहने के बाद काशी चला आया। सन् १९४५ ई० में माताजी का देहान्त हो गया। इसके बाद बंगाली टोला में दो वर्ष रहने के बाद १९५० ई० में पातालेश्वर मुहल्ले में रहने लगा। पहले किराये के मकान में रहता था, बाद में (१९५७ ई०) एक मसजिद के बाहर वाले कमरे में रहने लगा जहाँ कुछ मुसलमान भक्त मेरे सेवक बने। उनकी श्रद्धा-भक्ति के कारण वहाँ रहने लगा।

शैलजानन्द बनर्जी से कब आपका नाम 'माधव पागला' हुआ, यह प्रश्न पूछने पर उन्होंने उक्त रहस्य का उद्‌घाटन किया।

माधव पागला ने कहा—"मेरे शिक्षा गुरु श्री नरेन्द्रनाथ बनर्जी ने मुझे एक दिन उपदेश देते हुए कहा था कि छपरा जिला के किसी गाँव में एक साधु रहता था। वह सर्वदा 'मेरा माधव बहुत अच्छा है' कहता हुआ चारों ओर घूमता रहता था अर्थात् दिव्य उन्मादी हो गया था। वह पागल मैं ही हूँ। उक्त माधव पागला की दिव्य शक्तियाँ मेरे भीतर से सम्पूर्ण रूप में प्रकट हुई हैं।"

"श्री श्री माता आनन्दमयी भी परवर्ती में इसका विन्यास कर चुकी थीं, इसीलिए पूर्व स्मृति के प्रभाव के कारण पूर्व भाव उदय हुआ था। शायद इसीलिए १२ वर्ष तक काशी की सड़कों-गलियों में चलते समय तन पर कोई वस्त्र नहीं रखता था। पागलों की तरह घूमता-फिरता था।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अधिकांश लोग मुझे अत्यन्त विपन्न या अभावग्रस्त समझा करते थे। पर मेरे भीतर सर्वदा आनन्द का प्रवाह होता था अर्थात मैं आनन्द के सागर में डूबा रहता था। शरीर के प्रति कोई ध्यान नहीं रखता था और न कोई चिन्ता करता था। एक बार लगातार ३६ दिनों तक निराहार था। उन दिनों ब्रह्म चिन्ता में शरीर की पुष्टि होती रही।"

काशीवास करते समय माधव पागला अनेक विशिष्ट महात्माओं से सत्संग प्राप्त करते रहे जिनमें माधवानन्द गिरि, बालानन्द ब्रह्मचारी एवं शिष्य मोहनानन्द, सीताराम दास, ओंकार नाथ, स्वामी सर्वदानन्द, पातालेश्वर मसजिद के फकीर साहब, चौसट्टी के मौनी बाबा, काश्मीर के स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी प्रणवानन्द, हरिद्वार के ज्ञानानन्द, स्वामी कृष्णानन्द, शोभा माँ) तिलभांडेश्वर की रांगा माँ, अपने पिता-माता की चौथी सन्तान), रानीमहल के केवलानन्द ब्रह्मचारी आदि उल्लेखनीय हैं।

एक तीव्र वैराग्यसम्पन्न अवधूत महापुरुष होने पर भी एक गृहस्थ परिवार के साथ पारिवारिक सम्बन्ध आपने स्थापित किया था। यह विशेष रहस्य मात्र था और कुछ नहीं।

इस सम्बन्ध में प्रश्न करने पर उन्होंने कहा—"यदुलाल बनर्जी की इसी इलाके में दवाओं की एक दुकान थी। नरेन्द्र बनर्जी महाशय ने मुझे बुलाकर कहा—तुम इस परिवार के अभिन्न अंग स्वरूप हो। तब ध्यान लगाकर मैं इस सिद्धान्त में पहुँचा कि आप अगले जन्म में मेरे पिता थे। सन् १९५६ में उनका देहान्त हो गया। उनका एक पुत्र, पुत्रवधू और पत्नी थी जिन्हें मैं चाचीजी कहता था। पुत्र के चार संतान तथा परिवार का सारा दायित्व क्रमशः मेरे ऊपर आ गया। यहाँ तक कि परिवार के सभी लोग मेरी सेवा करते रहे। उसी प्रकार मैं स्वयं यथाशक्ति नाना प्रकार से सहायता करता था। सर्वदा बन्धन-विहीन होकर भी संस्कारवश बंधन में बँधा था।"

महात्मा राम ठाकुर की साधना प्रक्रिया प्राप्त हो गयी थी जिसे वे प्राप्त कर चुके थे। उनके गुरु की साधन प्रक्रियाओं या स्तरों को साधक —

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के लिए मैं लाभदायक समझता हूँ। लोक कल्याण के लिए इस सम्बन्ध में संक्षिप्त विवरण देना आवश्यक समझता हूँ। सन् १९६१ में लिखे उनके पत्रों के अनुसार कुछ उद्धरण दे रहा हूँ—

प्रथम क्रम

साधना के मार्ग में दृढ़ विश्वास लेकर स्थिर चित्त से साधक को आगे बढ़ना चाहिए। सबसे पहले श्री श्रीगुरु मूर्त्ति को उत्तम स्थान पर स्थापित करें, फिर यथानियम से भक्तिपूर्वक गन्ध-पुष्पादि द्वारा नाना उपचार से साध्यानुसार पूजा एवं स्तोत्र आदि पाठ करें।

प्राथमिक अवस्था में दैहिक क्लेश, मानसिक चंचलता और विषय चिन्ताओं का आविर्भाव होगा। इससे साधक किसी प्रकार की चिंता न करे या विचलित न हो, क्योंकि नियम-रक्षा करना उसका एकमात्र कर्म है।

श्री श्रीगुरु पूजा के समापन पर स्थिर होकर उसी मूर्त्ति के प्रति एक दृष्टि से कुछ देर तक दर्शन और मन ही मन मन्त्र जप करना चाहिए।

सांसारिक कार्य करते समय सर्वदा चैतन्ययुक्त होकर श्री गुरु के आश्रय में हूँ, उनकी प्रसन्नता के लिए कर्म कर रहा हूँ, यहाँ तक कि उनके द्वारा ही सभी कर्म निष्पन्न हो रहे हैं, इसी प्रकार की भावना लेकर संसार-यात्रा करना ही वास्तविक कर्म है। जप सभी कर्म करते समय जारी रहे और चरण स्मरण या ध्यान द्वारा चरण-स्मरण करना ही पूर्ण अवयव ध्यान प्रशस्त है। इसके बाद मुखमंडल से प्रारम्भ कर चरण या पद युगल तक ध्यान करना आवश्यक है। इस प्रकार ध्यानाभ्यास कभी बन्द न होने पाये। साधक जिस रूप से दृष्टि में रख सके, उसी प्रकार का ध्यान आवश्यक है या अभ्यास के द्वारा उसे अधीन में रखना चाहिए। कुछ दिनों तक अभ्यास करने के बाद परिपक्वता प्राप्त होती है। इसके बाद द्वितीय स्तर या क्रम स्वाभाविक रूप से प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त कर लेगा।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

द्वितीय क्रम

इस अवस्था में श्री श्रीगुरुदेव की पूर्णांग रूप-चिन्ता एवं सर्वावस्था में जप-ध्यान करना आवश्यक है। अभ्यास की दृढ़ता के बाद कानों में साँ-साँ शब्द, शंख, घंटा या दूर से आती बंशी-ध्वनि सुनाई देती है। इस समय अश्रु, कम्पन, पुलक आदि के लक्षण शरीर पर होते हैं। इस स्थिति को कोई रोग समझने की गलती नहीं करना चाहिए और न घबड़ाना चाहिए। इन लक्षणों को उत्तम लक्षण समझकर आनन्द प्राप्त करना श्रेष्ठ उपाय है। अबाधित जप ही सिद्ध होने का प्रमाण है। श्री गुरु की मूर्त्ति मानस पट में स्थायी रूप से रखना चाहिए। इसमें सफलता प्राप्त करने पर मन स्थिर हो जाता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष होता है। यही है—द्वितीय क्रम या स्तर की परिणति।

तृतीय क्रम

श्री गुरु की पूर्णांग मूर्त्ति स्मरण-मननपूर्वक जप करते-करते देह, मन, प्राण श्री गुरु को ही समर्पित हो जाता है।

शरीर को श्री गुरु अपनी इच्छा से चलायेंगे या चला रहे हैं एवं भीतर सर्वदा गुरुमूर्त्ति दर्शन होगा, इससे विषयशक्ति क्रमशः लुप्त हो जायगी। काम-क्रोधादि की प्रबलता घट जायगी, मन शान्त और प्रसन्न होगा, शरीर को आत्मा समझने का भ्रम दूर होगा, सारा अभिमान क्रमशः दूर हो जायगा। सांसारिक भाव, सभी का प्रधान्य घट जायगा। श्री श्रीगुरु की शक्ति पर श्रद्धा और विश्वास दृढ़रूप में स्थायी होगा। गुरुकृपा प्राप्त करने पर चित्त का शान्त रूप और चिन्मय सत्ता का आविर्भाव अन्तर के अन्तःस्थल में प्रकट होगा। सभी इन्द्रियादि, तन्मात्रादि गुरु-शक्ति के प्रभाव से चलते रहेंगे तब अपना कोई रूप कर्तृत्व-बोध नहीं रहेगा। फलस्वरूप चित्त में तादात्मबोध स्थितिरूप में भी महास्थिति में स्थान प्राप्त करेगा। तभी गुरु और शिष्य के भीतर अभेद तत्त्वों का समन्वय या एकात्मबोध जाग्रत होगा। इसके बाद अभेद

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तत्त्व या एकात्मबोध के कारण अपना है, प्रत्यक्ष होगा। तब समस्त दायित्वबोध आनन्दपूर्वक सम्पन्न होगा।

इसी समय साधक मुक्त रूप में विचरण करने की शक्ति प्राप्त करेगा, इसी को मोक्षत्व प्राप्त करना कहा जाता है। धर्माधर्म, पाप-पुण्य, सुख-दुःखादि, संस्कारादि उसे किसी भी प्रकार से विचलित नहीं कर पाते। उस समय साधक या शिष्य सभी कर्त्तव्य या जिम्मेवारी श्री गुरु को समर्पण कर निरपेक्षरूप में जीवन धारण कर सकता है। यह भक्ति संसार में अत्यन्त दुर्लभ है। इस प्रकार की अवस्था-प्राप्ति के लिए या इसे प्राप्त न करने पर, रागानुग भजन असंभव है। इसीलिए श्री श्रीचैतन्य चरितामृत में कहा गया है—

'शास्त्रयुक्ति नाहि माने रागानुगा प्रकृति।'

इस अवस्था को प्राप्त करने के बाद शाम्भवी मुद्रा के प्रयोग में अखण्ड नामजप के द्वारा शुद्ध से विशुद्ध होते हैं तब देहाभिमान सम्पूर्ण रूप से नहीं रहता अर्थात् गुणातीत रूप में स्थान प्राप्त होता है। यह सभी विषय अति गुह्य तत्त्व हैं।

इसके बाद अर्थात् परिपक्वता के बाद या शिष्य के देह मन और आत्मा की शुद्धावस्था देखने के बाद श्री गुरु शिष्य के भीतर प्रवेश करने में सक्षम होते हैं। शुद्धता के प्रभाव से अनेक अलौकिक कार्य करवाते हैं। अगर इसे अपनी शक्ति या सामर्थ्य समझे तो इस अहंकार के कारण अपना अनिष्ट हो सकता है। अग्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो सकता है। फलतः इस दिशा में विशेष सावधानी या सतर्कता आवश्यक है।

चतुर्थ क्रम

पूर्व वर्णित गुणातीत अवस्था को पाकर साधक को चतुर्थ क्रम में पहुँचना पड़ेगा। यहाँ भजन एकमात्र गुरुशक्ति द्वारा अनुष्ठित होता है। इस समय में भी जीव का अपना साधन-संस्कार रहता है, दूसरी ओर साधक का चित्त योग्यतानुसार भाव प्रकट करता है। रस इसी भाव का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुगत है—भावानुयायी रस चित्त को आनन्द प्रदान करता है । परन्तु इष्ट को ही सब कुछ अर्पित हो जाता है। उस समय इस स्तर को या क्रम को परिपक्व अवस्था कहा जाता है। इष्ट तदात्मक हो जाता है। इस समय अखण्ड जप या ध्यान करने पर साधक के चित्त में केवल इष्ट से साक्षात्कार या इष्ट दर्शन होता है। इस अवस्था में साधक केवल कृष्णानुशीलन में रहता है। इस समय अपनी कोई सत्ता नहीं रहती। केवल इष्ट की सत्ता स्फुरित होती है एवं इष्टप्रीति के लिए सभी इन्द्रियाँ कर्मरत रहती हैं। मन, बुद्धि, अहंकार आदि, ज्ञान, कर्म के संस्कारों को छोड़कर सर्वतोभाव से इष्टानुसंधान में लीन हो जाता है। जबतक शरीर रहता है तबतक स्मरण-मनन रहता है, इस प्रकार के भजन दुर्लभ हैं। यही रागानुगा भक्ति का अन्तिम स्तर है। इसी की तीव्रता को प्रेम कहा गया है। बाहर स्वप्नवत और भीतर अखण्ड दिव्य ज्योति प्रस्फुटित होती है। भक्तिरसामृत सिद्ध, इसमें भाव को साधक इष्ट रूप में स्थित होकर, चिन्मय रस विग्रह या सच्चिदानन्द स्वरूप हो जाता है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

११

दिगम्बर बाबा

लोकनाथ शिव मंदिर के समीप गिर्णारीबन्ता है। ताल-तमाल और नारियल वृक्षों के नीचे से जनहीन पगडण्डी द्वारा आगे बढ़ने पर बालू के टीले मिलते हैं।

पुरी में अजस्र मठ, मन्दिर, आश्रम और साधन हैं। गिर्णारीबन्ता स्थित दिगम्बर बाबा का आश्रम अनाडम्बर और स्वल्प ख्यात है।

दिगम्बर बाबा शरीर से पंजाबी थे। कहा जाता है कि आप हैं इतिहास प्रसिद्ध महावेदान्ती तोतापुरी महाराज। आपने दक्षिणेश्वर के परमपुरुष श्री रामकृष्ण को वेदान्त सम्बन्धी अनेक गुह्य रहस्य दान किया था। श्री रामकृष्ण से दिगम्बर बाबा (तोतापुरी) की मुलाकात सन् १८६३ ई० में हुई थी। उन दिनों दिगम्बर बाबा की उम्र साठ वर्ष के लगभग थी।

वर्षों दक्षिण भारत परिव्राजन करने के बाद पुरी के एक नये स्थान पर समुद्र तट के किनारे आकर रहने लगे। सन् १९२० ई० में फ्लागस्टाफर के समीप, कासिम बाजार के भवन के सामने बालू पर वे रहते थे।

भीषण गर्मी के मौसम में, दोपहर के वक्त जब बालू पर पैर रखना भी असम्भव था, उस समय बाबा महाराज निर्विकार रूप से अपना विशाल शरीर उत्तप्त बालू पर रखे, निश्चिन्त भाव से सोये रहते थे। यहाँ तक कि जब प्रचण्ड आँधी आती थी तब भी अन्यत्र आश्रय ग्रहण के लिए नहीं जाते थे। आत्मज्ञानी शिवकल्प महापुरुष अपनी महिमा में महिमान्वित रहते थे।

सागर तट के प्रवेश द्वार के समीप ही उनका आसन था। पुण्यार्थी, तीर्थ दर्शन और सैलानी के रूप में जो लोग आते थे, वे उसी मार्ग से

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गुजरते थे। विराट शरीर, जटाजूट संवलित दिगम्बर संन्यासी को प्रणाम कर तृप्ति प्राप्त करते थे।

कहा जाता है कि एक बार पुरी के पुलिस सुपरिण्डेण्टेण्ट ने जिलाधीश के निकट दिगम्बर बाबा के बारे में इस आशय की रिपोर्ट भेजी थी—'दिन के वक्त यह संन्यासी पूर्ण रूप से नंग-धड़ंग रहता है। यह दृश्य अभद्र और गन्दा है जो कि गैरकानूनी है। कारण, समुद्र तट पर अनेक विदेशी पर्यटकों के अलावा साहब-मेम भी आते हैं, फोटो खींचते हैं, घूमते हैं। फलतः उस साधु को वहाँ से हटा देना चाहिए।'

जिलाधीश इसके पहले ही दिगम्बर बाबा के बारे में अपने मित्रों से श्रद्धापूर्ण कथाएँ सुन चुके थे। यहाँ तक कि उनकी पत्नी दिगम्बर बाबा का दर्शन कर आयी थीं। जिलाधीश महोदय को इसकी जानकारी थी। फिर भी प्राप्त रिपोर्ट की जानकारी के लिए वे वहाँ गये तो देखा—गौर-कान्ति, विराटकाय महात्मा, सर्वत्यागी महादेव की तरह बैठे हैं। उनकी नग्नता उनके शरीर की विशालता के कारण ढकी हुई है। उनकी उज्ज्वल आँखों की ओर दृष्टि जाते ही श्रद्धा से मस्तक झुक जाता है। आसपास अनेक भक्त इस महापुरुष के प्रति श्रद्धा-भक्ति-ज्ञापन कर रहे हैं। यह दृश्य देखकर जिलाधीश शक्तिधर ने महात्माजी को प्रणाम किया।

स्नेहपूर्ण स्वर में बाबा ने कहा—"लड़का तो बड़े अच्छे ढंग से पास हो गया।"

जिलाधीश ने हाथ जोड़ते हुए कहा—"हाँ, बाबाजी! आपकी कृपा से अच्छी तरह पास हो गया। लड़का यहाँ आकर कुछ दिन रहने के बाद विलायत चला जायगा।"

दिगम्बर बाबा नीरव रह गये। जिलाधीश उनके सान्निध्य में कुछ देर रहने के बाद अपने बँगले में वापस चले गये। लड़का जब पुरी आया तब जिलाधीश अपनी पत्नी और बच्चे को लेकर बाबाजी के पास आये और आशीर्वाद की माँग की। दिगम्बर बाबा कुछ देर तक लड़के की

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ओर देखते रहे। इसके बाद बोले—"चार रोज बाद पुनः लड़के को लेकर यहाँ आइयेगा।"

इस घटना के तीसरे दिन लड़का सख्त बीमार हुआ और डाक्टरों के अथक परिश्रम करने पर भी बच नहीं सका।

एक ब्राह्मण भक्त दिगम्बर बाबा का स्नेह-भाजन था। एक दिन एक गाड़ी डाब भेंट स्वरूप लेकर बाबा के पास आया। दिगम्बर बाबा ने उसे बुलाकर कहा—"सभी डाब तुम लोग अपनी इच्छानुसार ग्रहण करो। इसके बाद जो बच जाय, उसे अन्य दर्शनार्थियों में बाँट दो।"

यहाँ तक कि दिगम्बर बाबा रुपये-पैसे छूते नहीं थे, इसलिए चढ़ावे में जितनी रकम आती थी, उससे उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। उन्होंने स्पष्ट रूप से कह रखा था कि रुपये-पैसे के प्रति उनकी किसी प्रकार की स्पृहा नहीं है। फलतः इस सम्बन्ध में न तो कोई जवाब देते थे और न पूछते थे।

साक्षी गोपाल के जंगल में वे रहते थे। लेकिन वहाँ अधिक दिनों तक नहीं रह सके। निर्जनता में व्याघात होने के कारण अचानक इस स्थान से चले गये।

पुनः १९२१ ई० में पुरी वापस आये। भक्तों में आनन्द की लहर फैल गयी। उसी समय अन्तरंग भक्तों ने निश्चय किया कि बाबा के लिए एक निर्दिष्ट स्थान पर आश्रम बनाया जाय। इससे बाबा के निकट सत्संग की सुविधा होगी। उनका सान्निध्य पाकर सभी धन्य होने का सुयोग प्राप्त करेंगे।

शहर के जन विरल स्थान में एक आश्रम बनवाने का आदेश दिगम्बर बाबा ने दिया, इसीलिए जन बस्ती से दूर गिर्णारीबन्ता के बालूवाले रेत के ऊपर एक आश्रम बनवाया गया। उनका यही स्थायी आश्रम के रूप में प्रसिद्ध हुआ था। दो-चार बार गंगा और नर्मदा में स्नान करने के लिए गये थे। अधिकतर वे आश्रम में ही रहते थे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गंगासागर (संगम) स्नान के लिए चले तो रिसड़ा के पास आसन लगाया। महाकाय, दिव्यकान्ति, शिवकल्प महापुरुष को देखकर स्थानीय जमींदार लालजी प्रभावित हुए और उन्हें प्रणाम निवेदन किया। अपने घर चलने के लिए कातर प्रार्थना की, पर बाबाजी राजी नहीं हुए।

दिगम्बर बाबा ने कहा—"वृक्ष के नीचे बड़े आराम से हूँ। घर जाने पर मुझे आराम नहीं मिलेगा। विषयी लोग घर पर रुपये-पैसे की बातें करेंगे, फलतः मुझे परेशानी होगी।"

आगे उन्होंने कहा—"साधु-संतों की बातें काफी लोग सुन चुके हैं, पर इनमें कितने लोग उन बातों को स्मरण करते हैं या अपने जीवन के उपयोग में लगाते हैं ? उपनिषदों और वेदान्तों में अनेक महत्त्वपूर्ण बातें ऋषियों ने कही हैं, उन बातों को कितने लोगों ने ग्रहण किया है ?"

रिसड़ा में कुछ दिनों तक दिगम्बर बाबा थे। उन्हीं दिनों लालजी को साँप ने काटा था। भक्त की प्राणरक्षा के लिए उन्होंने अनेक प्रकार के प्रयत्न किये। अन्त में लालजी की विष-क्रिया दूर कर उसकी प्राण-रक्षा की। इस घटना के कारण दिगम्बर बाबा की योग-विभूति की बातें इस क्षेत्र में फैल गयीं। जनशून्य स्थान जनबहुल हो उठा। निर्जनता में खलल पड़ने के कारण वे उस स्थान को छोड़कर अन्यत्र चले गये।

भक्त लालजी की प्रेरणा से रिसड़ा में बाबा के लिए एक छोटा आश्रम बनाया गया। दिगम्बर बाबा विरक्त वेदान्ती साधु होने पर भी लालजी के परिवार के आग्रह या श्रद्धा के आकर्षण के कारण अक्सर पुरी से यहाँ आया करते थे।

सन् १९२६ ई० से आप गिर्णारीबन्ता के आश्रम में स्थायी रूप से रहने लगे। किसी विशेष कार्यवश वे अन्यत्र जाते थे वर्ना वहीं रहते थे। २-३ निष्ठावान सेवकों को लेकर बालू के टीले पर दिन गुजारते थे। जीवन का अधिकांश भाग आप जंगलों में व्यतीत कर चुके हैं।

इस ऊँचे टीले पर केवल आग्रही भक्त, तीर्थाचारी और उच्चकोटि के साधु-सन्तों का दल अद्वैत एवं आत्मज्ञान उपदेश ग्रहण करने के लिए

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आता था। इस वेदान्तिक, शिवकल्प-महापुरुष के निकट सम्यक् ज्ञान और परम मुमुक्षुत्व प्राप्त कर वे अपने को धन्य समझते थे। इसके अलावा नाना प्रकार के विक्षेप, मल को दूर कर, स्थिर सिद्धान्त तक पहुँचकर विमल आनन्द प्राप्त करते थे। अपनी चैतन्यसत्ता जाग्रत रखते हुए अमृत के आस्वादन में विभोर या तन्मयता प्राप्त करने के बाद लोग जीवन धारण करते थे।

दिगम्बर बाबा कहा करते थे—"इस समय सभी स्थानों और परिवेशों में योग-साधना या तन्त्र-साधना करना सम्भव नहीं है। समष्टि या महासमष्टि में विस्तार प्राप्त करना कठिन है, क्योंकि स्वास्थ्य-हानि और गृहस्थी के दुःख-दरिद्रता के कारण सभी लोग हाहाकार कर रहे हैं, इसीलिए उपयुक्त देह-मन और विवेक सम्पन्न निष्ठावान लोगों की संख्या नहीं के बराबर है। फलतः वेदान्त की साधना में आत्मनियोग करने के मार्ग में, धीरे-धीरे अभ्यास के द्वारा कल्याण और मंगल के पथ पर बढ़ना होगा। वेदान्त-साधना के मार्ग पर धीरे-धीरे अग्रसर होना सम्भव है।"

उत्तरपाड़ा (बंगाल) के भूतपूर्व एम० एल० ए० श्री धीरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय दिगम्बर बाबा के पास अक्सर जाते थे। बाबा के बारे में कुछ तथ्य मुखोपाध्याय जी के पास थे, ऐसा मैंने सुना था।

उनके साथ मेरी पहली मुलाकात सन् १९५० के लगभग हुई थी, गोकि उनका नाम सन् १९३८ ई० में, जिन दिनों पुरी स्थित विशुद्धानन्द आश्रम में था, तभी सुन चुका था। पुरीधाम स्थित आश्रम के निर्माण और व्यवस्था आदि की जिम्मेदारी कलकत्ता हाईकोर्ट के वकील, बाबाजी (विशुद्धानन्द परमहंस) के परमभक्त श्रीयुक्त क्षेत्रगोपाल वन्द्योपाध्याय एम०ए०, बी०एल० महाशय ने ले ली थी। यह आश्रम आर्मस्ट्रंग रोड पर पुरी जिला स्कूल के समीप है। प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी का आश्रम हम लोगों के आश्रम से अधिक दूर नहीं है। यहाँ विजयकृष्ण

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गोस्वामी के शिष्य माखनलाल गांगुली से भी उनके बारे में सारा विवरण सुना था। वे पुरी में नागा बाबा के नाम से प्रसिद्ध थे।

जिन दिनों दिगम्बर बाबा काशी के गंगा तट स्थित नाव पर रहते थे, उन दिनों उनसे कई बार मिला था। विराटकाय, बलिष्ठ, नग्न, प्रसन्न मूर्त्ति, मुख-मण्डल में मूँछ-दाढ़ी, सिर पर जटाएँ, बाबाजी वेदान्तिक थे। वे अक्सर योगवासिष्ठ रामायण सुनते अथवा वेदान्त-ग्रन्थ सुनना पसन्द करते थे।

प्रश्न करने पर ही उत्तर देते थे वर्ना सर्वदा मौन रहते थे। मुझसे स्नेह करते थे। जब मैं जाता तब मेरा कुशल-मंगल पूछकर तृप्ति अनुभव करते थे।

एक दिन मैंने उनसे पूछा कि स्थायी सुख पाने के लिए क्या करना उचित है? कुछ देर तक चुप रहने के बाद दिगम्बर बाबा ने कहा—"सत्य वस्तु क्या है, पहले इसे जानना चाहिए। सत्य वस्तु जानने का मतलब है, उन्हें पाना। सभी मनुष्य सुख चाहते हैं, किन्तु असली मार्ग छोड़कर गलत राह पकड़ लेते हैं। विश्वप्रपंच का सब कुछ विनाशशील है। पार्थिव भोगवस्तु हर वक्त दुःख के कारण हैं, इसीलिए परिवर्त्तनशील और विनाशधर्मी वस्तु सर्वदा दुःख के कारण बनते हैं। इसीलिए स्थायी सुख पाने के लिए पहले सत्य वस्तु के स्वरूप को जानना आवश्यक है। आत्मज्ञान के बिना स्थायी सुख नहीं होता। सृष्टि का प्रकृति तत्त्व और तथ्य जो जान चुके हैं, वही आत्मानुभावी महापुरुष निरवच्छिन्न आनन्द प्राप्त करते हैं।"

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाहति मृत्युमेति
नान्य पन्था विद्यतेहयनाय॥

अर्थात् स्वप्रकाश और अज्ञानातीत इस सर्वव्यापी पुरुष को मैं जानता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हूँ। उन्हें जान लेने पर ही (लोग) मृत्यु अतिक्रम कर सकते हैं। क्योंकि परमार्थ पाने का और कोई उपाय नहीं है।

ततो यदुत्तरतरं तद्रूपमनामयम्।
ष एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे
दुःखमेवापिषन्ति॥

अर्थात् इस जगत के कारण से भी जो ऊर्ध्व में हैं, वे अरूप एवं निरामय हैं। जो इसे जानते हैं, वे अमर होते हैं, और जो लोग जानते नहीं हैं, वे ही दुःख से अभिभूत हो जाते हैं।

मैंने पूछा कि मनुष्य तो अहंबोधयुक्त अज्ञान है। वह किस पथ का अधिकारी है, इसे कैसे समझेगा ?

दिगम्बर बाबा ने कहा—"गुरुकरण इसीलिए आवश्यक है। ब्रह्मविद् गुरु, जो आत्मज्ञान के आलोक में अभ्रान्त रूप में तुम्हारे पूर्व तीन जन्मों के बारे में जानते हैं, वे ही इस बार साधना का ठीक मार्ग बतायेंगे।"

वे कहा करते थे कि आत्मज्ञान-साधना की दो दिशाएँ हैं। एक अन्तरंग, दूसरा बहिरंग। ब्रह्मविद् गुरु के सान्निध्य में रहते हुए महावाक्य श्रवण, निदिध्यासन अन्तरंग साधन हैं।

आत्मज्ञान की बहिरंग-साधना की दो दिशाएँ हैं—निष्काम कर्म में और निष्काम उपासना में। आत्मज्ञान साधन की पहली सीढ़ी है—देहात्मबोध लोप करने की चेष्टा। वे कहते थे—सद्ग्रंथ और शास्त्र-ग्रंथ पाठ, सत्संग और सद्गुरु के उपदेशों के अनुसार जीवन-धारण करना। इसी के द्वारा मुक्तिकामी साधारण गृहस्थ मोक्ष का द्वार उन्मुक्त कर सकते हैं।

गुरुकरण ब्रह्मविद् सद्गुरु की करुणा के सम्बन्ध में सनातनपन्थी साधकों के आदर्श को दिगम्बर बाबा मानते थे। उनका कहना था कि सद्गुरु जहाँ सशरीर उपस्थित नहीं हैं, वहाँ साधक के लिए देह की साधना में सिद्ध होना या ज्ञान के उच्चतम सोपान पर आरोहण करना संभव नहीं है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक दिन की बात है। एक महिला अपने पति के साथ बाबाजी का दर्शन करने आयी थी। दोनों ही उच्च शिक्षित थे। महिला शिक्षार्थिनी और उसके पति अध्ययन समाप्त करने के बाद नौकरी के लिए प्रयत्न कर रहे थे। उक्त सज्जन अत्यन्त वैराग्यसम्पन्न थे, इसलिए अधिक वेतन-वाली नौकरी नहीं करना चाहते थे। उनका कहना था कि जितनी हमारी आवश्यकता है, उतना ही वेतन ग्रहण करना चाहिए। अत्यधिक वेतन लेने से पापग्रस्त होना पड़ेगा। यही वजह है कि ३-४ सौ रुपये वाली नौकरी पाने पर उसे वे स्वीकार नहीं करते थे। लेकिन उनकी पत्नी घर-गृहस्थी चलाने के लिए अधिक वेतनवाली नौकरी करने पर जोर दे रही थी। इसी समस्या पर झगड़ा बढ़ जाने के कारण दोनों बाबाजी के निकट उपस्थित हुए थे।

दोनों अपनी-अपनी समस्या लेकर बाबाजी के निकट इसलिए आये थे कि वास्तव में हमें किस सिद्धान्त का पालन करना चाहिए। पति का विश्वास था कि बाबाजी चूँकि त्यागी पुरुष हैं, इसलिए उसके पक्ष को अवश्य स्वीकार करेंगे, पर कुछ देर की बातचीत के बाद इस विवाद की मीमांसा उन्होंने सुन्दर ढंग से कर दिया।

बाबाजी ने पति को सम्बोधन करते हुए कहा—"तुम स्वाभाविक रूप से वेतन पाने पर भी उसे ग्रहण करने में अनिच्छा प्रकट कर रहे हो, यह निर्णय तुम्हारा ठीक नहीं है। क्योंकि तुम काम करके अपने परिश्रम का मूल्य पा रहे हो, इसलिए यह निर्दोष है। मैं यह मानता हूँ कि तुम्हारी जरूरत महज ५०-६० रुपये है। तुम्हें जितना वेतन मिले, उसमें से अपनी आवश्यकता के अनुसार अर्थ ग्रहण करो और शेष रकम गरीब-दुखियों की सेवा में दान कर दो। इस प्रकार दोनों पक्षों का अवरोध और सम-न्वय सध जायगा। शुभानुष्ठान और झगड़ा भी समाप्त हो जायगा।"

इस निर्णय को सुनकर पति-पत्नी दोनों ही प्रसन्न हो गये।

यह महात्मा लगभग डेढ़ सौ वर्ष तक जीवित थे। सन् १९६१ ई० के अगस्त मास में महात्माजी का देहावसान हुआ था।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१२

लोकनाथ ब्रह्मचारी

सन् १९०६ में ढाका जुबली स्कूल से एंट्रेंस की परीक्षा में पास हुआ था। इसके २-३ वर्ष पूर्व जब मैं ढाका जुबली में पढ़ता रहा तब अक्सर बारदी ब्रह्मचारी का नाम सुनता था। बारदो नामक गाँव के कारण उनका वैसा नाम हुआ था जबकि उनका वास्तविक नाम था—'लोकनाथ'।

सन् १७३२ ई० के आसपास चौबीस परगना स्थित बारासत महकमा के अधीन कचुया ग्राम में ब्रह्मचारीजी का जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम राम कानाई घोषाल और माता का नाम कमला देवी था।

सर्वशास्त्रवेत्ता आचार्य और विशिष्ट साधक के रूप में प्रसिद्ध पण्डित भगवान् गांगुली पास ही रहते थे। पिता और पुत्र की प्राथमिक शिक्षा इसी सर्वजन श्रद्धेय आचार्य के द्वारा हुई थी।

लोकनाथ के उपवीत के समय आचार्य के रूप में भगवान् गांगुली ने ही संस्कार सम्पन्न कराया था। उपवीत होने के बाद इस दण्डी ब्रह्मचारी को साथ लेकर भगवान् गांगुली हमेशा के लिए गृहत्यागी हो गये थे।

उन दिनों कालीघाट जंगलों से भरा था। भगवान् गांगुली ने गुरु के रूप में लोकनाथ का संस्कार तथा दीक्षा-कार्य सम्पन्न किया था। पन्द्रह वर्ष अर्थात् जब शिष्य की वय पच्चीस वर्ष हुई तब तक शिष्य से ब्रह्मचर्य-व्रत कराते रहे।

इसके बाद दीर्घकाल तक हिमालय के क्षेत्र में साधन-भजन करने के बाद हितलाल मिश्र नामक एक महायोगी से मुलाकात हुई। वृद्ध भगवान गांगुली ने इस महासाधक के हाथ लोकनाथ को सौंपने के बाद अपना शरीर छोड़ दिया।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दीर्घकाल तक महायोगी हितलाल मिश्र के आश्रय में साधनोपदेश ग्रहण करके लोकनाथ ने अभूतपूर्व योग-सामर्थ्य का अर्जन किया था। हिमालय के तुषारावृत्त अंचलों में काफी दिनों तक भ्रमण करने के बाद गुरुदेव ने अपने अनुरागी शिष्य से विदा माँगी। विदा माँगने के पूर्व उन्होंने अपने शिष्य को समतल भूमि में जाकर कार्य करने का आदेश दिया।

अद्वैत-चूलोद्भव विजयकृष्ण गोस्वामी उन दिनों ढाका में ब्राह्म-समाज के ख्यातिप्राप्त आचार्य और अद्वितीय धर्मवक्ता के रूप में पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे। अध्यात्म-साधना में गभीर स्पृहा और लोकनाथ ब्रह्मचारी की विस्मयजनक योगशक्ति और कृपा वितरण का समाचार पाकर, प्रभुपाद ब्रह्मचारीजी का साक्षात्प्रार्थी होकर बारदी गाँव की ओर चल पड़े। इधर ब्रह्मचारीजी ने अपने भक्त कामिनी नाग को बुलाकर कहा—'विजय आ रहा है।'

धीरे-धीरे विजयकृष्ण गोस्वामी ने आश्रम भवन में प्रवेश किया। लोकनाथ ने हाथ आगे की ओर फैलाया तो विजयकृष्ण गोस्वामी उनके चरणों के नीचे झुक गये। पुत्रवत्सल पिता की भाँति ब्रह्मचारीजी ने गोस्वामीजी को गले से लगा लिया। अपूर्व तेज-राशि बहिर्गत होकर गोस्वामी महाशय के शरीर में प्रवेश कर गयी और एक अद्भुत तड़ित् प्रवाह बहिर्गत होकर गोस्वामी महाशय के सारे शरीर को कंपित कर गया। कुछ देर बाद गोस्वामी महाराज जब स्वस्थ हुए तब दोनों व्यक्तियों में देर तक बातें होती रहीं।

आश्रम से बाहर आकर लौटते वक्त प्रभुपाद ने भक्त कामिनी नाग महाशय से कहा—"इस स्थान का महत्त्व जो कुछ सुनता आ रहा था, उससे अधिक देखा। मुझ पर जो कृपा हुई, उससे मेरे धार्मिक जीवन का मार्ग प्रशस्त हुआ। बारदी मेरे धार्मिक जीवन का जन्मस्थान है। तुम लोग मेरे गुरुभाई हो।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बारदी से वापस आने के बाद श्री विजयकृष्ण गोस्वामी लोकनाथ ब्रह्मचारी के महात्म्य और योग-शक्ति के प्रभाव के बारे में बराबर वर्णन करते रहे। इसके कारण शिक्षित और अपामर जन-साधारण में ब्रह्मचारीजी के बारे में उत्सुकता उत्पन्न हुई। आग्रही और भक्तों का दल उनके चरणों के समीप समवेत होने लगा।

ढाका शक्ति औषधालय के संस्थापक अध्यापक मथुरा मोहन चक्रवर्ती उनके शिष्य थे। चक्रवर्ती महाशय मेरे शिक्षक थे। इनके निकट परलोकवासी ब्रह्मचारी (योग विभूति) की अनेक बातें सुन चुका था। ब्रह्मचारी महाशय का आश्रम ढाका जिला के बारदी गाँव में, नारायणगंज के समीप था।

मेरे एक मित्र के पिता पुलिन बिहारी मुखोपाध्याय उन दिनों ढाका में रहते थे। इनके साथ मथुरा मोहन चटर्जी महाशय की घनिष्ठता थी। मथुरा मोहन चटर्जी स्कूल इंस्पेक्टर के पद पर कार्य करते थे। मथुरा मोहन बाबू प्रसिद्ध राष्ट्रनेत्री सरोजनी नायडू के पिता अघोरनाथ चटर्जी के ज्येष्ठ भ्राता थे।

डा० अघोरनाथ चटर्जी हैदराबाद कालेज के अध्यक्ष थे। एक बार हैदराबाद के निजाम ने अपने महल में एक सार्वजनिक धर्म-सभा का आयोजन किया था। डा० अघोरनाथ चटर्जी इस महती सभा के विशिष्ट सदस्य थे। सभा के अन्त में डा० चटर्जी ने एक मनोवैज्ञानिक भाषण दिया था। आध्यात्मिक चेतना-सम्पन्न प्रत्येक भारतवासी के निकट उक्त भाषण एक अमूल्य निर्देशन के रूप में सर्वदा स्मरणीय रहेगा।

पुलिन बाबू का पुत्र वीरेन्द्र मोहन मेरे स्कूल में नीचे के दर्जे में पढ़ता था, फिर भी मेरे साथ उसकी घनिष्ठता थी। उसकी जबानी भी बारदी ब्रह्मचारी की अनेक प्रशंसा बराबर सुना करता था। वीरेन्द्र ने मुझे बताया था कि एक बार वह मलेरिया से पीड़ित हुआ था। काफी इलाज करने के बाद लोग निराश हो गये थे। अन्त में उसके पिता उक्त ब्रह्म-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चारी के शरणापन्न हुए और डरते-डरते ब्रह्मचारी से निवेदन किया—"मेरा पुत्र मलेरिया बुखार से पीड़ित होकर काफी कष्ट पा रहा है। उसका बुखार ठीक नहीं हो रहा है। कृपया वीरेन्द्र के प्रति दया करें।"

ब्रह्मचारीजी तेज स्वर में बोले—"बुखार उतर नहीं रहा है तो मैं क्या करूँ? डाक्टर-कविराज को दिखाइये।"

पुलिन बाबू ने कहा—"काफी इलाज करवा चुका हूँ, पर कोई लाभ नहीं हुआ।"

इतना सुनने के बाद ब्रह्मचारीजी ने एक बड़े डंडे से वीरेन्द्र को मारा। वीरेन्द्र नाराज होने के बदले एकाग्रचित्त से उनके चरणों के निकट पड़ा रहा। उस स्थान से न हटकर उसने दृढ़तापूर्वक कहा—"यहाँ से मैं नहीं जाऊँगा। जो कुछ आपको करना है, वही होगा।"

बालक की कातरोक्ति सुनकर उन्हें दया आ गयी। वीरेन्द्र से उन्होंने कहा—"जाओ, सामने के तालाब में स्नान कर आओ।" उस समय वीरेन्द्र को बुखार था। फिर भी ब्रह्मचारीजी के आदेशानुसार स्नान कर आया। इसके बाद उन्होंने वीरेन्द्र को दही-भात खाने का आदेश दिया। आश्रम में दही-भात खाने के बाद उसे घर जाने का आदेश दिया गया। घर पर आते ही वीरेन्द्र का बुखार गायब हो गया। इस प्रकार का कुपथ्य खाने पर भी पुराना बुखार दूर हो गया।

अपने वयोज्येष्ठ ढाका जगन्नाथ कालेज के छात्रों की जबानी ब्रह्मचारीजी के बारे में काफी बातें सुन चुका था।

एक बार कालेज के कुछ छात्र ब्रह्मचारीजी से मिलने गये थे। छात्रों ने कहा था कि हम आपके पास ब्रह्म के बारे में ज्ञान प्राप्त करने आये हैं। कृपया हमें कुछ तत्त्वोपदेश दें।

ब्रह्मचारीजी कहने लगे—"अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्, तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरुवै नमः। अर्थात् अखण्ड मण्डलाकार जिसके

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

द्वारा सर्वचराचर व्याप्त है, ऐसे ब्रह्म को जो दिखा देते हैं, उसी गुरु को नमस्कार करता हूँ। तुम लोगों का ब्रह्म क्या है ? रुपये ! गौर नहीं किया है ? रुपया अखण्ड मण्डलाकार है ? सर्व घट में इस रुपये का प्रभाव विद्यमान है। इसका प्रभाव सर्वत्र है। इसी रुपया-ब्रह्म को पाने के लिए तुम लोगों ने दीक्षा ली है। कालेज के अध्यापक हैं गुरु, जो इस ब्रह्म-दर्शन के मामले में सहायता देंगे। फिलहाल अपने उन अध्यापकों का अनुसरण करते रहो। इसके बाद यानी रुपये-पैसे पाने के बाद भी ब्रह्म को देखने की इच्छा हो तब मेरे पास आना। उस समय मैं उपदेश दूँगा और ब्रह्म से साक्षात् करने का उपाय बता दूँगा।"

उस दिन इसी प्रकार के रहस्यालाप के द्वारा ब्रह्मचारीजी ने युवकों को सही मार्गदर्शन कराया था।

इस प्रकार की अनेक अलौकिक कथाएँ उनके बारे में सुन चुका था, गोकि उनका दर्शन करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ था। परवर्त्ती काल में ब्रह्मचारीजी के प्रधान शिष्य ब्रह्मानन्द भारती हुए थे जिन्होंने 'सिद्ध जीवनी' नामक उनकी जीवनी लिखी। इनके साथ काशी में मेरी मुलाकात हुई थी। आप प्रसिद्ध योगी के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके थे। 'सांख्य योग' के सम्बन्ध में इनके द्वारा लिखित पुस्तकें काफी प्रसिद्ध हुई थीं। इनके परिचितों में एक महात्मा और थे। उनका नाम था— प्रेमानन्द भारती। प्रेमानन्द भारती के एक सुप्रसिद्ध ग्रंथ का नाम है— 'श्रीकृष्ण'। बाद में आप अमेरिका चले गये जहाँ से 'लाइट आफ इण्डिया' नामक पत्रिका प्रकाशित करते रहे।

लोकनाथ ब्रह्मचारी १६० वर्ष तक जीवित थे। आपमें एक विशेषता यह थी कि आपकी पलकें गिरती नहीं थीं। काफी दूर की वस्तु पेड़, पौधे, पत्तियाँ, छोटी चींटियाँ तक देख लेते थे। आप में आकाशगमन की शक्ति थी। पूर्वी बंगाल में आपकी अलौकिक शक्तियों के बारे में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक बार दरभंगा में रहते समय विजयकृष्ण गोस्वामी महाशय कठिन उदर-रोग से पीड़ित हो गये। रोगी की प्राण-रक्षा के सम्बन्ध में डाक्टर हताश हो गये। अंतिम काल आ गया जानकर आत्मीय स्वजन भगवान् का नाम लेने लगे। ठीक इसी समय गोस्वामीजी के शिष्य श्यामाचरण बख्शी महाशय बारदी गाँव पहुँच गये। उन्होंने ब्रह्मचारीजी को सारी कथा सुनाई। ब्रह्मचारीजी विजयकृष्ण को प्यार करते थे। प्यार से विजयकृष्ण को वे 'कृष्ण' कहकर सम्बोधन करते थे। भक्त श्यामाचरण को ढाका वापस जाने का आदेश दिया गया। कहा गया कि वे स्वयं गोसाईंजी से मिलेंगे और जिससे वे जल्द स्वस्थ हो जाँय, इसके लिए प्रयत्न करेंगे। उन्होंने यह भी कहा—'परसों तुम लोगों को समाचार प्राप्त हो जायगा।' ब्रह्मचारीजी ने शून्य मार्ग से जाकर उन्हें दर्शन दिया था। उनके आविर्भाव के कारण गोस्वामीजी स्वस्थ हो गये थे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१३

हरिहर बाबा

महाभारत में व्यासदेव ने अनुशासन पर्व में कहा है—मानव देह के कुछ अंश जैसे पवित्रतर, श्रेष्ठतर हैं, उसी प्रकार इस पृथिवी के अनेक स्थान भी अधिकतर पवित्र, अधिकतर मनोरम हैं। इनमें कोई नैसर्गिक सौन्दर्य के लिए, कोई प्राणदा पवित्र जलधारा के लिए, कोई सिद्ध महापुरुष के चरण-स्पर्श से पुण्यमय, शांतिमय हुए हैं। ये सभी स्थान हैं—तीर्थ-मानव-कल्याण के परम उत्स।

भारतवर्ष के कई राज्यों के विशेष-विशेष जिलों में महापुरुषों का आविर्भाव हुआ है। राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर,* ऋषि अरविन्द, रामकृष्ण परमहंस, देवी शारदामणि प्रभृति प्रमुख महापुरुषों ने जिस प्रकार पश्चिमी बंगाल के हुगली जिले में जन्म ग्रहण किया है, उसी प्रकार असम का श्रीहट्ट जिला भी समधिक ऐश्वर्यशाली है, बिहार का छपरा जिला भी तद्रूप सौभाग्य का अधिकारी है। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने वाले डा० राजेन्द्र प्रसाद (प्रथम राष्ट्रपति) और जयप्रकाश नारायण का नाम सर्वदा स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा। रामकृष्ण परमहंस के शिष्य लाटू महाराज और हरिहर बाबा ने इसी जिले में जन्म ग्रहण किया था। माधव पागला पूर्व जीवन में इसी जिले के अधिवासी थे।

शिवराम किंकर (योगत्रयानन्दजी) कहा करते थे कि तैलंग स्वामी के बाद इस शताब्दी में उनके स्थान की पूर्ति हरिहर बाबा ने की है।

बिहार के छपरा जिला के अन्तर्गत जाफरपुर नामक गाँव में सन्

* सन् १८२० में जब विद्यासागरजी का जन्म हुआ था तब वीरसिंह गाँव हुगली जिले में था।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१८२९ ई० के लगभग हरिहर बाबा ने जन्म लिया था। उनका नाम था—सेनापति। पिता सरयूपारी तिवारी थे। सम्पन्न गृहस्थ घर में उनका जन्म हुआ था।

बहुत कम उम्र में ही उनके माता-पिता का देहान्त हो गया था। फलस्वरूप सम्पन्न गृहस्थी में दैवी प्रकोप के कारण आश्रयहीन अभिभावक शून्य होकर, वे अपने रिश्तेदारों के यहाँ प्रतिपालित हुए थे।

अचानक एक दिन उनके छोटे भाई की अकाल मृत्यु हो गयी। उसकी मौत के शोक से उनका हृदय जल उठा वैराग्य भाव में।

बचपन से ही आपमें सात्त्विक भावना थी। मगनी राम नामक एक तपस्वी जाफरपुर गाँव में रहते थे। सेनापति (हरिहर बाबा) इनके प्रति आकृष्ट हुए थे। प्रायः इनके चरणों के निकट आकर बैठते रहे। इस साधक के पुण्यमय स्पर्श और शब्दों ने तरुण सेनापति (हरिहर बाबा) के जीवन में दूरगामी प्रभाव विस्तार किया था। आप संन्यास-जीवन ग्रहण तथा ईश्वर-दर्शन के लिए व्याकुल हो उठे।

इसके लिए वे एक ऐसे गुरु की तलाश में लग गये जो समर्थ साधक हो और गुरुरूप में उनकी जीवन-नौका को उस पार लगा दे।

अचानक एक दिन एक परिव्राजक संन्यासी से मुलाकात हुई। सेनापति ने व्याकुल भाव से इधर-उधर की बातों के बाद कहा—"कृपा करके अगर आप अनुमति दें तो आज से ही आपका अनुसरण करूँ ?"

संन्यासी ने काफी देर तक सोचने-विचारने के बाद कहा—"तुम्हारी तरुणावस्था है। अचानक भावातिरेक में होकर गृहत्याग करना मेरी दृष्टि में उचित नहीं है। मैंने किसी को कभी अपना शिष्य नहीं बनाया है। इस समय मैं सोनपुर के मेले में जा रहा हूँ। अगर सम्भव हो तो इस मेले में आ जाना। शायद भाग्यवश किसी की कृपा प्राप्त कर लो।"

काफी मिन्नत करने पर उन्होंने अपने साथ ले लिया। केवल अट्ठारह

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वर्ष की उम्र में वे बिना कुछ लिये घर से चल पड़े। सोनपुर के मेले में एक महात्मा के निकट राममंत्र से दीक्षित हुए। महात्माजी से योग-तंत्र तथा अन्य गूढ़ तत्त्व के रहस्यों की जानकारी प्राप्त की।

हरिहर क्षेत्र का मेला समाप्त होने के बाद संन्यासी ने उनसे कहा—"अब अयोध्या जाकर सरयू नदी के किनारे एकनिष्ठ होकर साधन-भजन आरंभ करो। भाग्य-क्रम से मानव-शरीर पाये हो, यह शरीर ही हरिहर पीठस्थान* है। हर प्रकार से इस पीठ को जागृत करते हुए परमात्मा की कृपा प्राप्त करो।"

सेनापति उक्त संन्यासी के उपदेश को कभी नहीं भुला सके। निष्ठा, वैराग्य और आत्मत्याग के माध्यम से अपने को 'हरिहर भइया' के नाम से परिचय देते रहे।

क्रमशः सरयू के तीर पर कठोर तपस्या में निमग्न हो गये। शीत, गर्मी की उपेक्षा करते हुए, निद्राहीन, वृक्ष के नीचे, कृच्छ वस्त्र धारण किये रहते थे। दिन में एक मुट्ठी सतुआ खाकर जीवन यापन करते थे।

एक बार जाफरपुर से कुछ पुण्यार्थी तीर्थ करने अयोध्या आये। सरयू में स्नान और तर्पण करते समय उन लोगों ने सेनापति तिवारी को देखा। सभी उन्हें जाफरपुर वापस चलने के लिए शास्त्र-नीतिकथा आदि सुनाने लगे।

जैसे, साधु बनने की यह उम्र नहीं है। इस प्रकार अनाहार रहकर जीवन को व्यर्थ बनाना, आत्महत्या के समान है। क्या घर पर रहते हुए धर्म-कर्म नहीं किया जा सकता? अधिकतर लोग घर पर रहते हुए धर्म-कर्म करते हैं।

हरिहर भइया ने कहा—"आप लोग शायद ठीक कह रहे हैं, क्योंकि आप लोग मेरे शुभेच्छु हैं, पर अब मेरे लिए घर वापस जाना असम्भव है।

---

* हरिहर क्षेत्र में हरि और हर का मंदिर है कृष्ण नगर के निकट पश्चिम बंगाल में महाराजा कृष्णचन्द्र ने हरि और हर का मंदिर बनवाया है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वह इसलिए कि अट्ठारह वर्ष की उम्र में ही संसार की असारता को मैंने अनुभव कर लिया है। माता-पिता, भाई और मित्रों की मृत्यु के भीतर मैंने यह देखा कि मानव कितना असहाय है, उनका जीवन कितना क्षण-भंगुर है।"

द्वितीय बार सरयू के तीरस्थ जटाधारी वैष्णव साधकों के निकट दीक्षा-शिक्षा प्राप्त करने के बाद उनके जीवन में अनेक परिवर्तन हुए। हरिहर भइया कभी किसी के आगे गुरु का नाम नहीं बताते थे। केवल यही कहा करते थे—"मेरे गुरुदेव महाशक्तिधर हैं। योग तंत्र और वैष्णवीय-साधना मार्ग के महासाधक हैं।"

सरयू तट पर साधना की कई उच्चतर पद्धतियों को सिद्ध करने पर हरिहर भइया को कहा गया था—"अब तुम्हारा प्राथमिक कार्य समाप्त हो गया है।" इसके बाद वे गुफा के भीतर बैठे साधन-भजन करते रहे। कुछ दिनों बाद सरयू-तीर त्यागकर भ्रमण करने चले गये। भ्रमण के बाद स्थायी रूप से काशीवास करने का निर्देश गुरुदेव ने दिया था। यही वजह है कि काशी में उन्हें चरम सफलता प्राप्त हुई थी।

हरिहर बाबा काशी में जिन दिनों आये, उन दिनों उनका शीर्ण शरीर, नग्न, उन्माद की तरह था। अपनी इच्छानुसार वे गली, सड़क और घाटों पर घूमते रहते थे। शैतान लड़के उन्हें तरह-तरह से परेशान करते थे।

एक दिन काशी के राजघाट मुहल्ले में एक सड़क की मोड़ पर कुछ लड़के आवाजाकशी कर रहे थे। इनमें से दो-एक ढेला भी मार रहे थे। इस दृश्य के कारण उनके चारों ओर भीड़ जुट गयी। इतना होने पर भी उन्हें नीरव देखकर लोग स्तंभित रह गये। वे किसी ओर ध्यान नहीं दे रहे थे। अचानक एक ढेला उनके शरीर पर गिरा तो वे जोर से बोल उठे—"जय राम, जय राम, जय सीताराम।"

उस समय पड़ोस के एक घर में धर्म-सभा हो रही थी। काशी के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रसिद्ध आचार्य साधक-प्रवर शिवराम किंकर यानी शशिभूषण सान्याल या योगत्रयानन्दजी वहाँ प्रवचन दे रहे थे। अचानक उनकी दृष्टि बाहर की ओर गयी और उन्होंने इस दृश्य को देखकर कहा—'यह क्या ? ये साधारण मानव नहीं है। सिद्ध-काम, योग-विभूतिसंपन्न महापुरुष के सभी लक्षण इनके शरीर से प्रस्फुटित हो रहे हैं। यहाँ तक कि समस्त शरीर अपरूप आलोक छटा से प्रदीप्त है। चपलमति बालक भस्माच्छादित आग से खेलने की मूर्खता कर रहे हैं।"

इतना कहने के पश्चात् वे धर्म-कथा बीच में रोककर बाहर निकल आये और बालकों को शरारत करने से रोककर उक्त उन्माद को प्रणाम करते हुए बोले—"शीघ्र ही काशी में इनका प्रकाश फैलेगा।"

इस प्रकार उस दिन हरिहर बाबा काशी के साधक समाज में स्वीकृत हुए।

योगात्रयानन्दजी एक महाशक्तिधर साधक थे। रामकृष्ण परमहंस इन्हें शशि कहकर पुकारते थे। मेरे जीवन में आमूल परिवर्तन करने में पाँच साधकों के अनुग्रह को मैं सर्वदा कृतज्ञ चित्त से स्मरण करता हूँ। पाँचों साधकों की कृपा-दृष्टि मेरे ऊपर थी। योगात्रयानन्दजी इनमें अन्यतम थे। योगत्रयानन्दजी की जीवनी विस्तार के साथ मैं साधु प्रसंग पुस्तक के द्वितीय भाग में लिख चुका हूँ। यहाँ मैं उनकी जीवनी के कुछ अंशों का उल्लेख कर रहा हूँ।

नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द), काली (स्वामी अभेदानन्द) इस साधक के चरणों के पास बैठकर शास्त्र अध्ययन करते रहे।

लगभग ५९ वर्ष पूर्व जिन दिनों मैं एंट्रेंस परीक्षा देने की तैयारी कर रहा था, उन्हीं दिनों एक अद्भुत पुस्तक मैंने देखी। मेरे गाँव के एक शिक्षित व्यक्ति की अकाल मृत्यु हो जाने के कारण उनके द्वारा खरीदी गयी-पुस्तकों को, उनके परिवार के लोगों ने बेचने का निश्चय किया। उक्त सज्जन की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, इसलिए उनके परिवार

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

के लोगों का यह कार्य भले ही प्रशंसनीय न हो, पर क्षम्य अवश्य था। उक्त सज्जन के घर संस्कृत और बंगला की पुस्तकें थीं। सभी पुस्तकें धार्मिक और आध्यात्मिक विषयों की थीं। इनमें अनेक प्रसिद्ध साधु महापुरुषों की जीवनियाँ भी थीं। कहने की आवश्यकता नहीं कि उन पुस्तकों में से काफी पुस्तकें मैंने खरीदी थीं।

मेरे द्वारा खरीदी गयी पुस्तकों में 'आर्य शास्त्र प्रदीप' नामक पुस्तक के प्रथम दो खण्ड उनमें थे। अन्य पुस्तकों को पढ़ने के बाद जब मैं इस पुस्तक का अध्ययन करने लगा तब मेरे मन में अपूर्व भाव उत्पन्न हुए। आज इतने दिनों बाद उसका सम्यक् वर्णन करना सम्भव नहीं है। यद्यपि पुस्तक के दो खण्ड मेरे पास थे, पर वह अपूर्ण थी। मुझे ऐसा लगता था जैसे तृतीय खण्ड में भी पुस्तक समाप्त नहीं हुई होगी।

आगे उक्त पुस्तक लिखी गयी थी या नहीं, इसे जानने का कोई उपाय नहीं था। पुस्तक की भूमिका जो काफी विस्तृत थी, उसमें असाधारण पाण्डित्य और बहुदर्शिता का निर्देश था। यह देखकर उन दिनों मेरा मन स्तब्ध हो गया था और नीरव रूप में उस महाज्ञानी ऋषिकल्प लेखक के चरणों में बार-बार प्रणाम करता था। प्राच्य और पाश्चात्य, प्राचीन एवं नवीन दर्शन, विज्ञान आदि सर्वशास्त्रों का पूर्ण ज्ञान, परिचय इस ग्रंथ से प्राप्त होने के कारण मेरी इच्छा हुई कि इस महापुरुष का दर्शन करूँगा और इनके चरणों के निकट बैठकर अध्ययन करूँगा। ग्रंथ के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया था कि लेखक कर्म, भक्ति, ज्ञान, योग आदि सभी विषयों में समान अधिकारी है। वे ऋषिकल्प एवं वर्तमान अंग्रेजी शिक्षित, विज्ञानमद गर्वित शिक्षित समाज के गुरुस्वरूप हैं।

खेद का विषय है कि काफी खोज करने पर भी लेखक के बारे में कोई जानकारी प्राप्त नहीं कर सका। ग्रंथ में सब कुछ था, केवल ग्रंथकार का नाम नहीं था। प्रकाशक का नाम था, पर इस ग्रंथ का लेखक कौन है, इसका निर्देश नहीं था।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ऐसी अपरूप पुस्तक के रचयिता आत्मगोपन किये रहेंगे, इसकी कल्पना नहीं थी। बहरहाल, प्रत्यक्ष रूप में उन्हें न समझने पर परोक्ष रूप में उनके प्रति श्रद्धांज़लि अर्पित कर चुका था। अपने अनेक ज्ञानवृद्ध शिक्षित व्यक्तियों से अनुरोध किया था कि वे 'आर्य शास्त्र प्रदीप' के लेखक के बारे में मुझे जानकारी देने की कृपा करें। जब मैंने यह अनुभव किया कि कोई कुछ बता नहीं पा रहा है तब खोज के प्रयत्न से विरत हो गया। यह सन् १९०४–५ की बात है।

इसके बाद २–३ वर्ष और बीत गये। उन दिनों मैं राजस्थान के जयपुर नगर में स्थित महाराजा कालेज में अध्ययन करता था। वहाँ महाराजा साहब के प्रधानमंत्री रायबहादुर संसारचन्द्र सेन के भवन में रहता था। हमारे अंग्रेजी के अध्यापक नवकृष्ण राय थे जो शशधर तर्कचूड़ामणि महाशय के शिष्य तथा निष्ठावान आनुष्ठानिक ब्राह्मण थे। दूसरी ओर कूचविहार विक्टोरिया कालेज के अध्यक्ष स्वर्गीय ब्रजेन्द्रनाथ शील के प्रिय शिष्यों में से थे। बाबू ब्रजेन्द्र नाथ जिन दिनों बरहमपुर कालेज के अध्यक्ष थे, उन्हीं दिनों नव बाबू उनके निकट अध्ययन करते थे। नव बाबू मुझसे स्नेह करते थे। मैं उन दिनों उनके यहाँ जाकर साहित्य और शास्त्रों के बारे में चर्चा करता था।

एक दिन बातचीत के सिलसिले में मैंने उन्हें 'आर्य शास्त्र प्रदीप' की चर्चा करते हुए पुस्तक पढ़ने को दी। उक्त ग्रंथ को पढ़ने के कुछ दिनों बाद उन्होंने कहा—"ग्रन्थकार कौन है, मैं नहीं जानता। लेकिन मुझे ऐसा लगता है जैसे ये मेरे गुरुदेव श्री शशधर तर्कचूड़ामणि महाशय से संबंधित या किसी सूत्र से संलिष्ट हैं।"

कहने का मतलब आप भी कुछ बता नहीं सके। इस घटना के कई दिनों बाद मैं जयपुर स्टेट के एकाउण्टेण्ट जनरल सत्येन्द्रनाथ मुखोपाध्याय से कर्मवाद पर बातचीत करता रहा। सत्येन्द्रनाथ बाबू मेरे घर के समीप एक अलग बंगले में रहते थे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आप बाल ब्रह्मचारी और धार्मिक प्रकृति के पुरुष थे। आपके बड़े भाई प्रेमानन्द भारती अमेरिका में प्रसिद्ध हुए हैं। प्रेमानन्द भारती अमेरिका में रहते समय 'लाइट आव इंडिया' नामक एक पत्रिका का संपादन करते रहे। 'श्रीकृष्ण' नामक एक कृति अंग्रेजी में उनकी है। आपके गुरु ब्रह्मानन्द भारती बारदी के स्वनामधन्य लोकनाथ ब्रह्मचारी के शिष्य थे।

कर्मतत्त्व के बारे में चर्चा करने पर उन्होंने प्रसंगवश कर्म और कर्म-विनाश के बारे में सुन्दर व्याख्यान दिया। उनके इस व्याख्यान से मैं काफी प्रभावित हुआ था। मैंने उनसे निवेदन किया कि अगर आप किसी शास्त्र पर निर्भर रहते हुए ऐसा कह रहे हैं, उस ग्रन्थ के बारे में जानकारी देने की कृपा करें।

उन्होंने कहा—"यह व्याख्या मेरी अपनी नहीं है। इसे मैं किसी महापुरुष के निकट सुन चुका हूँ। उक्त महापुरुष गोपनीय रूप में रहते हैं। आम तौर पर प्रकट नहीं होते। स्वामी विवेकानन्द (नरेन्द्रनाथ), स्वामी अभेदानन्द (काली) मेरे बड़े भाई प्रेमानन्द आदि बहुत से लोग उनके यहाँ जाते थे। उन दिनों वे बराह नगर या बाली में रहते थे। आजकल कहाँ हैं, पता नहीं। बड़े असाधारण पुरुष हैं।"

सत्येन बाबू के निकट इस विवरण को सुनकर मैंने उनसे पूछा कि वे उनका नाम जानते हैं या नहीं? सत्येन बाबू ने कहा—"उनका नाम शशिभूषण सान्याल है। उनकी अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियों में 'आर्य शास्त्र प्रदीप' प्रमुख है।"

इनकी जबानी 'आर्य शास्त्र प्रदीप' के बारे में तथा ग्रंथकार का नाम सुनकर जैसे मुझे स्वर्ग मिल गया। एक अर्से से मैं इस बात की खोज कर रहा था। आज तक पता नहीं कर सका था। आज ज्ञात हो गया। लेकिन वे यह नहीं बता सके कि सान्यालजी हैं या नहीं, अगर हैं तो कहाँ हैं? बहरहाल नाम का पता लग जाने पर आगे का काम सरल हो गया।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चार वर्ष जयपुर रहने के बाद मैं एम० ए० पढ़ने के लिए काशी आ गया। यह सन् १९१० ई० की बात है। काशी आकर क्वींस कालेज में भर्ती हो गया। उन दिनों क्वींस कालेज के अध्यापक हरि केशव सान्याल के भतीजे (स्वर्गीय) शचीन्द्र मोहन सान्याल मेरे मित्र थे। स्वदेशी आन्दोलन के सिलसिले में हम परिचित हुए थे।

अधिकतर हम देश के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करते और इस सम्बन्ध में बातचीत करते थे। सोचा करते थे कि धार्मिक भित्ति में उज्ज्वल भविष्य की प्रतिष्ठा हो सकती है! उस समय हमारी यही कल्पना थी। शचीन्द्रनाथ वय में मुझसे छोटा होने पर भी उद्यमशीलता और स्वदेशानुराग का वह जीवन्त प्रतीक था। जो लोग उसकी पुस्तक 'बन्दी-जीवन' पढ़ चुके हैं, इसे स्वीकार करेंगे। भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलन के इतिहास में उनका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा। उस समय तक उसके भविष्य में आनेवाली अद्‌भुत संकटमय जीवन की पूर्व सूचना नहीं आयी थी। शचीन्द्र सेण्ट्रल हिन्दू कालेज में इंटर क्लास का छात्र था।

एक दिन शाम को हम लोग गंगातट के दशाश्वमेध घाट पर बैठे आपस में बातचीत कर रहे थे। अचानक शचीन्द्रनाथ ने मुझसे कहा—"काशी में एक असाधारण महापुरुष हैं। अनेक जगहों से अनेक लोग उनका दर्शन करने आते हैं। उनका दर्शन पाना बहुत कठिन है। अधिकतर लोग वापस चले जाते हैं। चलिये, हम लोग एक दिन उनका दर्शन कर आयें।" मैंने पूछा—"जिनका दर्शन पाना इनका कठिन है। उनके पास हमारे जैसे दो विद्यार्थी कैसे पहुँच सकते हैं?"

शचीन्द्र ने कहा—"उक्त महापुरुष का कनिष्ठ पुत्र मेरा सहपाठी है। अगर मैं उससे कहूँगा तो वह प्रयत्न करके दर्शन करा देगा। साधारण उपाय से उनसे मुलाकात करना संभव नहीं है।"

इधर मैं जरा ऊहापोह करने लगा। सोचता रहा कि दर्शन करने जाकर अगर वापस आना पड़ा तो बड़ा दुःख होगा। फिर दर्शन करने से क्या लाभ हो सकता है, इस प्रश्न को लेकर ऊहापोह करने लगा।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शचीन्द्र से पूछा—महापुरुष का नाम जानते हो ? यहाँ वे कहाँ रहते हैं ?

उसने कहा—वे सोनारपुर मुहल्ले में रहते हैं। नाम है—शशिभूषण सान्याल। मेरे सहपाठी का नाम है—इन्दुभूषण सान्याल।

शशिभूषण सान्याल का नाम सुनते ही मेरी पूर्व स्मृति जग उठी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि आप 'आर्य शास्त्र प्रदीप' के लेखक हैं। इस बारे में शचीन्द्र से प्रश्न करने पर वह कुछ बता नहीं सका। सिर्फ इतना कहा—'मैं इतना जानता हूँ कि वे महापुरुष हैं, महापंडित। उन्होंने कोई पुस्तक लिखी है या नहीं, यह नहीं जानता।'

बहरहाल, मेरे मन का संकोचभाव दूर हो गया। मैंने मन ही मन निश्चय किया कि मुलाकात करनी चाहिए। इसके बाद शचीन्द्रनाथ ने इन्दुभूषण से परामर्श करके सान्याल महाशय के निकट जाने के लिए एक दिन निर्दिष्ट किया।

उक्त दिन दो बजे हम दोनों दर्शन करने चले। इन्दुभूषण से यह भी मालूम हो गया था कि हम लोग वहाँ आधा घण्टा से एक घण्टा तक रह सकते हैं।

निश्चित दिन सान्याल महाशय से मुलाकात करने के लिए मैं और शचीन रवाना हुए। सोनारपुर वाले भवन में जाने के बाद वहाँ के वातावरण से मैंने अनुभव किया कि एक असाधारण पवित्रता और स्निग्धता चारो ओर व्याप्त है। निस्तब्धता और नीरव भाव उक्त शान्त वातावरण को मानो और भी गंभीर बनाये रखा है। हम लोग उस भवन में जाकर दर्शनार्थियों के लिए निर्दिष्ट स्थान पर बैठ गये और प्रतीक्षा करने लगे। कुछ देर बाद इन्दुभूषण नीचे यह देखने आया कि हम लोग आ गये हैं या नहीं।

उस समय दो बज चुके थे। इन्दुभूषण ने इशारे से जताया कि अब देर करना उचित नहीं है। हम लोग उसके पीछे-पीछे चले। कारण उसके पूजनीय पिता हम लोगों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। हम लोग तुरत उसके

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पीछे-पीछे चल पड़े। नीचे के तल्ले से सीढ़ी द्वारा दोतल्ले पर पहुँचे। मैंने देखा कि वे दोतल्ले पर रहते हैं।

एक विराट हाल, उसके बगल में भी कमरे हैं जिसके सामने विशाल बरामदा है। हाल के चारों ओर अनेक पुस्तकें हैं। सभी पुस्तकें कायदे से सजाये गये हैं। लगता था जैसे गैलरी बनाये गये हैं। सिर्फ यही नहीं, पुस्तकों की उपयोगिता के अनुसार चक्राकार और अर्द्धचक्राकार रूप में क्रमोच्च ढंग से गैलरी का रूप दिया गया है। इन पुस्तकों के बीच से गलियाँ हैं। हम लोग जिस गली के भीतर से हाल के भीतर आये, वही प्रधान गली थी।

हाल के भीतर आकर देखा कि एक ओर एक साधारण चटाई पर महापुरुष बैठे हैं। उनके पीछे एक मसनद है। सामने कुछ कागज और पुस्तकें थीं। दावात, कलम, पेंसिल आदि सामान करीने से सजाकर रखे थे।

नीचे से ऊपर आते समय मेरे मन में शंका उत्पन्न हुई थी कि इतने बड़े ज्ञानी महापुरुष का दर्शन करने जा रहा हूँ। उनसे किस विषय पर बातें करूँगा और कैसे अपने भावों को प्रकट करूँगा? मन में श्रद्धा मिश्रित भय उत्पन्न हुआ था।

लेकिन जब पुस्तक-स्तूप के अन्तराल से बाहर प्रत्यक्ष दर्शन किया तब सारा संकोच और आशंका क्षण भर में दूर हो गयी। जिन्हें देखने के लिए इतने दिनों से लालायित था, जिन्हें आविष्कार करने के लिए इतने दिन बीत गये, वही 'आर्य शास्त्र प्रदीप' के लेखक हैं? यह प्रश्न बार-बार मन में उत्पन्न होने लगे। मूर्त्ति सौम्य, प्रशान्त और गंभीर थी। असाधारण पाण्डित्य रहते हुए भी उनके मुखमण्डल पर बालकोचित सरलता तैर रही थी। स्नेह, करुणा और व्याकुलता का एक भाव मानो उनके नेत्रों को आर्द्र बना रहे थे।

जब हम लोगों ने उनके निकट जाकर प्रणाम किया तब उन्होंने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आशीर्वाद दिया। मैं सामने बैठा था और शचीन्द्र मेरे पीछे बैठा था। इन्दुभूषण हम लोगों को यहाँ तक पहुँचाकर चला गया था। बातचीत के सिलसिले में महापुरुष ने मेरा परिचय पूछा। मैं क्या पढ़ता हूँ, कहाँ पढ़ता हूँ। मैंने सम्पूर्ण समाचार उन्हें सुनाया।

उनके बारे में अपनी राय बताना मेरी धृष्टता होगी। मैंने उनमें एक ओर कर्म, ज्ञान, भक्ति, योग आदि विभिन्न साधन-प्रणालियों का जो अपूर्व समन्वय देखा, उसकी तुलना नहीं की जा सकती। उनमें शास्त्र-ज्ञान असाधारण था और शास्त्र के प्रति श्रद्धा भी वैसी थी। वे जिस दृष्टि से ऋषिप्रोक्त शास्त्रों को देखते थे—अपौरुषेय वेदादि की बात ही अलग है—उस प्रकार की दृष्टि वर्तमान युग में, प्राचीन संस्कार सम्पन्न, पूर्वाचारी अनुवर्त्तकारी ब्राह्मण पण्डितों में आम तौर पर नहीं दिखाई देता। समग्र वेद, संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, समग्र श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, स्मृति शास्त्र, स्मृति निबद्ध पुराण, उपपुराण, तंत्र साहित्य, सर्वांग सम्पन्न ज्योतिष, आयुर्वेद आदि जो कि विभिन्न स्थानों से मुद्रित तथा प्रकाशित हुए हैं, वे सभी ग्रंथ उनके पास थे। इसके अलावा पाश्चात्य दर्शन, विज्ञान, गणितशास्त्र, तर्कशास्त्र, चिकित्साशास्त्र आदि अनेक ग्रंथ उनकी अध्ययनशाला में थे। सभी ग्रंथों को वे श्रद्धा के साथ पढ़ते थे। उनके सत्य की निरूपण-कसौटी थी—ऋषि-वाक्य।

वे समन्वय दृष्टि से सर्वत्र सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करते थे। जिस प्रकार कर्म के साथ भक्ति और ज्ञान का विरोध नहीं है, उसी प्रकार ज्ञान के साथ कर्म और भक्ति तथा भक्ति के साथ ज्ञान और कर्म का विरोध नहीं है। उनका कहना था कि प्रत्येक मार्ग में व्यक्ति अपने-अपने अधिकार के अनुसार प्रवृत्त होता है। अनधिकार चर्चा न करने पर एक के साथ दूसरे का विरोध नहीं हो सकता।

हर्बर्ट स्पेन्सर ने जिस प्रकार सिन्थेटिक फिलासफी की कल्पना की है, उससे कहीं विराट कल्पना 'आर्य शास्त्र प्रदीप' के लेखक की है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बाबाजी जीवन्मुक्त पुरुष थे। अधिकतर लोग ऐसा विश्वास करते हैं। अनेक जगहों से विभिन्न सम्प्रदायों के उच्चांग साधक उनके निकट सदुपदेश ग्रहण करने आते थे। यति, संन्यासी, अवधूत, योगकर्मी, भक्त आदि अपनी-अपनी समस्याएँ लेकर आते और समाधान प्राप्त करते थे। सभी सम्प्रदायों को वे अपना समझते थे। सभी को यथायोग्य उपदेश देते थे। गृहस्थ के निकट संन्यासियों की ज्ञानलिप्सा के लिए आगमन अपूर्व घटना है, इसमें संदेह नहीं। जनक-शुकदेव की किंवदंती इस देश में अभी तक जागरूक है। कुछ दिन पहले तक काशी निवासी श्यामाचरण लाहिड़ी के सान्निध्य में बहुसंख्यक जिज्ञासु और साधना प्रार्थी संन्यासियों की भीड़ लगती थी।

मेरे व्यक्तिगत जीवन में बाबाजी का कितना प्रभाव पड़ा था, आज उसका ठीक-ठीक निर्देश करना सहज नहीं है, पर उनके साथ मेरा सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ हुआ था, इसे मैं मुक्तकंठ से स्वीकार करता हूँ। उनकी कृपा के कारण अलौकिक रूप में कई बार अपने शारीरिक रोग से मुक्ति प्राप्त कर चुका हूँ। उनकी करुणा का अयाचित प्रतिदान मैं कभी नहीं दे सका और न कभी दे सकता हूँ। बुद्धि-ज्ञान के विकास क्षेत्र में उनकी सहायता अतुलनीय है जो उनके ज्ञानमय जीवन का आदर्श नहीं रहा। साक्षात् रूप से उन्होंने अनेक ज्ञान इस आधार पर संचय किया था। उनका अदर्श जीवन, पवित्र हृदय, अमायिक स्वभाव, कर्म में प्रतिष्ठित ज्ञान, भक्ति का अपूर्व समन्वय ने मेरे प्रथम यौवन को मुग्ध किया था। बुद्धि के परे अध्यात्म के क्षेत्र में उनके अवदानों को मैं नतशिर होकर स्वीकार करता हूँ।

हरिहर बाबाजी प्रसिद्ध त्यागी संन्यासी थे। जब से मेरा काशी आगमन हुआ तब से उनका नाम सुनता आ रहा था। पहले रामनगर के सामने नाव पर रहते थे। जब तुलसीघाट स्थित नाव पर आकर रहने लगे तब मैं बराबर उनके निकट जाता रहा। जब मैं पहले पहल मिला था तब वे नाव पर नहीं रहते थे। बाद में नाव पर रहने लगे थे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस दिगम्बर महापुरुष का दर्शन करने के लिए मेरे गुरुदेव श्री श्री विशुद्धानन्द परमहंस जाया करते थे। उन दिनों मैं उनके साथ जाया करता था। योगत्रयानन्दजी (शिवराम किंकर) भी बाबा से श्रद्धा करते थे। हरिहर बाबा सर्वदा 'शिव-शिव',-'राम-राम' कहा करते थे। काशी और गंगा के प्रति उनकी निष्ठा अटल थी। नित्य शौचादि के लिए वे प्रातःकाल तथा सायंकाल नियमित रूप से गंगा पार कर रामनगर जाया करते थे। जीवन के अंतिम काल तक इस नियम का पालन करते रहे।

हरिहर बाबा का योगैश्वर प्रभाव मनुष्येतर प्राणियों पर भी था, उसका एक मनोज्ञ उदाहरण दे रहा हूँ।

एक दिन नगवा में शोरगुल मच गया कि काशी नरेश का एक वृद्ध हाथी पागल होकर रामनगर क्षेत्र में बड़ा उपद्रव कर रहा है। लोग चिंतित हो उठे हैं। इसके बाद वह हाथी चिग्घाड़ता हुआ नदी में कूद पड़ा। वहाँ से तैरता हुआ वह सीधे तुलसी घाट पर आया जहाँ हरिहर बाबा इष्ट ध्यान में निमग्न थे। बाबाजी निश्चल और बाह्य ज्ञान रहित थे। लोग भय से दूर भाग गये और भयभीत नेत्रों से देखने लगे। सभी लोगों ने भयभीत दृष्टि से देखा कि वह पागल हाथी हरिहर बाबा के पास जाते ही इन्द्रजाल की तरह क्षण भर में शान्त हो गया और आज्ञाकारी नौकर की तरह खड़ा हो गया। लगा जैसे हरिहर बाबा की प्रेम-महिमा में बन्दी हो गया है हाथी का पशुत्व दूर हो गया है, वह अपनी सत्ता को खो चुका है। इस घटना की कहानी काशी की जनता बहुत दिनों तक कहती रही।

जिस प्रकार पहले तैलंग स्वामी काशीवास करते हुए जनता की दृष्टि में महापुरुष के रूप में गण्य हुए थे, ठीक उसी प्रकार हरिहर बाबा भी लोगों का चित्ताकर्षण करते रहे। यहाँ तक कि तैलंग स्वामी के स्थान की पूर्ति इस शताब्दी वे ही रहते रहे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कीर्त्तन-पाठ (योगवासिष्ठ और रामायण) उनके सामने नियमित होता रहा। जिस वर्ष वे स्वर्गवासी हुए उस वर्ष योगवागिष्ठ और रामायण के प्रति उनका विशेष अनुराग पो गया था।

कठोर तपःचर्या और कृच्छ साधना के कारण हरिहर बाबा का शरीर खराब होता गया। कभी-कभी भक्तों को शरीर छोड़ने की बात कहा करते थे।

उस समय आपके भक्त कहते थे—बाबा, आप इच्छामय हैं, स्वतंत्र ईश्वर स्वरूप। अगर हम सभी के लिए शुभ और कल्याण चाहेंगे तो अभी काफी दिनों तक रहेंगे।

इसके उत्तर में वे कहते—"मैंने अपनी सारी इच्छाओं को रामजी के चरणों में समर्पित कर दिया है।" फिर कोमल शब्दों में कहते—"जो निवेदन किया है, क्या उसे वापस लिया जा सकता है?"

भक्तों ने कहा—"आपके आश्रय में हम अत्यन्त निर्भरता के साथ शान्तिपूर्वक विश्राम कर रहे हैं। आप हमें छोड़कर कभी न जायँ।"

उन्होंने उत्तर दिया—"तुम सब जीवभाव छोड़कर रामजी के परम स्वरूप उस परमात्मा की याद को स्मरण करते रहो जो रामजी सभी सृष्टि में ओतप्रोत रूप में विराजमान हैं। सभी के भीतर, सब कुछ के भीतर रामजी का सान्निध्य प्रत्यक्ष करने का प्रयत्न करो। परमधाम का चिन्तन करो। वहाँ तुम्हारे साथ, मेरे साथ तुम लोगों का कभी किसी समय विच्छेद नहीं रहेगा।"

अन्तरंग सेवकों को एकान्त में बुलाकर उन्होंने कहा—"वृक्ष काफी जीर्ण-शीर्ण हो गया है अर्थात् पुराना हो गया है। इसे अधिक दिनों तक रखा नहीं जा सकता।"

सन् १९४९ ई० की १ जुलाई को अपने इच्छानुसार उन्होंने आखिरी साँस ली। उन्हें जल समाधि दे दी गयी।

●

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

परमहंस विशुद्धानन्दजी महाराज

सन् १९१७ ई० के अन्तिम दिनों अचानक परमहंस विशुद्धानन्दजी महाराज से मेरा परिचय हुआ। इसके पूर्व 'आर्य शास्त्र प्रदीप' के लेखक शिवराम किंकर, योगत्रयानन्द महाराज के साथ घनिष्ठता रहते हुए भी उनसे दीक्षा नहीं ले सका था। पूरे सात साल तक उनके सान्निध्य में था। आप योगी, ज्ञानी और भक्त थे। इसके अलावा प्राच्य और पाश्चात्य-दर्शन-शास्त्र पर आपकी प्रगाढ़ दक्षता थी। विज्ञान, गणित, ज्योतिष, मंत्र, तंत्र आदि विषयों के पारदर्शी और ज्ञाता थे। आप (शिवराम किंकर या योगत्रयानन्दजी) गृहस्थ थे, पर आपके निकट अनेक परमहंस अध्यात्म-सम्पद प्राप्त करने के लिए आते थे। चिकित्सा-शास्त्र पर विशेष व्युत्पत्ति रहते हुए भी आप विविध प्रणाली से, कभी-कभी अतिरिक्त वैदिक मंत्र-शक्ति के प्रभाव से रोगमुक्त कर देते थे। प्रथम-दर्शन से ही उनका मुझपर अधिक स्नेह हो गया, इसीलिए उनके साथ सर्वदा साक्षात् होता था। ऐसा सौभाग्य कम लोगों को प्राप्त होता है। इतनी घनिष्ठता रहते हुए भी भगवत् इच्छा के कारण उनसे दीक्षा नहीं ले सका था।

परमहंस विशुद्धानन्दजी के साथ अपनी पहली मुलाकात में उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर सका था। बिना प्रार्थना के, उनके इंगित के माध्यम से मैं यह समझ गया था या अनुभव-शक्ति के द्वारा जान गया था कि इनके निकट मुझे दीक्षा प्राप्त होगी।

परमहंसजी के बारे में सुना कि वे एक महायोगी हैं और अनेक वर्ष तक तिब्बत में रहकर योगविद्या तथा आर्यविज्ञान प्राप्त कर चुके हैं। इनमें सूर्य-विज्ञान प्रमुख है। इसके बाद से उनके निकट उपस्थित होकर इन सभी विषयों का रहस्य जानने की मेरी विशेष इच्छा हुई। अपने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रथम दर्शन से ही मुझे ऐसा लगा जैसे वे मेरे पूर्व परिचित या चिर परिचित हैं।

ज्योंही उन्हें प्रणाम किया त्योंही उन्होंने पूछा—"क्या तुम्हें हार्ट (दिल) की बीमारी थी ? अभी तक हार्ट को दुर्बल देख रहा हूँ।"

आज से छः साल पूर्व सन् १९१२ में हार्ट की बीमारी के कारण परीक्षा नहीं दे सका था। इसके लिए मन में अशान्ति और कष्ट था। डाक्टरों के परामर्शानुसार हवा-पानी बदलने के लिए विभिन्न जगहों गया था, इस बात को कोई नहीं जानता था। इस बीच हार्ट की ओर से कोई उपद्रव न होने के कारण अपने को स्वस्थ समझता रहा। फलतः स्वामीजी की बातें सुनकर मैं स्तम्भित रह गया।

उन्होंने कहा—"दीक्षा होने पर सब ठीक हो जायगा। चिन्ता की बात नहीं है।"

उनके प्रश्न से यह प्रमाणित हुआ कि जागतिक परिचय न रहने पर भी वे मेरे बारे में पहले से जानते थे। दीक्षा प्राप्त करने के पहले भी प्रति दिन उनके निकट सत्संग प्राप्त करने के लिए जाया करता था।

स्वामीजी प्रत्यक्षवादी थे और कहा करते थे कि जबतक कोई व्यक्ति तत्त्व या तथ्य को प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त नहीं कर लेता एवं दूसरों को तत्त्व या तथ्य प्रत्यक्ष नहीं करा पाता तब तक किसी भी रूप में पूर्ण विश्वास स्थापित नहीं हो सकता। एक दिन प्रसंगवश मैंने स्वामीजी से पूछा—"योगशास्त्र में लिखा है कि यह सर्वात्मक, इसका क्या रहस्य है? यहाँ तक कि पतंजलि के योगशास्त्र की व्याख्या और कथा अनेक दिनों तक सुनने के बाद, योगत्रयानन्दजी के निकट विशेष सिद्धान्त तक पहुँचा हूँ; किन्तु उससे सन्तोष मात्र प्राप्त हुआ है। हृदय का संशय दूर नहीं हो सका है। फिलहाल इस मीमांसा तक आ पहुँचा हूँ कि अच्छा-बुरा, जय-पराजय, सत्-असत्—सब कुछ एक है। जगत् की समस्त वस्तु अगर एक का ही घनीभूत रूप या विभिन्नता के भीतर अभिन्नता दृश्यमान है तो

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इस प्रकार की विषमता के क्या कारण हो सकते हैं ? बुद्धि और विवेक समाधान प्राप्त होने पर भी चित्त में सुस्थिरता, स्थितिशीलता स्थायी नहीं होती।"

स्वामीजी ने कहा—"पतंजलि के सभी सिद्धान्त सत्य और अभ्रान्त एवं पूर्ण हैं। वास्तव में सभी के भीतर सब कुछ है, लेकिन सब कुछ के भीतर सब कुछ रहने पर भी, उसकी अधिकता के कारण उसके नामकरण की विभिन्नताएँ उसी के आधार के अनुसार हुई हैं और उसी हिसाब से जगत् में उनका परिचय प्राप्त करते हैं जब कि ऐसा नहीं है कि वस्तु के गुण, क्रिया की प्रधानता के अनुसार घटता रहता है।

मैंने पूछा—"कैसे इसे प्रत्यक्ष रूप में अनुभव किया जा सकता है ?"

उन्होंने कहा—"सर्वत्र, सर्वदा, सभी प्रकार एवं सभी अवस्था में अनुभव हो सकता है।" इतना कहने के बाद उन्होंने कहा—"देखो. अभी दिखाता हूँ।"

उस समय कमरे में सुगन्धित फूलों (मेरी गोल्ड) की एक माला थी। उस माला से एक फूल लेकर उन्होंने कहा—"बताओ, यह कौन सा फूल है ?"

मैंने कहा—"यह सुगन्धित फूल है।"

उन्होंने कहा—"इसमें सभी प्रकार के फूल नहीं हैं जबकि इसमें सभी वस्तुएँ विद्यमान हैं। इसलिए इसे गुलाब का फूल बना दे रहा हूँ।" इसके बाद उसे कुछ देर तक हिलाते-डुलाते रहे। मैंने देखा—वह गुलाब का फूल बन गया। इसके बाद वह अड़हुल (जवा) बन गया। इसके बाद बाबा ने कहा—"सभी वस्तुओं के भीतर सभी वस्तुएँ कमोबेश हैं, सभी परमाणु का आविर्भाव तथा त्याग प्रधान सहायक है। सभी सत्ता के रहने पर भी जिस वस्तु का अंश अधिक रहता है। उसी की गुण-क्रिया अभिव्यक्त होती है। इसलिए उस रूप में प्रकाश प्राप्त करना संभव है। इसी प्रकार असत् वस्तु में सत् का अस्तित्व रहता है और शुद्ध वस्तु में

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भी अशुद्ध तत्त्व विद्यमान रहते हैं। फलस्वरूप असाधु व्यक्ति जिस प्रकार आगे चलकर साधु-रूप में परिणत हो सकता है, उसी प्रकार साधु व्यक्ति का भी असाधु रूप में पतन हो सकता है।"

मैंने कहा—"आपने जिस परिवर्तन को साधा, क्या यह योगबल से हुआ है ?"

उन्होंने कहा—"नहीं, यह योग नहीं है। यह सूर्य-विज्ञान की क्रिया है।"

प्रति दिन दोपहर के समय उनके निकट जाता और योग-विज्ञान की चर्चाएँ सुना करता था। इससे जो कुछ समझ पाया था, वह सूर्य-विज्ञान का संक्षिप्त विवरण था। वह यों है—"सूर्य-शक्ति के प्रभाव से या इसका परिज्ञान होने के बाद रश्मियों के विशिष्ट प्रक्रियामूलक संघटन से कोई भी वस्तु उत्पन्न हो सकती है। किन्तु रश्मियों का पृथकीकरण या इस बारे में अभिज्ञता प्राप्त करना विशेष दुरुह है। रश्मियों में विभिन्न रंग हैं, उनमें विशेष रूप से श्वेत वर्ण प्रधान है। शास्त्रों में इसे विशुद्ध सत्त्व-रूप में वर्णन किया गया है। इसी शुभ वर्ण पर आवश्यकतानुसार विभिन्न वर्णों की रश्मियों का उद्भावन एवं संयोजन करने के बाद ही सभी वस्तुओं का आविर्भाव होता है। सामान्य होने पर भी प्रत्येक वस्तु के भीतर प्रत्येक वस्तु का आविर्भाव होता है, पर अणु-परमाणु के प्रधान भाव को देखना चाहिए।"

प्रत्येक वस्तु में कुछ अंश प्रबल होते हैं और कुछ अंश दुर्बल होते हैं। मैंने पूछा—"अगर गुण प्रधान भाव न रहे, सब कुछ यथावत् रहे तब क्या होगा ?"

उन्होंने कहा—"गुण प्रधान भाव न रहने पर वह साम्यावस्था में विराजमान रहेगा तब वस्तु को लय प्राप्त होगा।"

सृष्टि एवं संहार के परम सूक्ष्म अणुओं की लीला या अभिव्यंजक होता है, इसलिए सूर्य रश्मियों के द्वारा सभी अणुओं का परिचय ज्ञात

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होता है। रश्मि है व्यंजक और अणु है—व्यंज। व्यंजक के आकर्षण से व्यंज का अविर्भाव होता है। फलतः तदानुसार व्यंजक वर्णों का क्रम या स्तर के बारे में तरह-तरह के सूत्र (फार्मूला) हैं।

वैज्ञानिकों को यह ज्ञात है कि ज्ञान के उन्मेष से, उन क्रियाओं के माध्यम से सभी उपादानों को आकर्षित करना पड़ता है। क्रिया-विशिष्ट ज्ञान को ही विज्ञान कहा जाता है। वैज्ञानिक प्रत्येक वस्तु का विश्लेषण करना जानते हैं। यहाँ तक कि इन सभी क्रमों का ज्ञान उसमें होता है। इन सभी क्रमों का अनुसरण करते हुए व्यंजक-रश्मियों को आकर्षित करना पड़ता है।

इसमें एक रहस्य है। क्रमान्तर्गत सभी रश्मियों को क्रमशः आकर्षित करने पर भी मूल रश्मि आकर्षित नहीं होती जबतक बाह्य दृष्टि से उस वस्तु का आभास प्राप्त होता है। मूल रश्मि या अन्तिम रश्मि के आविर्भाव के साथ ही रश्मि के व्यंज उपादान प्रकट हो जाते हैं और उसमें सभी वस्तुओं के स्वरूप प्रत्यक्ष हो जाते हैं। यह सब अपूर्व घटनाएँ हैं।

अन्तिम रश्मि को छोड़कर शेष रश्मियों की स्थिति को दीर्घकाल तक रखा जा सकता है। दूसरी ओर आवश्यकतानुसार एक ही रश्मि के तीव्र प्रभाव से उस वस्तु का आविर्भाव उदय हो जाता है। यह वस्तु कल्पित है एवं जागतिक वस्तु से अधिक निर्मल और स्थायी रूप से विद्यमान रहता है।

इस प्रसंग के गुह्य रहस्य के बारे में स्वामीजी ने कहा—"अब प्रश्न यह है कि इन सभी रश्मियों का संयोजन कैसे होगा? यह प्रश्न इसलिए किया गया कि रश्मि की स्थिति क्षणिक होती है। प्रकट होने के साथ-साथ लीन हो जाती है। वैसी हालत में एक रश्मि के साथ दूसरी रश्मि की युक्तावस्था कैसे सम्भव है? दोनों रश्मियों के सम होने पर स्थायी होना सम्भव है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यह अत्यन्त रहस्यमय है। सभी रश्मियों के भीतर या अन्तराल में एक विशुद्ध शुभ्र किरण रहती है। उसमें तीव्र आकर्षण-शक्ति रहती है। सृष्टि में उक्त शुभ्र शक्ति का स्फुरण नहीं रहता बल्कि यह समस्त सृष्टि की पृष्ठभूमि में रहती है। वैज्ञानिक इसे खण्ड रूप में प्रकट कर सकते हैं एवं स्थिति रूप में काफी देर तक स्थायी रख सकते हैं। इस रश्मि के साथ किसी का कोई विरोध नहीं होता। इसका कारण यह है कि वह स्निग्ध और स्वच्छ है। फलतः इस शुभ्र रश्मि पर किसी भी रश्मि का प्रतिफलन संभव है। यही वजह है कि अन्यान्य रश्मियाँ भी इससे आकृष्ट होकर संयुक्त हो जाती हैं अर्थात् इसका तिरोधान नहीं होता।

इस प्रकार क्रमशः द्वितीय रश्मि इसके साथ युक्त हो, आकृष्ट होकर मिल जाते हैं। इस प्रकार रश्मियों का महामिलन होता है। तृतीय, चतुर्थ, पंचमादि रश्मियाँ इसी प्रकार संयोग साधती हैं। इन रश्मियों का संयोग-साधन का अर्थ या इसका तात्पर्य है, उन व्यंजनों के उपादानों का संयोग साधना। जब अन्तिम उपादान का संयोग सध जाता है तभी द्रव का आविर्भाव होता है। यही सृष्टि का रहस्य है। अनुलोम और विलोम इन दोनों प्रकार के रश्मियों के बारे में जानकारी रखना चाहिए।"

बाबा कहा करते थे—"सूर्य-विज्ञान ही सृष्टि तत्त्व का मूल रहस्य है। इसीलिए सूर्य का नामकरण 'सविता' हुआ है। इसी प्रकार चन्द्र-विज्ञान, वायु-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, शब्द-विज्ञान, क्षण-विज्ञान आदि सविशेष ज्ञान हैं।" इन सभी विज्ञानों के बारे में बाबाजी तिब्बत निवासकाल में ज्ञान प्राप्त कर चुके थे। मेरे द्वारा लिखित 'विशुद्धानन्द प्रसंग' (पाँच खण्ड) नामक बंगला पुस्तकों में विशद विवरण है।

दीक्षा के बाद बाबा के साथ मेरा २० वर्षों तक सम्पर्क था। इस बीच उनकी अलौकिक विभूति और शक्ति का परिचय मुझे प्राप्त हुआ था। इसके साथ ही उनकी करुणा और प्रेम की अपार कृपा प्राप्त हुई थी।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बाबाजी का जीवन बड़ा ही विचित्र रहा। उनका अद्भुत शरीर और साधना आश्चर्यजनक था। निर्मल चरित्र, कठोर-संयम, नियमपूर्वक रहना और उनमें असाधारण करुणा थी। स्वातंत्र्यप्रियता, तीक्ष्ण धीशक्ति, उनके स्वभाव की विशिष्टता थी। वे कहा करते थे—"सहसा किसी पर विश्वास मत करना। विश्वास करने पर ठगे जाओगे। इस जगत् का प्रत्येक परमाणु तुम्हारे प्रतिकूल है। तुम्हारा मित्र एकमात्र तुम हो। अपने को भूलकर बाहरी मित्रों के प्रति आकृष्ट मत होना। अपने को संसार में फंसा चुके हो। अब संसार से अपने विक्षिप्त उपादानों को बटोर लो। ज्योंही बटोर लोगे त्योंही एक जगह अपने पूर्ण आदर्श को घनीभूत रूप में प्रत्यक्ष देख सकोगे। वही तुम्हारी सर्वापेक्षा प्रिय वस्तु है। इसकी खोज में कितने जन्मों तक कितने रूप में चक्कर काटते रहे, अब उसे प्राप्त कर शान्ति अनुभव करो। विश्वास दुर्लभ सामग्री है। जहाँ-तहाँ विश्वास की स्थापना नहीं करना चाहिए। हर कदम पर सत्यासत्य की परीक्षा करनी ही पड़ेगी तभी विश्वास स्थिर होगा। बेकार जगह विश्वास कर प्रताड़ित होने की अपेक्षा, पहले संशय करके बाद में अटल विश्वास के द्वारा स्थिति प्राप्त करना श्रेयष्कर है।"

उन्होंने कहा—"तीव्र पुरुषाकार द्वारा भूतपूर्व कर्मों का खण्डन किया जा सकता है। पुरुषाकार का महत्त्व असीम है। योगाभ्यास ही मुख्य पुरुषाकार है। सद्गुरु के बताये मार्ग पर उनके द्वारा प्रदत्त शक्ति से शक्तिशाली होकर निरन्तर श्रद्धा और संयम के साथ, अनुष्ठान करने पर चित्त शुद्धि होती है तथा ज्ञान का उदय होता है। ज्ञान के बाद शुभ-भक्ति का संचार होता है। भक्ति जब परिपक्व होता है तब प्रेम का उद्भव होता है। उस वक्त हृदय गल जाता है। जगदम्बा को पाने के लिए यही एक मात्र साधन है।"

बाबाजी का कहना है कि योग अत्यन्त गुह्य मामला है। आमतौर पर लोग जिस प्रकार अनुष्ठान करते हैं, वह वास्तव में योग नहीं है। लोकालय में बहुत कम लोग योगतत्त्व से परिचित हैं। वे शास्त्र और सदा-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चार के एकमात्र पक्षपाती, लोकसंग्रह के लिए सामाजिक व्यवस्था के अनुगामी, लेकिन शुद्ध आचार में तृप्त रहने के विरोधी थे। उनका कहना था—"बिना कर्म किये, केवल ग्रन्थों के अध्ययन से कोटि जन्म में ज्ञान प्राप्त नहीं होता।"

उनका स्वभाव अभिमानहीन, सरल और बालकोचित था। इतना ज्ञान, ऐश्वर्य और साधन-सम्पन्न होते हुए भी उन्हें कभी क्षण भर के लिए अविनयी होते नहीं देखा। साधारण तौर पर देखा गया है कि परिचय गहरा होने पर भक्ति का ह्रास होता है, किन्तु उन्हें जो जितने घनिष्ठ भाव से पहचान सके हैं वे उतना ही मुग्ध हुए हैं। मानो अनन्त वस्तु देखने की पर भी देखने इच्छा मिटती नहीं। प्रत्येक क्षण नव-नव भाव उत्पन्न होते हैं।

तीव्र-साधना के कारण उनका शरीर अपरिवर्तित हो गया था। उनकी सिद्धियों की संख्या अगणित हैं। एक दिन मुझे महासिद्धि की एक प्रणाली समझाते हुए उन्होंने अपनी तर्जनी उंगली को इतना वृहत किया कि उसे देखकर पहचानना कठिन हो गया। कुछ लोग उनकी अणिमा-सिद्धि को प्रत्यक्ष रूप में देख चुके हैं। प्राप्ति, आकाश गति, अन्तर्ध्यान, कायव्यूह आदि भी कुछ लोग अपनी आँखों से देख चुके हैं।

यह सब सिद्धि उनकी दृष्टि में तुच्छ और नगण्य हैं। जो अपार धन के धनी होकर अतुल ऐश्वर्य को तृणवत समझकर उपेक्षा करते रहे, उस भगवत्-प्रेमरूप अमूल्य चिन्तामणि को आज उनसे माँग लेने में भूल न हो जाय।

वर्धमान जिला बण्डुल ग्राम स्थित चट्टोपाध्याय परिवार लम्बे अर्से से स्वधर्म-पालन, अतिथि-सेवा और देव-द्विजों के प्रति भक्ति करने के लिए प्रसिद्ध है। शुभ फाल्गुन मास, उनतीसवीं तारीख, नव वसन्त के आगमन के समय इस परिवार के लिए एक अति महत् गौरवपूर्ण दिन था। जन्म-जन्मान्तर के सुकृति के फलस्वरूप अखिलचन्द्र चट्टोपाध्याय और उनकी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पत्नी देवी राजराजेश्वरी भगवती को जगन्माता का शुभाशीर्वादस्वरूप एक अपूर्व पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई।

धन्य है वण्डुल ग्राम और उससे अधिक धन्य है, चट्टोपाध्याय वंश। धन्य हैं—अखिलचन्द्र और देवी राजराजेश्वरी। जिस वंश में एक तत्त्व-ज्ञानी और भगवत्भक्त महात्मा जन्म लेता है, उस वंश के ऊर्द्धतन और अधस्तन सप्तम पुरुष तक सद्गति प्राप्त करते हैं।

पिता-माता ने बड़े स्नेह से नाम रखा—"भोलानाथ"। यह नाम सार्थक हुआ था जिसका प्रमाण उसका भविष्य जीवन था। अंग्रेजी में एक कहावत है—'चाइल्ड इज फादर आफ मैन', अर्थात् मनुष्य भविष्य में जो बनना चाहता है, पूर्व-जीवन में उसका आभास मिल जाता है।

बचपन से ही आप बिना देव-पूजा किये पानी तक नहीं पीते थे। बालक की पूजा अमंत्रक, विधिरहित, नियम के अतीत थी, फिर भी वह हृदय के गभीर अन्तःस्थल से स्वाभाविक रूप में होती थी, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। "भावग्राही जनार्दन"। प्राण का भाव अथवा भक्ति-पूजा सूक्ष्म तत्त्व है। भावरहित पूजा, पूजा नहीं होती। मंत्रादि का आयोजन हृदय के सुप्त भावराशि को प्रकट करने के अलावा उनका कोई उद्देश्य नहीं है। बालक के हृदय में पूर्व जन्मों के शुभ-संस्कार निबद्ध रहते हैं। पूर्व कर्मों के फलस्वरूप सौभाग्य क्रम से शैशव से ही दिव्य भावों का विकास होता गया, इसीलिए उनकी पूजा बाल सुलभ होने पर भी वास्तविक-पूजा का आदर्श था, यह निश्चित है।

बालक में मातृभक्ति शैशव से प्रबल थी। इस तरह की मातृभक्ति इस संसार बहुत कम देखने में आती है। बाबाजी कहा करते थे कि उनके जीवन में सभी प्रकार की उन्नति जननी के आशीर्वाद से हुई है।

नवम् वर्ष में बालक की उपनयन-क्रिया सम्पन्न हुई थी। उपनयन के बाद सावित्री देवी के प्रभाव से बालक के स्वाभाविक ब्रह्मचर्य में शतगुण

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वृद्धि हुई थी। सुना जाता है कि भोलानाथ ने बण्डुल स्थित शिवलिंग में हर-पार्वती की मूर्ति का दर्शन किया था।

जिसे हम लोग भयानक दुर्घटना कहते हैं, अक्सर देखा गया है कि वही भविष्य-जीवन में उन्नति की सूचना देती है। लगभग चौदह या पन्द्रहवाँ वर्ष व्यतीत हुआ था, कैशोर वय का अवसान नहीं हुआ था। एक दिन सीढ़ी से उतरते समय अचानक एक पागल कुत्ते ने पैर में काट खाया। उनके बड़े भाई डाक्टर थे। वे स्वयं तथा अन्य वैद्यों की सहायता से चिकित्सा करने लगे लेकिन नियमित चिकित्सा करते रहने पर बालक की अवस्था धीरे-धीरे शोचनीय होती गयी। बालक को गोंदालपाड़ा (चन्दन नगर के पास) ले जाया गया। वहाँ की प्रसिद्ध दवा दी गयी। फिर भी कोई लाभ नहीं हुआ। गोंदालपाड़ा से बालक हुगली चला आया, हुगली में काफी इलाज हुआ। पर रोग अच्छा होने का नाम नहीं ले रहा था।

शाम हो गयी थी। हल्की हवा गंगा की लहरों पर खेल रही थी। बालक चुपचाप अनमने भाव से इस दृश्य को देख रहा था। गंगा तट पर बालक ने आकर देखा कि एक जटाधारी सौम्य मूर्त्ति संन्यासी निरन्तर उन्मज्जन और निमज्जन कर रहे हैं। गंगा का जल उनके साथ-साथ स्तम्भ की भाँति स्फीत होकर ऊपर उठ रहा है और फिर गिर रहा है। संन्यासी का आनन प्रशान्त, आँखें उज्ज्वल और मधुर, देखने पर ऐसा लगता था जैसे अपार्थिव ज्ञान और करुणा एक साथ मिलकर, दुःख-पीड़ित धरणी के उद्धार के लिए अवतरित हुए हैं। संन्यासी त्रिकालज्ञ महापुरुष थे। उनके लिए अज्ञात या अज्ञेय कुछ नहीं था। बालक की ओर कुछ क्षण देखने के उसका समस्त इतिहास और वेदना को समझ गये। गंभीर और स्निग्ध स्वर में उन्होंने बालक को बुलाकर पूछा—"बच्चा, इतना क्यों घबराता है ? दर्द होता है ? अच्छा ! हम सब अच्छा कर देगा।"

इतना कहने के बाद वे तट पर आ गये। बालक के मस्तक पर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपना हाथ रखा। संन्यासी वहीं बालक को दवा खिलाने के बाद बोले—"घर चले जाओ।"

बालक घर वापस आया। उस समय उसे कोई तकलीफ नहीं थी। दूसरे दिन बालक पुनः गंगा तट पर गया और उस महापुरुष के निकट प्रार्थना करने लगा—"प्रभो, आपने मुझे जीवन-दान दिया है। आप मुझे दीक्षा देकर धर्म-जीवन का पथ-प्रदर्शन करें।"

महापुरुष ने उसे एक आसन सिखाकर एक बीज मंत्र देते हुए कहा—"बालक, मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ। इस आसन का अभ्यास करना और इस बीज मंत्र का जप करते रहना। इससे तुम्हारी देह-शुद्धि सम्पन्न होगी। तुम्हारे गुरु तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करेंगे। अब तुम घर जाओ। मैं गंगासागर जा रहा हूँ। वक्त आने पर तुम्हें साथ लेकर तुम्हारे गुरु के पास ले चलूँगा। अब निश्चिंत रहो।"

माँ पुत्र की जबानी उसके अलौकिक रूप में स्वस्थ हो जाने का समाचार सुनकर आनन्दित हो उठीं।

उन दिनों भोलानाथ वर्धमान कें कांचन नगर वाले मेस में रहकर पढ़ता था। वहाँ एक मुसलमान की जबानी उसे पता चला कि ढाका में एक असाधारण संन्यासी आये हुए हैं। मुसलमान की ज़बानी यह समाचार सुनते ही बिना देर किये वह ढाका की ओर रवाना हो गया। वर्धमान में हरिपद नामक एक युवक के साथ उसका परिचय था। वह भी भोलानाथ के साथ चल पड़ा। ढाका आकर वे दोनों उक्त अलौकिक संन्यासी के दर्शन की लालसा में चारों ओर चक्कर काटने लगे। अन्त में रमना के मैदान में, एक निर्जन स्थान पर उक्त महापुरुष से मुलाकात हुई। उन्हें देखते ही भोलानाथ ने पहचान लिया कि यही वह महापुरुष हैं जिन्होंने हुगलीघाट पर उसे प्राणदान दिया था। भक्तिपूर्वक उनके चरणों पर प्रणाम करते हुए भोलानाथ ने कहा—"प्रभो, अब मुझे ग्रहण कीजिए। मुझे निराश न करें।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संन्यासी ने कहा—"अकेले न आकर एक और को क्यों साथ लाये हो ?"

बहरहाल इतना कहने के बाद उन्होंने दोनों को शिष्य रूप में ग्रहण कर लिया। साथ ही अपने साथ ले जाने के लिए राजी हो गये। महापुरुष भोलानाथ के मन की परीक्षा करने के लिए पूछा—"क्या तुम मेरे साथ दुर्गम मार्ग पर चल सकते हो ? अभी तुम बालक हो, इसलिए यह पूछ रहा हूँ। अगर वास्तव में जाने की इच्छा हो तो शाम के बाद मुझसे मुलाकात करना। मैं तुम लोगों को अपने साथ ले चलूँगा।"

संन्यासी की आश्वास वाणी सुनकर भोलानाथ अत्यन्त प्रसन्न हो उठे। यथासमय अपने साथी को लेकर निर्दिष्ट स्थान पर संन्यासी के पास आये। संन्यासी ने उन दोनों की आँखों पर पट्टी बाँध दिया और कहा कि तुम दोनों मेरे पीछे-पीछे आओ। संन्यासी धीरे-धीरे अँधियारे रात में, जंगल के रास्ते से आगे बढ़ने लगे। दोनों युवक उनका हाथ पकड़कर उनका अनुसरण करने लगे। यद्यपि दोनों ही पैदल चल रहे थे, उन्हें ऐसा अनुभव हो रहा था, तथापि यह साधारण भ्रमण नहीं है, इसका अनुभव उन्हें शीघ्र हो गया। रात भर लोग पैदल चलते रहे। जब सवेरा हुआ तब संन्यासी ने उन दोनों की पट्टी खोल दिया। उन लोगों ने चकित भाव से चारों ओर देखा—एक पहाड़ के किनारे, देवायतन के समीप वे लोग खड़े हैं। मन्दिर के भीतर अष्टभुजा देवी मूर्त्ति विराजमान है।

इस स्थान का नाम विंध्याचल और देवायतन के मध्यस्था देवी स्वयं विंध्यवासिनी हैं। सुदूर बंग देश से एक रात में नदी-पर्वतमालाओं को भेदते हुए कैसे इतनी दूर पैदल चले आये, इसे वे नहीं समझ सके। इन लोगों को अष्टभुजा मन्दिर के समीप छोड़कर संन्यासीप्रवर गायब हो गये। जाते समय यह कह गये कि डरने की कोई बात नहीं है। कुछ दिनों बाद मैं वापस आ जाऊँगा। इसके बाद यथास्थान ले जाऊँगा।

संन्यासी के अन्तर्ध्यान होने के बाद भोलानाथ और हरिपद दोनों

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ही चिन्तित हो उठे। सुदूर घने जंगल और हिंस्र-जन्तुओं की आशंका से डर गये। कई घण्टे व्यतीत होने के बाद एक काले रंग का ब्राह्मण उपयोगी भोजन लेकर इन लोगों के समीप आया। दोनों ने छककर भोजन किया। इसके बाद दोनों आराम करते रहे। शाम के समय पुनः वही ब्राह्मण भोजन ले आया और रखकर चला गया।

इस प्रकार विंध्याचल में पाँच-छः दिन व्यतीत करने के बाद उक्त महापुरुष आये। इस वार ज्ञात हुआ कि उक्त महापुरुष का नाम परमहंस नीमानन्द स्वामी हैं। वे पुनः पूर्व प्रणाली की तरह आँखों पर पट्टी बाँधकर ले चले। विंध्याचल से सोलह मील दूर एक आश्रम था। वहाँ अनेक साधु-महात्मा उपस्थित थे। भोलानाथ और हरिपद को वहाँ रखकर महापुरुष चले गये। पुनः वापस आकर उन दोनों को साथ लेकर तुकली पहाड़ ले गये। उस समय वहाँ एक गुफा में श्यामा भैरवी माता थीं। भैरवी माता ने बड़े स्नेह के साथ इनके भोजन की व्यवस्था की। कुछ काल के बाद उक्त महापुरुष पुनः आकर उन लोगों को साथ लेकर चल पड़े। इस वार भी पूर्वोक्त प्रणाली के अनुसार शाम के बाद रवाना हुए। प्रभात के समय दोनों युवकों ने आँखें खोलते ही देखा कि एक अपूर्व स्थान पर आये हैं। पूछने पर पता चला कि उत्तराखण्ड का एक प्रसिद्ध पर अति दुर्गम योगाश्रम है।

भोलानाथ और हरिपद के ज्ञानगंज में ८–१० दिन रहने के बाद पूज्यपाद नीमानन्द स्वामी अपने गुरुदेव श्री श्रीमद् महातपाः के निकट इन लोगों को ले गये और इनका परिचय दिया। सुना जाता है कि महातपाजी का वय उन दिनों १२०० वर्ष के ऊपर था। वे एक शक्तिशाली महायोगी पुरुष हैं। इनका कोई आश्रम नहीं है। तिब्बत में वे जहाँ रहते हैं, वहाँ एक गुफा है। उसमें राजराजेश्वरी देवी की पाषाण मूर्त्ति स्थापित है, इसीलिए उसे 'राजराजेश्वरी मठ' कहा जाता है। महर्षि महातपा अधिकांश समय यहीं रहते हैं। कभी-कभी योगाश्रम में आते

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हैं। कभी-कभी अपनी गुरुमाता क्षेपामाई के यहाँ मनोहर तीर्थ जाते हैं। महर्षि साधारण तौर पर बातचीत नहीं करते। सर्वदा अपने भाव में विलीन रहते हैं। बाह्य जगत् से कोई सम्पर्क नहीं रखते। उनका प्रधान शिष्य श्री श्रीमद् भृगुराम परमहंस देव इन सभी मठों के अधिष्ठाता और कार्यकर्ता हैं। वे परिदर्शक, नियामक, परीक्षक आदि सभी कुछ हैं।

परमहंस, श्यामानन्द और ज्ञानानन्द इन्हीं भृगुराम स्वामी के गुरु-भ्राता हैं, पर योगैश्वर्य में भृगुराम स्वामी एकमेवाद्वितीयम् हैं।

महर्षि महातपा ने भोलानाथ के मस्तक को स्पर्श कर शक्ति संचार किया, बीज मंत्र दिया, दीक्षा देकर शिष्य के रूप में ग्रहण किया। आज भोलानाथ का जीवन सार्थक हुआ। पागल कुत्ते के काटने से एक दिन जिसके जीवन का अन्तिमकाल आ गया था, आज भारत के एक महान सिद्ध महापुरुष के अनुग्रह से उनके सामने चिदानन्दमय अनन्त जीवन का द्वार खुल गया। अमरता का पथ प्रकाशमान हुआ।

परमहंस श्यामानन्द से भोलानाथ सूर्य-विज्ञान और परमहंस भृगुराम स्वामी से योग सीखते रहे। कई वर्षों तक अक्लान्त अध्यवसाय, असीम धैर्य और विपुल परिश्रम करने के बाद भोलानाथ ने विज्ञान और योग विद्या में पारदर्शिता अर्जित किया।

'विशिष्ट ज्ञान' ही विज्ञान शब्द का अर्थ है। तथाकथित जड़ और चेतन दोनों ही विज्ञान के विषय हैं। सूर्य इसका केन्द्रस्वरूप और प्रधान आश्रय है, इसलिए इसे सूर्य विज्ञान कहा जाता है। शास्त्रों में है कि एक ऐसा पदार्थ है जिसका ज्ञान प्राप्त कर लेने पर सभी विषयों के विज्ञान की जानकारी हो जाती है। श्रुति का यह अनुशासन ब्रह्म-विज्ञान को अवलम्बन कर प्रवृत्त हुआ है। अब सवाल यह है कि उस विज्ञान का स्वरूप क्या है, किस उपाय से कार्यक्षेत्र में उपयोग किया जा सकता है, इसे जिसने विशेष रूप से अनुसन्धान किया है, वे यह जानते हैं कि सूर्य ही सभी प्रकार के विज्ञान का मूल स्तम्भ है। सृष्टि, स्थिति, संहार; कहने का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मतलब जागतिक और व्यावहारिक सभी घटनाएँ सूर्य के आधीन हैं। इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति और क्रिया-शक्ति का प्रसार सूर्य से हो रहा है। सिर्फ यही नहीं, सूर्य ही देवयान-मार्ग का लक्ष्यस्वरूप है। अगर इसे मुक्तिद्वार कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। विशुद्ध आत्मज्ञान, स्वरूपोलब्धि के लिए सौरतत्त्व का सहारा लेना ही पड़ेगा। अतएव योग का जो चरम उद्देश्य है, विज्ञान का भी वही है। सूक्ष्म रूप से विवेचना करने पर समझ में आता है कि विज्ञान भी एक प्रकार का महायोग है और जिसे हम योग समझते हुए व्याख्या करते हैं, वह भी मूलतः विज्ञान के अलावा कुछ नहीं है। केवल प्रणाली का अन्तर है। फलस्वरूप साधक के लिए दोनों ही समभाव से आवश्यक हैं। योगमार्ग में विज्ञान और विज्ञानमार्ग में योग परम सहायक हैं।

सूर्य-विज्ञान को साध लेने पर अन्यान्य विज्ञान जो कि उसका अंग मात्र होता है, सहज ही सध जाता है। योगशास्त्र में सर्वज्ञातृत्व तथा सर्व-भावाधिष्ठातृत्व नामक विशिष्ट सिद्धियाँ जिस प्रकार सभी खण्ड सिद्धियों का चरम उत्कर्ष हैं, ठीक उसी प्रकार विज्ञान के क्षेत्र में सौर-विज्ञान की तद्रूप प्रधानता है। चन्द्रविज्ञान, नक्षत्रविज्ञान, वायुविज्ञान, स्वरविज्ञान, देवविज्ञान आदि सौरविज्ञान के अन्तर्गत खण्ड-विज्ञान मात्र हैं।

भोलानाथ अपने अनन्य असाधारण प्रतिभा के माध्यम से योग और विज्ञान दोनों ही क्षेत्र में समभाव से प्रवीणता प्राप्त कर चुके थे। प्राचीन ऋषियों में शिक्षा का जो उत्कर्ष था, उसे उन्होंने गुरुकृपा और स्वकीय अध्यवसाय के आधार पर प्राप्त किया था। प्राकृतिक शक्तिमाला को स्वकीय इच्छा से वशवर्त्तिनी करने का अधिकार उन्होंने प्राप्त किया। लक्ष्य या अपने में किसी प्रकार का आवरण नहीं रखा। केवल शास्त्र वाक्य सुनकर धर्म-जीवन प्राप्त नहीं होता। शास्त्रवाक्य आर्य होने, एक हिसाब से अभ्रान्त होने पर भी पूर्णज्ञान प्रसव कर नहीं पाता। केवल वाक्य से वस्तु-विषयक प्रत्यक्ष ज्ञान का जन्म नहीं होता और बिना प्रत्यक्ष के आव-

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रण भंग नहीं होता। गुरु का उपदेश अवलम्बन करते हुए वे धैर्य, श्रद्धा, संयम और अध्यवसाय के साथ अक्लान्त भाव से तपस्या करते रहे। उन्होंने जिस गम्भीर सत्य को हृदय के अन्तर्देश में प्राप्त किया था जिस संशयरहित परिपूर्ण विज्ञान-तत्त्व पर अधिकार जमा चुके थे वह केवल ग्रन्थपाठ के माध्यम से संभव नहीं होता।

ब्रह्मचर्य के द्वादश वर्ष कठिन परिश्रम करते हुए वे साधना करते रहे।

ब्रह्मचर्य अवस्था पार करने के बाद भोलानाथ मठ के नियमानुसार दण्ड-ग्रहण कर दण्डी-अवस्था में उन्नीत हुए। चार साल तक दण्ड धारण करने के बाद फिर दण्ड त्याग कर संन्यास ग्रहण किया था। संन्यास काल में चार वर्ष तक वहीं थे। इन आठ वर्षों में वे भारत के अनेक तीर्थस्थानों में भ्रमण करते रहे और नाना प्रकार के ज्ञान अर्जन करते रहे। तपस्या की बात ही अलग है। उनका समस्त जीवन उत्कट तपस्या का उज्ज्वल उदाहरण है। उनकी जितनी लोकोत्तर विभूतियाँ आजकल सभी लोगों को चकित और स्तम्भित करती हैं, उनके समक्ष स्थूल तत्त्व के अतीत एक विराट शक्ति की सत्ता का प्रतिपादन कर रही हैं, इनमें ब्रह्मचर्य के बाद से ही उन सभी सिद्धियों का स्फुरण आरम्भ हो गया था। दण्डी और संन्यासी अवस्था में ही उनमें अनेक विशिष्ट विकास संघटित हो गये थे।

योगविभूति के सम्बन्ध में लोगों में विभिन्न धारणाएँ हैं। बिना आत्मज्ञान के उन्मेष हुए प्रकृत-योग-विभूति प्रकट नहीं होती। भगवान शंकराचार्य ने अपने सुप्रसिद्ध 'दक्षिणामूर्ति स्तोत्र' में सर्वात्मभाव का महा-विभूति के रूप में वर्णन किया है। श्री सुरेश्वाचार्य ने अपनी व्याख्या में स्पष्ट रूप से कहा है कि पुरुष के धावमान होने पर जैसे छाया उसका अनुसरण करती है, ठीक उसी प्रकार आत्मा या ईश्वर का स्वरूप उपलब्ध होने पर ऐश्वर्य स्वभावतः प्रकट होता है—आत्मा से ऐश्वर्य की पृथक सत्ता

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नहीं है। ब्रह्मचर्य अवस्था में विन्दु का शोधन और स्थिरता का संपादन होता है। वही जीव देह का सत्त्व है। उसी के शुद्ध और स्थिर होने पर अर्थात् साधन-शक्ति से देह-शुद्धि होने पर—सभी सिद्धियाँ अपने आप आ जाती हैं। इसके लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता। भोलानाथ इस अवस्था में योगियों की वांछित अति-दुर्लभ और दुष्कर नाभि-धौति-क्रिया के ज्ञाता हो गये थे।

किरातधौति नाभि धौति की उन्नत स्थिति है। मलमल या अन्य किसी शुद्ध वस्त्र का, २५–३० हाथ लम्बा टुकड़ा लेकर उसे नाभि से मुँह तक यथाविधि अणुलोम-विलोम प्रणाली के अनुसार बार-बार चलाना पड़ता है। जब तक धौति-कार्य का अच्छी तरह अभ्यास नहीं हो जाता तब तक 'चात्वर' या 'आकाश गमन' की क्षमता प्राप्त नहीं होती। लम्बे अर्से तक प्रयत्न करने पर कुम्भक के द्वारा शून्य में जाया जा सकता है, पर उत्थित-अवस्था में बातचीत नहीं की जा सकती। यहाँ तक कि कुछ लोग बाह्य-ज्ञान खो बैठते हैं। ऐसा भी होता है कि ऊर्ध्व वायुमण्डल में चलते रहने से समय-समय पर वायु का आघात लगते ही गिर जाने का भय बना रहता है। नाभिधौति में परिपक्वता आ जाने पर शरीर शून्य-मय हो जाता है। समग्र शरीर को संकुचित और प्रसारित करने की क्षमता का विकास होता है तब एक लोमकूप द्वार से एक वृहद् पदार्थ भी प्रवेश कराया जा सकता है। शरीर के किसी भी अंश को अपनी इच्छा-नुसार क्षुद्र या वृहद् किया जा सकता है। किरात-धौति के द्वारा शरीर शुद्ध करने के बाद उसके किसी भी अंग में वायु पूर्ण कर लेने का नाम ही है—किरात-कुम्भक। इस कुम्भक के द्वारा शून्य में उठने पर बातें करने में कोई बाधा नहीं आती। यहाँ तक कि बातचीत करते हुए ऊपर उठा जा सकता है। बाह्य ज्ञान रहता है, पर बाह्य विषयों के प्रति निर्लिप्तता उत्पन्न होती है। नासिकादि द्वारा वायु ग्रहण करने पर ऐसा नहीं होता। परकाया प्रवेश आदि के समय साधारण कुम्भक की अपेक्षा किरात कुम्भक अधिक उपयोगी होता है। किरात कुम्भक के द्वारा शरीर में शुद्ध वायु

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भर लिया जा सकता है तब कुछ भी अभिभूत नहीं कर पाता। अति प्रबल और शक्तिशाली तेज राशि के दर्शन या संस्पर्श से उस वक्त ज्ञान नष्ट नहीं होता।

संन्यासाश्रम के अवसान के बाद परमाराध्य गुरुदेव के आदेश से भोलानाथ चिकित्सा कार्य करने लगे।

पहले वे योग-ज्योतिष के द्वारा रोगी के बारे में सारी जानकारी प्राप्त कर लेते थे। अगर उन्हें यह मालूम हो जाता कि रोग असाध्य है यानी मृत्यु अवश्य होगी, तो उस रोगी के चिकित्सा की जिम्मेदारी नहीं लेते थे। रोगी भी समझ जाता था कि यह रोग अब अच्छा होने वाला नहीं है। फलतः उनकी दवा से किसी रोगी की मृत्यु नहीं होती थी।

योग-ज्योतिषी की क्षमता असाधारण होती है। किसी व्यक्ति को देखते ही, यहाँ तक कि बिना देखे भी उसके जन्म का मुहूर्त्त निकालकर, जन्मकालीन ग्रहसंस्थान की गणना की जा सकती है, उसके भूत-भविष्य के बारे में, अति सूक्ष्म रूप में विचार किया जा सकता है। योगीगण नवजात के भूमिष्ठ होने का समय ग्रहण न कर गर्भाधान मुहूर्त्त को स्वीकार करते हैं। कारण जिस क्षण में पितृवीर्य और मातृरजः परस्पर संयुक्त होकर प्राकृतिक विज्ञान से सन्निकर्ष घटकर नियमानुसार विन्दु की उत्पत्ति होती है वास्तव में वही जन्मक्षण होता है।

ज्योतिषी और चिकित्सा के अलावा स्वरोदय आदि विज्ञान में उनकी असाधारण दक्षता थी। अवसर के समय वे गुरुदेव के आदेशानुसार इसका प्रयोग करते थे।

तीर्थस्वामी अवस्था के बाद बाबाजी में अद्भुत आध्यात्मिक उत्कर्ष देखकर गुरुदेव अत्यन्त प्रसन्न हो उठे और उन्हें 'परमहंस' की उपाधि से विभूषित किया। दूध और पानी एक में मिले रहने पर जिस प्रकार हंस उन्हें अलग करते हुए केवल दूध ग्रहण करता है, ठीक उसी प्रकार आत्मा-अनात्मा का विवेक साधना के माध्यम से आत्माभिनिवेश कर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लेने पर योगी हंस बन जाता है। इसके बाद परमात्मा की उपलब्धि होने पर हंसभाव के ऊपर परमहंस भाव का उन्मेष होता है। परमहंस भाव द्वन्द्वातीत अवस्था है। इस अवस्था में जागतिक द्वन्द्वों का उपशम होता है, निर्द्वन्द्व अद्वय पद की प्राप्ति होती है। हंस अवस्था में ही प्रकृति के ऊपर स्वामित्व प्रतिष्ठित हो जाता है। लेकिन यह स्थायी नहीं होता। आत्माभिमान पूर्ण रूप में विगलित हो जाने पर जब जगत्-स्वामी के साथ अपना योग प्रतिष्ठित होता है, अर्थात् परमहंसावस्था प्राप्त करने पर, तब प्रकृति अपने वश में हो जाती है, यहाँ तक कि अपने में अंगीभूत हो जाती है।

योगलब्ध अलौकिक-शक्ति का प्रयोग लौकिक-कार्य के लिए करना निषिद्ध है। देह विकारशील है, उसकी व्याधि को दूर करने के लिए इच्छा-शक्ति का प्रयोग अवैध है। इच्छा-शक्ति के लिए कोई कार्य असाध्य नहीं है। सृष्टि और संहार तक मुहूर्त्त में इसके द्वारा सम्भव होता है। योगी की इच्छा को बाधा दे सके ऐसी कोई ताकत त्रिभुवन में किसी के पास नहीं है। रोगी के रोग का प्रतिकार करना इच्छा-शक्ति के लिए निमेष मात्र भी नहीं है। लेकिन इन सब कार्यों के लिए इच्छा-शक्ति का प्रयोग करना उचित नहीं है।

जो विज्ञान विज्ञान-जगत का शिरोमणि है, जिस पर अधिकार हो जाने पर जीव सभी प्रकार के अभाव से छुटकारा पा सकता है, अपने जन्मकालीन उपादान यानी व्यक्तिगत प्रकृति में आमूल परिवर्तन करते हुए शुद्ध भाव उत्पन्न कर सकता है, जो भारतवर्ष की अपनी चीज होते हुए अब लुप्त हो रही है, जिसे दुष्कर क्लेश सहते हुए दुर्गम पार्वत्य प्रदेशों से प्राप्त करना पड़ता है और लम्बे अर्से तक साधना द्वारा सिद्ध करना पड़ता है, वह ज्ञान उनके साथ ही पुनः लुप्त हो जाय—ऐसी इच्छा उनकी नहीं थी। वे इसे योग्य पात्र को दे जाने की इच्छा प्रकट करते रहे। इस विद्या के प्रभाव से जगत् का कल्याण हो, यही उनकी एकमात्र

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इच्छा थी। इस विज्ञान की शक्ति असाधारण है। यहाँ तक कि अगर अपरिसीम कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

बाबाजी का कहना था कि योगशास्त्र में ऐसी किसी शक्ति का वर्णन नहीं है जिसे सुगम उपाय से इस विज्ञान में प्राप्त नहीं किया जा सकता। पतंजलि-दर्शन के विभूतिपाद में, शिव-पुराणादि पौराणिक ग्रन्थों तंत्रशास्त्र, बौद्ध और जैन शास्त्रों के योग विषयवाले ग्रन्थों में, सूफी और क्रिश्चियन योगियों के ग्रन्थों में, ऐसी किसी घटना का उल्लेख नहीं है जो सूर्य विज्ञानविदों के लिए अलभ्य हो।

तत्त्ववस्तु की सामान्य रूप में जानकारी प्राप्त कर लेने का ही नाम ज्ञान है और उसकी अशेष-विशेष की जानकारी प्राप्त कर उसे सम्पूर्ण रूप से अपने अधीन कर लेने का नाम है—विज्ञान। ज्ञान के द्वारा परमात्मा की तूरीय-भूमि तक प्राप्त की जा सकती है। लेकिन तूर्य्यातीत महाशक्ति का स्वरूप समझने के लिए, जो सभी प्रकार के तत्त्वों के अतीत होकर परमतत्त्व हैं, उन्हें पकड़ने के लिए, विज्ञान के अलावा अन्य कोई उपाय नहीं है। ज्ञानी का चित्त और महामाया के मायाचक्र में पतित होकर मोहाचक्र उभचुभ हो सकता है, ऐसी सम्भावना है; पर ज्ञान जब विज्ञान में परिणत हो जाता है जब एक ओर शुद्ध-भक्ति और दूसरी ओर शुद्ध-कृपा उदित होकर महाशक्ति के सुशीतल अंक में भक्त को आकर्षित कर लेती है, तब पतन की आशंका नहीं रहती।

शिशु जब माँ का हाथ पकड़कर चलता है, तब गिर जाने की सम्भावना रहती है। कारण दुर्बल शिशु की क्लान्त मुट्ठी स्खलित होने में देर नहीं लगती। लेकिन जननी जब स्वयं शिशु का हाथ पकड़कर उसे चलाती है, तब डर की कोई बात नहीं रहती। ज्ञान-विज्ञान का परस्पर क्या सम्बन्ध है? इससे समझ लेना चाहिए। विज्ञान के उज्ज्वल आलोक में ज्ञान और अज्ञान समसूत्र होकर दोनों ही निष्प्रभ हो जाते हैं। द्वैत-अद्वैत, नित्य और अनित्य, गति और स्थिति का समभाव से दर्शन करने के लिए विज्ञान का आश्रय लेना पड़ेगा।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञान और विज्ञान के साथ सवितृतत्त्व का घनिष्ठ सम्बन्ध है। सूर्य में संयम करने पर जो भुवन-ज्ञान होता है, सभी पदार्थों का ज्ञान-लाभ होता है, यह बात योग-शास्त्र में है। इसका एक मात्र कारण यह है कि सूर्य ही सभी पदार्थों का प्रसवकर्त्ता, मूलस्तम्भ और केन्द्र स्वरूप है। सूर्य के आलोक से ही परिदृष्यमान जगत की सभी वस्तुएँ प्रकाशमान होती हैं। चाहे जगत् हो, चाहे स्वप्न हो, सर्वदा और सर्वत्र सृष्टि के मध्य सूय ही एकमात्र प्रकाशक है। सूर्य से जो तेजधारा चारों ओर विक्षिप्त होकर छिटक रही है, अगर उसे संयन कर एक मुख में प्रवाहित किया जाय, तो समग्र संसार ज्ञानहीन हो जायगा। बाह्यज्ञान-भेदज्ञान सब कुछ लुप्त हो जायगा। सूर्य-रश्मि के विक्षेप से जागतिक ज्ञान का उद्भव होता है। फलस्वरूप रश्मि के संघात प्रतिष्ठित होंगे, तब जीव में निक्षिप्त ज्ञान निवृत होकर एकाग्रज्ञान उदय होगा। इसके बाद उक्त संहत-रश्मि, वहीं केन्द्रीकृत घनीभूत प्रभाराशि जब सूर्यमण्डल को छोड़कर ऊपर चढ़तीं रहेगी तब प्रणव के प्रकाश में परमतत्त्व प्रकाशमान होता रहेगा। प्रबुद्धा कुण्डलिनी शक्ति आहत सर्पिणी की भाँति घोर नाद करती हुई ब्रह्मपथ की ओर महाव्योम राज्य को भेद करती हुई, व्योमातीत महाशक्ति की ओर अग्रसर होती रहेगी। यही विज्ञान का आत्मप्रकाश है। जो कुछ वृहद् ब्रह्माण्ड में होता है, वही क्षुद्र शरीररूपी पिण्ड में होता रहता है।

सूर्य के सहारे ज्ञान-विज्ञान दोनों का ही विकास होता है। सूर्यलोक में देह-मध्यस्थ इड़ामार्ग संचारी चन्द्र प्रकट होकर स्निग्ध अमृतधारा से समस्त देह को आप्यायित करता रहता है। पिंगलावर्ती सूर्य जब क्रिया-कौशल से प्रबल तेजोमय रूप धारण करता है, तब उसके संस्पर्श से मध्यशक्ति कुछ परिमाण में उत्तेजित होकर वाम पार्श्व स्थित इड़ामार्ग में संचरणशील चन्द्रमा को उग्रभाव में परिणत कर देता है। क्रमशः दक्षिण-शक्ति, मध्यशक्ति और वामशक्ति तीनों समभाव में उत्तेजित हो उठती है, तब तीनों शक्तियाँ समष्टिभूत होकर मध्यस्थ ब्रह्मविन्दु को चोट करती हुई जगा देती हैं। यही है—कुण्डलिनी जागरण या मंत्र चैतन्य

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सम्पादन। इसलिए सूर्य की प्रबलता से चन्द्र-सूर्य का साम्य स्थापित होता है। अन्त में सुषम्ना के साथ अभेद सम्पन्न होता है। जब ये तीनों स्रोत एक साथ पतित होकर सामंजस्य प्राप्त करते हैं, तब स्वभावतः अद्वैत-मार्ग उन्मुक्त होता है और उसी मुक्त प्रकाश में तत्त्व वस्तु का दर्शन होता है। एकाग्र भूमि के अवसान पर निरोध के अधीन न होने, चित्तवृत्ति की ऐकान्तिक निवृत्ति न होने से स्वयं प्रकाश-विज्ञान का स्फुरण संभव नहीं होता। महाशक्ति के राज्य में प्रवेश करने के लिए एकाग्र-भूमि के ज्ञान को निरुद्ध करते हुए परिपूर्ण विज्ञान-शक्ति का सहारा लेना आवश्यक है।

तंत्र के मातृकातत्त्व और वर्णतत्त्व का गहरा आध्ययन करने के बाद हम देखते हैं कि उसमें सूर्य-विज्ञान का ही रहस्य निहित है। जगत की सृष्टि, स्थिति और संहार सभी विषयों में मातृकामण्डल की क्रिया तंत्र-शास्त्र में प्रतिपादित हुई है। षड्द्वार विचार प्रसंग में एक ओर पद, मंत्र और वर्ण तथा दूसरी ओर भुवन, तत्त्व और कला का परस्पर सम्बन्ध निरूपण करने पर यह समझ में आता है कि वर्ण और कला का अच्छेद सम्पर्क है। शिव-शक्ति की तरह वाक् और अर्थ का नित्य सम्बन्ध है। वस्तुतः अकारादि वर्णमाला शुद्धावस्था में विक्षुब्ध सवितृ विन्दु से निःसृत नादमय राशिचक्र के अलावा और कुछ नहीं है। शब्द ब्रह्मरूप हिरण्य-गर्भ या सविता के केन्द्र में, व्योम में एक या अखण्ड रहते हुए, बाह्य रूप में, उनचास वायु के कम्पन में उनचास वर्ण या रश्मि के रूप में बहिर्गत हो रहा है। यही पचासों वर्ण व्यष्टि या समष्टि रूप में अकारादिक्षकारान्त वर्णमाला या अक्षरमाला रूप में, मूलाधार से आज्ञाचक्र तक छह चक्रों के बीच में प्रकाशमान हो रहे हैं। इन वर्ण या नादों के तत्त्वों को जबतक अपने अधीन नहीं कर लिया जाता, तबतक ब्रह्मविद्या पर अधिकार नहीं होता। क्योंकि 'शब्दब्रह्मनि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति'। शब्दों से जगत की सृष्टि और शब्दों में ही लय—यहाँ तक कि सृष्टि और लय के अतीत, संकोच, प्रसारण, ऊर्ध्व स्थित अच्युत ब्रह्मविन्दु तक जाने के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लिए मंत्ररूपी शब्द ही कर्णधार है। देवताओं का शरीर मंत्रमय ज्योति के द्वारा गठित है।

यंत्रादि का स्वरूप भी इसी प्रकार है। शुद्ध विचार विद्या के द्वारा आत्म-संस्कार करने के बाद इस विद्याधाम का अधिष्ठाता बन जाने पर अर्थात् मंत्रेश्वर, मंत्रमहेश्वर आदि पद प्राप्त कर लेने पर वर्णमाला पर अधिकार हो जाता है, तब सभी मंत्र और देवता किंकरवत् उसके अधीन हो जाते हैं। वे गुरुपद वाच्य सदाशिवास्था प्राप्त हो जाते हैं। प्रणव और व्याहृति के रहस्य से जो लोग परिचित हैं, वे लोग जानते हैं कि वेदों में भी इस विन्दु और नादों की साधना, देशोचित और कालोचित, नाना आकारों में, अधिकार-भेद के अनुसार उपदिष्ट हुआ है। क्रिश्चियन मत, प्राचीन और मध्ययुग के पाश्चात्य योग सिद्धान्त, सूफीमत तथा अन्य सभी देशों की अतरंग प्रणालियों की खोज करने पर ज्ञात होता है कि सर्वत्र एक ही विज्ञान का प्रभाव है। अनाधिकारी लोग इसे नहीं समझ पाते और स्थूल में इसे ग्रहण करते हैं।

प्रकृति के सभी व्यापार में रंगों का खेल है। जो निर्लिप्त दर्शक होते हैं, वह तटस्थ होकर देखते हैं कि एक सर्वव्यापक शुभसत्त्वमय वर्ण पर नील, रक्तादि अनन्त के मिश्र और अमिश्र वर्णों के घात-प्रतिघात चल रहे हैं। फलस्वरूप पानी के बुलबुले की तरह विश्वरूप इन्द्रजाल की रचना हो रही है, अज्ञानी के रंजित नेत्रों में इन्द्रजाल या मायिक घटना सत्य के रूप में प्रकट हो रही है जब तक आँखों से वर्ण का आवेश दूर नहीं होगा, जबतक मोह-निवृत्ति नहीं होगी, तबतक मिथ्या-दर्शन दूर नहीं होगा। जिस शुभ्र भित्ति के ऊपर माया-चक्र क्रीड़ा कर रहा है, उसे यथार्थ रूप से न देख पाने पर, इस विचित्र जगत्-दर्शन में मोहित होना ही पड़ेगा। वैचित्र्य में अन्तःस्थित उक्त व्यापक और अखण्ड ऐक्यसूत्र की खोज के लिए चित्त की और तत्सहकारी इन्द्रियों की मार्जना आवश्यक है, जितने भासमानात्मक चित्र-विचित्र वर्णराशियाँ अन्तर दर्पण को आच्छन्न

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर रखी हैं, उन्हें विच्छुरित करते हुए, उसके स्वाभाविक स्वच्छता को प्रस्फुटित करना होगा। चित्त स्वयं शुभ्र होने पर, शुभ्रसत्त्वमय जगदाधार को सहज ही देख लेता है, तब मायावी की माया समझने में देर नहीं लगती।

विज्ञान का उद्देश्य है, इस विराट इन्द्रजाल के मूलसूत्र को खोजना। वर्णमाला के संयोग और वियोग से ही जगत की सारी बातें संघटित हो रही हैं। सृष्टि और प्रलय इस संयोग-वियोग के ही अवश्यम्भावी परिणाम हैं। वैज्ञानिक कार्यमात्र के उपादानों और निमित्त के स्वरूप विशिष्ट रूप से अवगत होकर, विधाता के कला-कौशल को साक्षात भाव में समझ सकते हैं। यहाँ तक कि किंचित परिमाण में विधाता के ऐश्वर्य को भी वे आयत्त कर सकते हैं। सिर्फ यही नहीं, इच्छा होने पर विधाता को भी अतिक्रम करते हुए सर्वमूलभूता अनादि महाशक्ति के श्रीचरणों तक उपस्थित हो सकते हैं। विश्वामित्र का जगत्-निर्माण, भण्डासुर का नवीन और वृहत्तर ब्रह्माण्ड रचना, साधन-राज्य के इतिहास में अप्रसिद्ध घटना नहीं है।

ग्रन्थ-अध्ययन के लिए जैसे पहले वर्ण-परिचय आवश्यक है, इसके बाद वर्ण-संयोजन प्रणाली सीखना पड़ता है, उसी प्रकार विज्ञान-शिक्षा की पहली सीढ़ी विशुद्ध रश्मियों के साथ परिचय प्राप्त करना है। सूर्य-रश्मि विश्लेषण करने के बाद आवश्यकतानुसार शुद्ध वर्णों को पहचानते हुए उन्हें बाहर करने और पकड़ लेने पर, भिन्न-भिन्न रश्मियों की परस्पर मिलन-पद्धति को समझा जा सकता है। वेदान्त शास्त्र में पंचीकरण और उपनिषद् आदि में त्रिवृत्करण प्रणालियों का उल्लेख देखने में आता है। लेकिन इसे विज्ञान के क्रियाकुशल मर्मज्ञों के अलावा अन्य कोई समझ नहीं पाता। यहाँ यह बताना अनावश्यक है कि यह रश्मि संयोजन की एक अवस्था मात्र है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञानगंज-रहस्य

सिद्धाश्रम साधारण लौकिक आश्रमों की तरह नहीं है। यह सामान्य लोगों को दिखाई नहीं देता। तिब्बती लोग, परिव्राजक या पर्यटकों को इसका पता नहीं चलता। इसी वजह से कोई संन्यासी (भारतीय) या पर्यटक (विदेशी) इस ज्ञानगंज की सिद्ध भूमि से परिचित नहीं है और उसके बारे में विशेष विवरण पाना संभव नहीं है।

स्थूल भूमि में अवस्थित होने पर भी वह भौतिक स्थान नहीं है। वास्तव में वह जिस प्रकार स्थूल नहीं है, ठीक उसी प्रकार सूक्ष्म भी नहीं है। दूसरी ओर स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही है। सिद्ध महापुरुषों के दर्शन कर लेने के बाद अदृश्य हो जाता है, ऐसी है सिद्धाश्रम की स्थिति। स्थूल दृष्टि से स्थूल है, तो सूक्ष्म दृष्टि से सूक्ष्म है। इसीलिए समन्वय युक्त है। अनेक लोग या व्यक्ति स्थूल दृष्टि से इसकी खोज में जाते हैं और व्यर्थ का चक्कर काटकर वापस आते हैं। आश्रम के अधिकारियों की आज्ञा के बिना वहाँ जाना असम्भव है। दर्शन करना तो दूर की बात है।

स्वामीजी को जबानी मैं सुन चुका हूँ कि वहाँ अनेक योगी, वैज्ञानिक, भैरवी-भैरव, शिक्षार्थी और आचार्य हैं। इस आश्रम के साथ सम्पर्क हो जाने के बाद लौकिक जगत में रहते हुए इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है। इसके अलावा वहाँ से विभिन्न वस्तु भेजी जाती है और यहाँ से प्रयोजन तथा साध्य सामर्थ्यानुयायी भेजा जा सकता है, ठीक उसी प्रकार माँगा भी जा सकता है। लेकिन हम लोगों के लौकिक जीवन में माँगना और पाना के भीतर अनेक भूलें रहती हैं। सच तो यह है कि हम लोग वास्तविक ढंग से न माँगना जानते हैं और न माँग पाते हैं। लेकिन दयामय सद्गुरु हम लोगों का ध्यान रखते हुए सभी विषयों में महाकृपा और महाकरुणा करते रहते हैं। इसके साथ ही लक्ष्य-पथ पर बढ़ाते हैं।

सिद्धाश्रम के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क

बाबा कहा करते थे कि ज्ञानगंज के साथ कहीं से भी निरन्तर सम्पर्क

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्थापित किया जा सकता है। यह सूर्य-विज्ञान से सम्भव है। दवा या किसी प्रकार का यंत्रादि वहाँ से मँगाया जा सकता है। यहाँ तक कि कुमारी या माताओं के लिए कपड़ा और अन्य सामग्रियाँ उपयोग के लिए ज्ञानगंज के आश्रमवासी उनकी इच्छानुसार भेज देते हैं।

इस बारे में बाबा के घनिष्ठ शिष्य और भक्त सभी बातें जानते हैं। लेकिन उसका रहस्य जानने में अक्षम थे। एक दिन मेरे सामने एक घटना हुई थी। मेरे एक गुरुभाई श्री सुरेन्द्रनाथ मुखर्जी ज्ञानगंज की कुमारियों के लिए ५० रंगीन साड़ियाँ लाये। छोटी-बड़ी साड़ियों का पार्सल बनाकर ज्ञानगंज भेजने के लिए पूजाघर में रख आये।

मैंने बाबा से पूछा—"क्या आप इन साड़ियों को ज्ञानगंज भेजेंगे ?"

बाबा ने कहा—"हाँ।"

मुझे अपार कौतूहल हुआ। मैंने पूछा—"कैसे भेजेंगे ?"

उन्होंने कहा —"इसी रूप में भेज दूँगा। तुम लोग जरा बैठो तब समझ पाओगे।" इतना कहने के बाद उन्होंने पूजाघर का दरवाजा बन्द कर दिया।

आधा घण्टा बाद दरवाजा खुलने के बाद हम लोगों ने भीतर प्रवेश किया। उन्होंने कहा—"देखो, कपड़ों के सभी बण्डलों को ज्ञानगंज भेज दिया।"

हम लोगों ने साश्चर्य देखा—घर के भीतर कपड़ों के सभी बण्डल गायब थे।

काशी में मलदहिया स्थित नवनिर्मित विशुद्धानन्द कानन आश्रम में विज्ञान मन्दिर या सूर्य मन्दिर है। वहाँ दोतल्ले पर बैठे किसी उत्सव के उपलक्ष्य में समागत शिष्यों को सूर्य-विज्ञान समझा रहे थे। ठीक इसी समय मेरे एक गुरुभाई, कलकत्ता निवासी श्री अक्षय कुमार दत्तगुप्त आये। इन्हें सूर्य-विज्ञान सीखने की बहुत दिनों से इच्छा है। उन्होंने बाबा से एक लेन्स देने की प्रार्थना की।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बाबा ने कहा—"लेन्स के लिए ज्ञानगंज से प्रार्थना करूँगा, शायद मिल भी जाय। अगर तुम्हारी तीव्र इच्छा हो, तो अभी लेन्स के लिए प्रार्थना करूँ।"

दत्तगुप्त ने कहा—"अगर इस समय मिल जाय, तो अच्छा हो। सब आपकी कृपा है।"

बाबा कुछ देर चुप रहे, फिर एक झटका दिया। उनके हाथ में एक लेन्स आ गया। उन्होंने कहा—"तुमने यही लेन्स माँगा था।" कहने के पश्चात् उन्होंने उक्त लेन्स उन्हें दे दिया।

सन् १९३१ ई० में मलदहिया स्थित विशुद्धानन्द कानन आश्रम में नवमुण्डी माँ* की प्रतिष्ठा हुई थी। नवमुण्डी गुहा के ऊपर बैठने के लिए एक छोटा सा कमरा बनवाया गया था। वहाँ एक आसन भी बनवाया गया था। इसका उद्देश्य यह था कि क्रियावान या क्रियाशील लोगों को लेकर बाबा उक्त आसन पर बैठेंगे।

इस नवमुण्डी की सजावट की जिम्मेदारी कई भक्तों को दी गयी थी। मेरे गुरुभाई डा० शोभाराम के जिम्मे सारी जिम्मेदारी दे दी गयी थी। फर्श पर बिछाने के लिए सिल्क के चार चादरों की जिम्मेदारी मुझे दी गयी थी जिसकी कीमत ८० रुपये थी। डाक्टर शोभाराम को दस-दस रुपये के आठ नोट लेकर देने के लिए मैं आश्रम में गया। उस समय बाबा विज्ञान भवन में, पूर्व की ओर बैठे थे। तीसरे पहर का वक्त था। एक दूसरे गुरुभाई बाबा की बगल में बैठे थे। वहाँ डा० शोभाराम भी थे। मेरी इच्छा हुई कि रुपयों का लिफाफा बाबा के हाथ में दे दूँ। बाद में बाबा इस लिफाफे को डा० शोभाराम को दे ही देंगे। यह सोचकर मैंने लिफाफा बाबा को दिया।

मेरी बगल में डा० शोभाराम बैठे थे। मैने कहा—"नवमुण्डी आसन के फर्श पर बिछाने के लिए चादरों के अस्सी रुपये हैं।"

---

*नवमुण्डा आसन—मनुष्य, बनमानुष, हाथी, शेर, बाघ, सियार, सजार, बिल्ली और सर्प के मस्तक।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बाबा ने कहा—"एक चादर की कीमत अस्सी रुपये ? इतनी महँगी ?"

डा० शोभाराम ने कहा—"२० रुपये की दर से चार चादरों का ८० रुपये भाव तय कर आया हूँ।"

बाबा ने कहा—"बड़े महँगे हैं। इतने चादर क्या होंगे ? एक काफी है।" इतना कहने के बाद दस-दस रुपये वाले दो नोट निकालकर शोभाराम को दिये। शेष रकम मुझे वापस करते हुए बोले—"रुपयों का अपव्यय नहीं करना चाहिए।"

मैंने कहा—"ये रुपये सत्कार्य के लिए ले आया था, अतएव वापस ले जाने की इच्छा नहीं है। अन्य किसी धार्मिक कार्य में लगा दीजिएगा।"

बाबा ने कहा—"ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि ज्ञानगंज से प्रतिवाद किया जायगा। अतएव ज्ञानगंज से आदेश और राय लेनी होगी।" इतना कहने के बाद वे भीतर गये और कुछ देर बाद वापस आकर बोले—"ठीक है, ये रुपये उमा भैरवी ज्ञानगंज के लिए ले जाँयगी।"

मैंने कहा— 'तब इन रुपयों को आप ही दे दीजिएगा।"

बाबा ने कहा—"ना-ना। मैं क्यों देने जाऊँगा ? स्वयं भैरवी माँ तुम्हारे हाथ से ले जायेंगी।"

जाड़े का दिन था। चादर ओढ़कर बैठा था। बाबा के आदेशानुसार रुपये के लिफाफे को मुट्ठी में कसकर पकड़े, चादर के नीचे छिपाये बैठा था। मैं उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करने लगा। इसके बाद मैंने बाबा से पूछा—"ये रुपये कितनी देर में भैरवी माता ले जायेंगी ?"

बाबा ने कहा—"अभी—तुरत।" इसके बाद बाबा ने मुझसे पूछा—'कुछ अनुभव हुआ ?"

मैंने कहा—"स्पन्दन के अलावा कुछ भी अनुभव नहीं हुआ।"

उन्होंने कहा—"जरा लिफाफा खोलकर देखो।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मैंने चद्दर के नीचे से लिफाफा बाहर निकाला। देखा—जैसा बन्द था, वैसा ही है, पर उसके भीतर रुपये नहीं हैं। लिफाफे में से सुगन्ध आ रही थी। इस लिफाफे को काफी दिनों तक सुरक्षित रख छोड़ा था।

लोकदृष्टि के बाद भी बाबा के साथ मेरा व्यवहार पूर्ववत था। उनके निकट शिष्य-अशिष्य, दोनों ही बराबर थे। भक्त तक उनके निकट अनुग्रह के पात्र थे। गुजरात के एक भक्त को एक विशिष्टता प्राप्त थी। बाबा का प्रत्यक्ष दर्शन न कर पाने पर भी वे बाबा के स्थूल शरीर रहते जिस प्रकार दर्शन कर पाते थे, बाबा के तिरोधान के बाद भी उसी प्रकार दर्शन कर लेते थे। यहाँ तक कि उनके घर में बाबा का अनेक बार आविर्भाव हुआ था। यही नहीं, बाबा के आशीर्वाद से उनके छोटे पुत्र का जन्म हुआ था। इस बालक ने बाबा का स्थूल शरीर में दर्शन और आशीर्वाद प्राप्त किया था। बाबा इस परिवार के प्रति अत्यन्त स्नेहशील थे।

इसी प्रकार बाबा के साथ श्रद्धा और भक्ति के प्रभाव से, सिद्धाश्रम के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित हुआ था। इस प्रकार की अनेक घटनाएँ अनेक जगह हुई हैं। अनेक परिवार के लोगों ने श्रद्धा और भक्ति के माध्यम से बाबा की इस प्रकार की लीलाएँ देखा है। मैंने गुरुदेव की लीलाओं का वर्णन 'विशुद्धानन्द प्रसंग' नामक पुस्तक के पाँचों खण्डों में किया है। फिर भी उसमें सम्पूर्ण लीलाओं का वर्णन पूरा नहीं कर सका हूँ। गुरुदेव की अनन्त लीलाओं का विस्तार के साथ उल्लेख करना असम्भव है। जितना सम्भव हो सकता है, उतना ही करूँगा।

ज्ञानगंज से काफी सामान मँगवाया करते थें। मैंने स्वयं इस तरह की क्रियाओं को देखा है। बाबाजी के गुरुदेव ज्ञानगंज के मनोहर तीर्थ में रहते थे। उनका नाम महातपा है। दीक्षा के समय उनसे एक बार बाबा की मुलाकात हुई थी। योग-शिक्षा गुरुभाई भृगुराम परमहंस से और विज्ञान सम्बन्धी शिक्षा गुरुभाई ज्ञानानन्द स्वामी से प्राप्त करते रहे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नाभिकमल-दर्शन

एक बार बाबा काशी के हनुमान घाट स्थित पुराने आश्रम में मौजूद थे। सबेरे आठ बजे के समय हम लोग ४--५ व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे। हम लोग पौराणिक विषयों पर वार्तालाप कर रहे थे। सहसा एक व्यक्ति कह उठा—"पुराणों में ऐसी अनेक अलौकिक और अविश्वसनीय घटनाओं का उल्लेख है जो विश्वसनीय नहीं हैं। उदाहरण के लिए विष्णु के नाभि-कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति। यह सब बातें काल्पनिक हैं। रूपक के अलावा और कुछ नहीं।"

इस बात को सुनकर बाबा ने कहा—"जो बात या वस्तु तुम लोगों की बुद्धि के परे है या अगोचर है, उसे अस्वीकार मत करना। तुम लोगों के ज्ञान और दर्शन के बाहर अनेक वस्तुएँ हैं। सत्य वस्तु सत्य बना रहता है। नाभि-कमल था और आज भी है।"

उक्त व्यक्ति ने कहा—"नाभि-कमल मैंने कभी नहीं देखा और किसी ने देखा है, ऐसा कभी सुना नहीं। यहाँ तक कि कोई वैज्ञानिक या डाक्टर इसे स्वीकार नहीं करेगा और न मानेगा।"

बाबा ने कहा—"तुम्हारे डाक्टर जानते ही कितना हैं? देहतत्त्व अत्यन्त गम्भीर है। अगर तुम लोग नाभि-कमल देखना चाहो, तो मैं दिखा सकता हूँ।"

इतना कहने के बाद बाबा ने मसनद के सहारे लेटकर नाभि-प्रदेश को खोल दिया। इसके बाद नाभि पर हाथ फेरने लगे। पहले नाभि-प्रदेश पर एक खाई बनी, इसके बाद रक्तिम वर्ण हुआ। कुछ देर बाद उसमें डेढ़ फुट लम्बा सुगन्धित कमल निकला। उसके सुगन्ध से कमरा महकने लगा। हम लोग मंत्रमुग्ध हो उठे। बाबा ने कहा—"इस वक्त सूर्य के प्रकाश में तेजी नहीं है, इसलिए इससे अधिक बड़ा नहीं होगा। अन्यथा छत तक पहुँच जाता।"

कुछ देर बाद नाभि-कमल संकुचित होकर नाभि-प्रदेश में प्रवेश कर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गया। बाबा ने कहा—"नाभि में इस प्रकार के लाल, नील एवं श्वेत रंग के अनेक कमल हैं। शास्त्रों की कोई बात झूठी नहीं है। आवश्यकता होने पर हृत्पद्म निकालकर एक दिन दिखा दूँगा। नाभि-कमल का रंग बाल सूर्य की तरह जिस प्रकार रक्तिम है, हृत्पद्म का रंग उस तरह का नहीं है। प्रत्येक कमल को निकाला जा सकता है। यह सब तर्क या अनुमान की बात नहीं है। प्रत्यक्ष सत्य है।"

ऋषियों के कथन पर विश्वास करना चाहिए। साध्य-साधन योग्यता के अनुसार सब कुछ सम्भव है। जो बात एक व्यक्ति के निकट असम्भव है, वही योग्य और अधिकारी व्यक्ति के निकट सहज साध्य है। शास्त्र और गुरु-वाक्य में गलती नहीं होती। योग और सामर्थ्यवान के द्वारा सब सम्भव है। ऋषियों का कोई वाक्य असत्य नहीं है। साधारण लोगों का ज्ञान सीमित रहता है अतएव वे अविश्वास करते हैं, पर वैज्ञानिकों के निकट वह सहज साध्य है।

विश्वरूप-दर्शन

सन् १९३२ ई० में बाबाजी पुरी आश्रम में थे। पुरी के प्रसिद्ध पण्डित महामहोपाध्याय सदाशिव मिश्र प्रायः बाबा का दर्शन करने के लिए आते थे। एक दिन बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा—"श्री कृष्ण ने स्वदेह में अर्जुन को विश्वरूप दिखाया था, यह मनुष्यों की धारणा के अतीत है। सार्द्धत्रिहस्त परिमित स्थान में कैसे वर्णित रूप विशाल-विशाल दृश्य दिखाया जा सकता है?"

बाबा ने कहा—"साढ़े-तीन की क्या बात है? शास्त्रों में पढ़ा नहीं है कि श्रीकृष्ण ने अपने मुँह के भीतर यशोदा को विश्व ब्रह्माण्ड दिखाया था? नर शरीर के मुखगह्वर में स्थान ही कितना रहता है? विन्दु में सिन्धु-दर्शन की बात जानते होगे।"

मिश्र—"सुना है, पर यह कैसे सम्भव है? यही बात हम समझ नहीं पाते।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मिश्र जी की बातें सुनते ही बाबाजी ने अपना मुँह खोलते हुए कहा-"देखो तो मुँह में क्या है ?"

मिश्र—' कहीं कुछ भी तो नहीं है ।"

बाबा—"अच्छी तरह देखो ।"

बाबा मुँह खोले हुए थे और जबकि मिश्रजी केवल कानों में बाबाजी की बातें सुनते रहे—"अच्छी तरह देखो ।"

अचानक भाग्यवान पण्डित महाशय को दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी। गीता में भगवान ने कहा है—'दिव्यं ददामि ते चक्षुः' (अर्जुन मैं तुम्हें दिव्य चक्षु दे रहा हूँ ।) मिश्रजी की वही हालत हुई। मिश्रजी ने देखा—बाबा जी के मुख में ऊँची लहरों से लहराता समुद्र जिसका ओर-छोर नहीं था। अचानक दृश्य परिवर्तन हुआ। मिश्र ने देखा—वृक्ष-लता समन्वित विशाल उच्चश्रृंग पर्वत। पट-परिवर्तन होता गया। क्रमशः कृषि क्षेत्र, बन, नगर आदि दृश्य दिखाई देने लगे। उस वक्त भी उनके कानों में आवाज आ रही थी—"अच्छी तरह देखो ।" वहाँ उपस्थित व्यक्तियों में कोई भी यह सब दृश्य न तो देख पा रहे थे और न बाबा की बातें सुन पा रहे थे।

वे लोग सिर्फ यही देख रहे थे कि सदाशिव मिश्र विह्वल नेत्र से बाबा के मुँह की ओर देख रहे हैं। लगभग १५ मिनट तक यह दृश्य चालू रहा। इसके बाद बाबाजी ने मुँह बन्द कर लिया। मिश्रजी की बहिर्दृष्टि वापस आ गयी।

बाबाजी ने कहा—"देखा आपने, स्वल्प स्थान में विशाल दृश्य देखा जा सकता है या नहीं ?"

मिश्र—"हाँ, बाबाजी ! देखा और कृतार्थ हो गया।" इतना कहने के बाद वे बाबा के चरणों पर प्रणाम करने लगे। उन्होंने उपस्थित सभी लोगों को अपने दर्शन की बातें बतायीं।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्राण-रक्षा

मेरे एक गुरुभाई श्री भूषणचन्द्र आश्रम के समीप किराये के मकान में रहते थे। उनकी वृद्धा पत्नी का देहान्त हो गया था। उनकी देखरेख करने वाला अन्य कोई नहीं था। इधर बाबा जब तक काशी में रहते थे तब तक उनकी सेवा में लगे रहते थे।

एक दिन रात को अपने कमरे में चौकी पर सो रहे थे। पास ही योगक्रिया का योगदण्ड रखा था। रात दो बजे वे चौकी पर से नीचे गिर पड़े। नींद टूट जाने पर उन्होंने देखा कि उन्हें पास ही रखे त्रिशूल पर गिरना चाहिए था जबकि उससे डेढ़ हाथ दूर पड़े हैं। घर के भीतर पद्म-फूल की महक है। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि गुरुदेव ने बचाया है। गुरुदेव सूक्ष्म शरीर में जहाँ कहीं आते हैं, वहाँ अपने शरीर की गन्ध छोड़ जाते हैं।

बसु महाशय समझ गये कि वे त्रिशूल पर गिरते और उनका पेट फट जाता। लेकिन बाबा के आ जाने के कारण ऐसा नहीं हुआ। वे बार-बार बाबाजी की कृपा को स्मरण करने लगे।

उन दिनों बाबा काशी में थे। दूसरे दिन भूषण बाबू ने इस घटना का जिक्र बाबा से किया, तो बाबा ने हँसते हुए कहा—"हाँ, तुम लोग आराम से सोते रहो और मुझे इसके लिए पहरा देना पड़ता है। मैं वहाँ मौजूद था।"

भूषण बाबू ने बाबा से कहा—"इस घटना का रहस्य समझ में नहीं आया।"

बाबा ने कहा—"शिष्य के आकर्षण या उनके मंगल के लिए या रक्षा के परिप्रेक्ष्य में यहाँ-वहाँ जाना सम्भव है। इसमें आश्चर्य की बात नहीं है।"

भूषण बाबू ने कहा—"आप रक्षा कर सकते हैं या आर्त्त के करुण

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आह्वान पर आ सकते हैं, यह सत्य है; परन्तु जो शिष्य नींद में बेखबर है, रक्षा के लिए आपसे प्रार्थना भी नहीं की और उस समय आप योगासन पर क्रियारत अवस्था में समाधिमग्न थे, ऐसी हालत में आपको मालूम कैसे हुआ और किस उपाय से आपने रक्षा की ?"

प्रत्युत्तर में बाबा ने कहा—"योगी जब मुक्त अवस्था में रहता है, तब समस्त विश्व में उनकी सत्ता का विस्तार रहता है और सर्वत्र प्रकट हो सकते हैं। जिन भक्तों की रक्षा करने का वादा किया है, उनकी रक्षा के लिए क्षण भर में वहाँ पहुँच सकते हैं। वह निराकार रूप में जैसे सम्भव हो सके, उसी प्रकार साकार रूप में प्रकट हो सकते हैं। योगी योगासन पर रहते हुए भी स्थूल रूप में भक्तों की रक्षा के लिए हजार मील दूर रहने पर भी अनुभव कर लेते हैं, इसीलिए विपद के समय विद्युत से भी तीव्रगति में भक्तों के निकट साकार या निराकार रूप में उपस्थित हो जाते हैं। इससे योग भंग नहीं होता। अखण्ड सत्ता निष्क्रिय होने पर क्रियाशील रहते हैं।"

श्रीकृष्ण देह-गन्ध

पुरी के निवासकाल में गुरुदेव तीसरी मंजिल पर रहा करते थे। एक दिन आरामकुर्सी पर बैठे थे। सत्संग हो रहा था। मैंने बाबा से कहा—"आपके शरीर से जिस प्रकार की गन्ध निकलती है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण, बुद्ध देव और चैतन्य के शरीर से निकलती थी। ऐसा उल्लेख शास्त्रों में है।"

भगवान बुद्धदेव जहाँ रहते थे, उस स्थान का नाम "गन्ध कुटी" था। बुद्धदेव के शरीर से भी गन्ध निकलता था। योरोपीय विद्वान गात्रगन्ध से सर्वथा अपरिचित रहे, इसलिए उन्होंने पुष्पगन्ध का जिक्र किया है। चैतन्यदेव के शरीर से पद्मगन्ध निकलता था।

जिन दिनों चैतन्यदेव दक्षिण भारत के किसी क्षेत्र के एक परिवार में थे, उन दिनों उक्त परिवार की धर्मपत्नी ने चैतन्यदेव के गात्रगन्ध का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आघ्राण करने के बाद उनके शरीर का तेजःपुंज देखकर कहा—"आप भगवान हैं। भगवान के सभी लक्षण आपके भीतर हैं।"

श्री चैतन्यदेव इस बारे में चुप रहे, परन्तु अंततः उस भक्त की अभिलाषा को पूर्ण किया था। पर्यटन के समय चैतन्यदेव गोविन्ददास के साथ थे।

चैतन्य चरितामृत की मध्य लीला में इस गन्ध का उल्लेख है। आगे बाबा ने कहा—"इस गन्ध का विवरण कहीं मिला है?"

मैंने कहा—"हाँ, नीलकमल, तुलसीमंजरी, कस्तूरी और श्वेत चन्दन की सामग्री से जो गन्ध उत्पन्न होता है, श्रीकृष्ण का गात्रगन्ध उसी तरह का था।"

मेरे कहने के साथ ही बाबा ने शून्य में एक झटका देकर शास्त्रोक्त छह पदार्थों के मिश्रणवाला गन्ध तैयार कर दिया। मैंने बाबा से कहा—"बाबा, मेरी इच्छा है कि इस गन्ध का कुछ क्षण के लिए आप स्थायी बना दें।"

बाबा ने एक शीशी लाने को कहा। मैं एक होमियोपैथिक दवावाली शीशी ले आया। तब बाबा ने लोकोत्तर सृष्टि प्रक्रिया के माध्यम से, उस गन्ध को तेल के रूप में बनाकर शीशी में भर दिया। यह सामग्री मेरे पास काफी दिनों तक थी। महामहोपाध्याय पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषण इस सुगन्ध को सूँघकर आत्मविभोर हो गये थे।

सृष्टि-प्रक्रिया

परमहंसवृत्ति धारण करने पर भी बाबा अपने कुलगत परम्परा के अनुसार कुलगुरु को यथा सम्मान देते हुए दान-दक्षिणा दिया करते थे। एक बार कुलगुरु के पुत्र काशी घूमने के लिए आये। उन दिनों बाबा काशी में ही थे। उन्हें बड़े आदर के साथ भीतर रखा गया। बाबा के व्यवहार से वे बड़े प्रसन्न हुए।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

काशी से जब वे जाने लगे, तब बाबा उन्हें दक्षिणा में रुपये देने लगे। उन्होंने बाबा से कहा—"रुपये-पैसे तो इधर-उधर से मिल जाते हैं। आप मुझे एक ऐसी वस्तु दें जिससे आपकी यादगार बनी रहे। मेरी इच्छा है कि योग-विभूति के द्वारा सोने की एक अंगूठी मँगवायें जिसके ऊपर कोई देवमूर्ति हो और नीचे मेरा नाम खुदा हो।"

बाबा ने कहा—"यही होगा। आप जरा बैठें।"

कुछ देर बाद प्रकृति को आकृष्ट करते हुए बाबा ने उसी प्रकार की अंगूठी गुरु-पुत्र को दिया। इस दृश्य को देखकर हम सब चकित रह गये।

इस सृष्टि के प्रसंग में बाबा ने कहा—"प्रकृति पूर्ण है। कोई भी वस्तु प्रकृति की सृष्टि-प्रक्रिया के भीतर विद्यमान है एवं अभीप्सित वस्तु-प्राप्ति सम्भव है।"

विपत्ति-निवारण

कलकत्ता हाईकोर्ट के प्रसिद्ध वकील श्री सतीशचन्द्र मुखर्जी बाबा के परम् भक्त थे। बाबा के रहने के लिए हनुमानघाट वाला मकान इन्होंने खरीदकर दान कर दिया था। आपकी दो पत्नियों की मृत्यु हो गयी थी। तीसरा विवाह करने को आप राजी थे, पर कोई बाप इन्हें लड़की देना नहीं चाहता था। सभी लड़की की मौत से डर रहे थे। सतीश बाबू बड़े चिन्तित हुए। काशी आकर उन्होंने अपनी समस्या बाबा के सामने रखते हुए प्रार्थना की।

बाबा ने सतीशचन्द्र को बुलाकर कहा—"तुम्हारे पिता की इच्छा है कि तुम पुनर्विवाह करो। अतएव अब तुम निडर होकर विवाह कर सकते हो। अब तुम्हारी पत्नी की मृत्यु नहीं होगी। अब उसकी जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर ले रहा हूँ। अगर तुम्हारी पत्नी की मृत्यु होती है, तो उसके लिए सारा दोष मेरा होगा। आवश्यक होने पर मैं नयी पत्नी की सृष्टि कर दूँगा।"

दैवयोग से एक धनी व्यक्ति उमेशचन्द्र बनर्जी की लड़की के साथ

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सतीशचन्द्र का समारोह के साथ विवाह हो गया। इस घटना के बाद वे केदारघाट स्थित किरायेवाला मकान छोड़कर हनुमानघाट चले आये। सतीश बाबू बाबा की सेवा करते रहे। इसी बीच कलकत्ता से उनके श्वसुर का तार आया—'कालीदासी (सतीश बाबू की पत्नी) सख्त बीमार है। डाक्टर चिन्तित हैं। सम्भव हो, तो चले आओ।'

इस तार को पाकर सतीश बाबू चिन्तित हो उठे। जल्दी से बाबा के पास आकर उन्होंने कलकत्ता से आये तार को दिखाया। इसके बाद जाने की अनुमति माँगी।

बाबा ने कहा—"वहाँ जाने की जरूरत नहीं है।"

गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करते हुए सतीश बाबू पहले की तरह सेवा करते रहे। दूसरे दिन एक तार पुनः आया—'हालत चिन्तनीय है। जल्द आओ।'

इस तार को बाबा के सामने रखा गया। बाबा ने कहा—"जाने की इच्छा हो, तो जा सकते हो। मैं कुछ नहीं कहूँगा।"

तीसरे दिन एक तार आया—"डाक्टर ने जवाब दे दिया है। बचने की आशा नहीं है।"

सतीश बाबू की जबानी यह समाचार पाकर बाबा ने कहा—"उन्हें लिख दो कि गुरुदेव कह रहे हैं—काली आज रात को ठीक हो जायगी। निराश होने की कोई बात नहीं है।" इसके बाद बाबा ने कहा—"आज रात को मैं कुछ भी नहीं खाऊँगा। आज मुझे भयंकर बुखार आयेगा। इसके लिए घबराना मत।"

रात १० बजे बाबा को तेज बुखार चढ़ा। १०५ डिग्री बुखार हुआ था। रात को कई घण्टे तक वे बड़े कष्ट में थे। दिन निकलते ही स्वस्थ हो गये। सबेरे तार आया—'काली स्वस्थ है और रोग-मुक्त हो चुकी है।'

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पंचीकरण या मेटारियालाइजेशन

प्रति वर्ष गर्मी के मौसम में बाबा पुरी आकार विश्राम करते हैं। यहाँ बाबा का एक पुराना शिष्य श्री कामाख्या बनर्जी समुद्र में स्नान करते रहे जिसके कारण लहरों के भीषण आघात से अस्वस्थ हो गये। दर्द के कारण महीनों परेशान रहे। धीरे-धीरे रोग ने गठिया का रूप धारण कर लिया।

गठिया से पीड़ित रहते हुए भी कामाख्या बाबू हमेशा सत्संग में आते रहे। एक दिन इसी सत्संग में कटक से एक आई० एम० एस० आये थे। डाक्टर हैं जानकर बाबा ने कामाख्या बाबू के रोग का विवरण देते हुए पूछा—"इस रोग की कोई दवा है ?"

डाक्टर बाबू ने कहा—"कुछ दिन हुए जर्मनी में एक नयी दवा आविष्कृत हुई है। सुना है कि इस प्रकार के रोगों में वह दवा काम करती है। लेकिन वह दवा यहाँ नहीं मिलती। कलकत्ते में मिल सकती है। तेल वाली दवा है।"

बाबा ने कहा—"उस दवा के उपादानों के नाम बता सकते हो ?"

डाक्टर बाबू ने कहा—"जी, यह मैं नहीं जानता।"

बाबा ने सवाल किया—"क्या तुमने उस दवा का प्रयोग किया है ?

डाक्टर बाबू ने कहा—"जी हाँ। प्रयोग किया है।"

इसके बाद बाबा ने पत्थर का एक टुकड़ा मँगवाया। बाबा उस समय आरामकुर्सी पर लेटे हुए थे। बोले—"मेरे कमरे के सामने रख दो।" पत्थर के उस टुकड़े को स्टूल पर रख दिया गया। बाबा ने उस टुकड़े को उठाकर एक पात्र के ऊपर रख दिया। थोड़ी ही देर में उक्त पत्थर से तेल की तरह पदार्थ चूने लगा। धीरे-धीरे पात्र भर गया।

बाबा ने उस दवा को दिखाते हुए डाक्टर बाबू से पूछा—"यह दवा तुम्हारी तथाकथित दवा है न ?"

डाक्टर बाबू ने कहा—"जी हाँ।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बाबा ने इस रहस्य की व्याख्या करते हुए कहा—"तुम्हारे मन में संस्कारवश उक्त दवा के दर्शन के जितने उपादान थे, उसे मैंने भौतिक रूप में उत्पन्न किया। यही है पंचीकरण का उपाय।"

कामाख्या बनर्जी इस दवा के प्रयोग से रोग-मुक्त हो गये थे।

रोग-शान्ति

सन् १९२९–३० की बात है। बाबा उन दिनों कलकत्ता स्थित भवानीपुर मुहल्ले में थे। मैं बनारस में गोदौलिया के निकट सर्वमंगला लेन स्थित एक किराये के मकान में रहता था। मेरी पत्नी काफी बीमार थी। डाक्टरों के इलाज से कोई लाभ नहीं हो रहा था। यह सब देख-सुनकर मैं बराबर उद्विग्न रहने लगा। इसके अलावा अन्य कोई उपाय नहीं था। कई प्रकार के डाक्टरों से इलाज करा चुका था। फिर भी उनके श्वास कष्ट में राहत नहीं मिल रही थी।

उल्टे कुछ देर बाद ही उनमें अस्थिरता बढ़ जाती थी। एक दिन तो काफी तकलीफ में थी। मेरे मित्र डाक्टर शोभाराम ने काफी प्रयत्न किया, पर उन्हें भी सफलता नहीं मिली। इसके बाद अन्य बड़े डाक्टरों को भी दिखाया गया। लेकिन कुछ नहीं हुआ, बल्कि मर्ज बढ़ता गया।

कुछ लोगों ने मुझसे कहा कि रोग-शान्ति के लिए गुरुदेव के पास तार कर दूँ। व्याधि या शरीर के लिए उन्हें कष्ट देने की मेरी इच्छा नहीं हुई। तार भले ही मैंने नहीं किया, पर जो सर्वज्ञ और मर्मज्ञ हैं, उनका ज्ञान कभी अवरुद्ध नहीं होता। दिन को ११-१२ बजे रोगी के कमरे में पद्म-गन्ध महकने लगा और उसी के बाद से मेरी धर्मपत्नी को कुछ राहत मिली। गुरुदेव के आगमन के उपलक्ष्य में उन्हें प्रणाम करते ही रोग का पर्याप्त उपशम हुआ। तार करने की जरूरत नहीं हुई। संकट दूर हो गया।

दूसरे दिन सबेरे साढ़े-आठ बजे मैं नीचे वाले कमरे में बैठा था। तभी नौकर ने आकर सूचित किया—"ऊपर माँ आपको बुला रही हैं।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मैंने ऊपर आकर पूछा—"किसलिए बुलाया ?"

पत्नी ने कहा—"पाँच मिनट पहले गुरुदेव यहाँ आये थे।"

मैंने कहा—"गुरुदेव कल रात को भी यहाँ आये थे। उसी वजह से तुम रोगमुक्त हो गयी हो।"

पत्नी ने कहा—"मैं जब बाथरूम से वापस आ रही थी, तब कमजोरी के कारण गिरने ही जा रही थी कि अचानक गुरुदेव ने स्थूल शरीर में प्रकट होकर मुझे पकड़ लिया। उनकी दाढ़ी मेरे शरीर को स्पर्श करती रही। यहाँ तक कि मेरे हाथ में दस गोली दे गये हैं और उसकी सेवन-विधि बता गये हैं। लेकिन मैं वह बात भूल गयी। इसके बाद वे अन्तर्ध्यान हो गये।"

मैंने पूछा—"जब नियम-विधि ज्ञात नहीं है, तब दवा कैसे खाओगी ?"

उस दवा को अपने पास रखकर मैंने गुरुदेव को पत्र लिखा। बाद में सेवनविधि वाला पत्र पाकर प्रयोग किया और मेरी पत्नी अच्छी हो गयी।

कुछ दिनों बाद मैं बाबा के कलकत्तावाले आश्रम में गया। इस घटना के बारे में मैंने उनसे पूछा था। उनसे मैंने पूछा—"आप कलकत्ता में रहते हुए कैसे काशी में उपस्थित हुए और मेरी पत्नी की प्राण-रक्षा आपने की ? एक साथ दोनों जगह रहना कैसे सम्भव हुआ ?"

बाबा ने हँसते हुए कहा—"बहू बाथरूम में गिरने ही जा रही थी, उसी समय मैं हाथ-मुँह धोने गया था। मैंने देखा—बहू गिर रही है, तब मैंने उसे सहारा दिया।"

मैं—"बहू की बीमारी के बारे में मैंने आपको कोई समाचार नहीं भेजा, फिर भी आप ५०० मील दूर बैठे कैसे उसकी बीमारी के बारे में जान गये ?"

बाबा ने पूछा—"तुमने योगी का अर्थ क्या समझा है ? योगी का अर्थ है—अखण्ड सत्ता के साथ नित्य युक्त होना। देश-काल या किसी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अवस्था में वे अवरुद्ध नहीं होते। मैं इसी शरीर से सर्वत्र तथा सर्वकाल में वर्तमान रहता हूँ। काशी तक पहुँचने में कोई असुविधा नहीं होती।"

योगविभूति एवं इच्छाशक्ति

एक बार मैंने बाबा से पूछा था—"योगियों को अपनी-अपनी शक्ति या योगविभूति बाहर प्रकट करना उचित है या नहीं ?"

बाबा ने कहा था—"जो लोग शिक्षार्थी हैं एवं योगराज्य में उन्होंने हाल में ही प्रवेश किया है, उनके लिए योगशक्ति या योगविभूति का प्रदर्शन करना हानिकर है। इससे आसक्ति या अहंकार में वृद्धि होती है। यहाँ तक कि अति निकटतम व्यक्ति को भी यह बात नहीं कहनी चाहिए, वे लोग योगविभूति की बात जान तक न पायें। जहाँ तक हो सके, यथा-सम्भव योगविभूति या योगसम्पत्ति गुप्त रखना श्रेयस्कर है। जो लोग सिद्ध योगी, अधिकारी या सामर्थ्य और महाकृपा प्राप्त कर चुके हैं, उनके लिए नियम नहीं है। क्योंकि उनमें अहंकार नहीं होता और न अहंकार होने की संभावना रहती है। अपने लिए उस शक्ति की आवश्यकता सभी को नहीं होती। वह इसलिए कि वे महाकरुणा प्राप्त कर सभी पर विजयी हो चुके हैं और तृप्ति का अनुभव कर रहे हैं। प्रथम प्रविष्ट तथा जिज्ञासु के लिए प्रदर्शन और अभ्यास आवश्यक होता है। दिखावा करने या इसकी क्रमधारा वस्तु के रहस्य को समझाने के अलावा इसके कठिन तत्त्व में प्रवेश करना कठिन कार्य है। प्रथम प्रवेशार्थियों के लिए दृढ़ विश्वास स्थापना के निमित्त कुछ दिखाना आवश्यक होता है। पहले पहल जिसे असम्भव समझा जाता है, वही आगे चलकर दुरूह या असम्भव प्रतीत नहीं होता। सिद्ध योगी के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। शक्ति के अधीन सब कुछ है, इसलिए शक्ति पर अधिकार रहने पर सब कुछ हो सकता है। जो अघट प्रतीत होता है, वह भी घटना के रूप में महाशक्ति के अधीन है। महाशक्ति के द्वारा ही सब चलायमान होते हैं। योग-मार्ग में उत्कर्षता प्राप्त करने के लिए शक्ति और सरल विश्वास में किसकी

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विशेष आवश्यकता होती है ? योग-मार्ग में दोनों प्रकार के सिद्धान्तों की मीमांसा हुई है। पहली स्थिति में चित्त चंचल रहता है; इसलिए निष्ठा-विश्वास कैसे आ सकते हैं ? प्रत्यक्ष दर्शन एक बार नहीं, बार-बार विभिन्न अवस्था में अनुभव करने को मनुष्य का मन होता है। ऊपर के स्तर में विश्वास ही प्रधानवस्तु है। प्रथम अवस्था में प्रत्यक्ष ज्ञान का होना आवश्यक है जिससे विश्वास का आविर्भाव हो सके।"

मैंने पूछा—"योग मार्ग में, विभूतियों में भीतर कौन सा श्रेष्ठ होता है ?"

उन्होंने कहा—"इच्छा, ज्ञान और क्रिया यही तीनों श्रेष्ठ हैं। इनमें इच्छाशक्ति सर्वोपरि स्थान प्राप्त कर चुकी है। ज्ञानशक्ति प्राप्त होने के बाद अशेष और विशेष ज्ञान प्राप्त होता है अर्थात् सभी विषयों का ज्ञान हो जाता है—इसमें सन्देह नहीं। क्रियाशक्ति के प्रभाव से सभी प्रकार के कर्तृत्व किये जा सकते हैं।"

आगे आपने कहा—"मेरी इच्छाशक्ति के प्रभाव से ही ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति कार्य करती है। इच्छाशक्ति प्राप्त होने के बाद, प्राकृतिक उपादानों को लेकर, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति कर्म कर सकती हैं। यही है—विज्ञान। विज्ञान के अनेक भेद हैं—सूर्य विज्ञान, चन्द्र विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान, समय विज्ञान आदि। पर इच्छाशक्ति विज्ञान नहीं है।"

मैंने कहा—"बाबा, इच्छाशक्ति और इच्छा के भीतर कोई प्रभेद है ?"

बाबा ने कहा—"अवश्य, अज्ञानावस्था में इच्छा रह जाती है और पूर्ण ज्ञान होने पर यही इच्छा तब इच्छाशक्ति के रूप में कार्य करने लगती है।"

मैंने पूछा—"तब तो इच्छा स्वाभाविक शक्ति नहीं है ?"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बाबा ने कहा—"शक्ति का अर्थ है—'चैतन्य'। जब तक आत्मा अचेतन है या ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है, इच्छा इच्छा-मात्र रहती है, तबतक उसे इच्छाशक्ति नहीं कहा जा सकता। ज्ञानप्राप्ति का अर्थ है—आत्म-स्वरूप या ब्रह्मस्वरूप के साथ साक्षात्कार।"

मैंने पूछा—"इस तरह के साक्षात्कार के बाद भी क्या इच्छा रह जाती है?

बाबा ने कहा—"अवश्य। इच्छा रह जाती है, पर महाइच्छा के रूप में। अगर इस तरह न हो, तो परमेश्वर का ईश्वरतत्त्व कैसे सम्भव हो सकता है?"

मैंने कहा—"शास्त्रों में है—इच्छामात्रं प्रभोः सृष्टिः (माण्डूकोपनिषद् गौड़पाद कारिका), इससे यही समझ में आता है।"

बाबा ने कहा—"देखो, इच्छाशक्ति के सम्बन्ध में तुम्हें दो खेल दिखा रहा हूँ। तुम लोग मुट्ठी बन्द करके अपनी ईप्सित वस्तु की चिन्ता करो। वह वस्तु अपने आप आ जायगी।"

उस समय मेरे दो अन्य गुरुभाई वहाँ बैठे थे। हम लोगों ने मुट्ठी बन्द करके बाबा के निर्देशानुसार वस्तु की इच्छा मन-ही-मन की। बाबा ने कहा—"अब देखो, तुम लोगों को अपनी ईप्सित सामग्री मिली या नहीं?"

हम लोगों ने मुट्ठियाँ खोलीं। वह खाली थी।

अब बाबा ने कहा—"एक बार और मुट्ठी बन्द करो। इस बार भी पूर्ववाली वस्तु की चिन्ता करते रहो। पहली बार तुम लोगों ने देखा कि इच्छा के माध्यम से कुछ नहीं हुआ। अब मैं शक्ति-संचार कर रहा हूँ।"

आसन पर बैठे बाबा बार-बार हाथ पटकते हुए बोले—"तुम लोगों की इच्छा में इच्छाशक्ति का संचार कर रहा हूँ।"

इसके बाद हम लोगों ने मुट्ठियाँ खोलकर देखीं, तो ईप्सित सामग्री थी। इस घटना की व्याख्या करते हुए बाबा ने कहा—"तुम लोगों की

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इच्छा और मेरी शक्ति मिलकर दोनों ने स्वरूप वस्तु प्राप्त की है। यही है—इच्छाशक्ति का फल। जब तुम लोगों में महाज्ञान उत्पन्न हो जायगा, तब शक्ति-संचार का कोई प्रश्न नहीं रहेगा और न शक्ति-संचार की आवश्यकता होगी।"

मैंने पूछा—"क्या इच्छाशक्ति ही चरमशक्ति है? क्या इसकी प्राप्ति के बाद योगियों को ईश्वर मिल जाते हैं या चरमसिद्ध बन जाते हैं?"

बाबा ने कहा—"नहीं। बहिर्मुखी शक्ति के भीतर ही इच्छाशक्ति प्रधान है। सृष्टिराज्य की दृष्टि में इसी को सर्वप्रधान माना गया है, पर इसे प्राप्त करना चरम नहीं है। अन्त में इस इच्छाशक्ति को भगवान् के चरणों में योगी अर्पित कर देता है। इस इच्छाशक्ति को आन्तरिक भाव से श्रीगुरु-चरण पर समर्पण करने के बाद आह्लादिनी शक्ति यानी परमानन्द-शक्ति-उदय होता है। जब तक इच्छा की निवृत्ति नहीं होती, तबतक आनन्द का उदय कैसे हो सकता है? इच्छाशक्ति की निवृत्ति के बाद योगियों के हृदय में महाशक्ति का आविर्भाव होता है और तब शरीर में पूर्णानन्द प्रवेश कर पाता है। इसके व्यतिक्रम होने पर क्रमशः ह्रास-वृद्धि में कमी होती है, पर चैतन्यसत्ता गायब नहीं होती। शिव-शक्ति पुनर्मिलन से नाद की सृष्टि होती है और अभेद ज्ञान भूमि प्राप्त होने पर, योगी को स्वातंत्र्य भूमि प्राप्त होती है, यही है—'पूर्णता'।"

अन्त में आपने कहा—"विभूतियाँ तुच्छ हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं; पर विभूतियों का विकास और संचार का होना आवश्यक है। पूर्ण विकास के बाद उसकी निवृत्ति आवश्यक है।"

●

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१४

आनन्दमयी माँ

६ सितम्बर, सन् १९२८ के दिन माता आनन्दमयी के साथ मेरी पहली मुलाकात हुई थी। वे अपने पति और कुछ भक्तों के साथ काशी आयी थीं। काशी में वे उस समय मुहल्ला रामापुरा स्थित कुंजमोहन मुखोपाध्याय के यहाँ रह रही थीं। माता आनन्दमयी का दर्शन करने के लिए हमेशा भीड़ लगी रहती थी। लेकिन मैं इस समाचार से अपरिचित था। माता आनन्दमयी की आगमन वार्ता महामहोपाध्याय पद्मनाथ विद्याविनोद के यहाँ पहले पहल प्राप्त हुई थी।

गौहाटी से अवसरप्राप्त पण्डित महामहोपाध्याय पद्मनाथ विद्याविनोद महाशय उन दिनों काशीवास कर रहे थे। मेरे यहाँ वे प्रतिदिन आया करते थे। अंग्रेजी के अध्यापक होते हुए भी विद्याविनोद महाशय प्राचीन इतिहास की खोज किया करते थे। खासकर प्राचीन शिलालिपि के प्रति उन्हें प्रेम था। कामरूप शासनावली (Inscription of Assam) उनकी प्रसिद्ध पुस्तक है। वे हिन्दू-धर्म के प्राचीन पन्थियों के आदर्शों के प्रति आस्थावान थे और स्वयं शास्त्रों का अनुशीलन किया करते थे।

एक दिन विद्याविनोद महाशय मेरे निवासस्थान पर आकर बोले—"काशी में एक महिला आयी हैं। वे रामापुरा मुहल्ले में कुंज बाबू के घर इन दिनों ठहरी हुई हैं। हर वक्त समाधि में मगन रहती हैं। उन्हें देखने पर ऐसा लगता है जैसे उच्चकोटि की साधिका हैं। आप जाकर उनका दर्शन कीजिये।"

विद्याविनोद महाशय शायद ही कभी किसी की प्रशंसा करते हैं। माता आनन्दमयी के सम्बन्ध में इस तरह की प्रशंसा भरी वाणी सुनकर उनसे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मिलने की इच्छा तीव्र हो उठी। विद्याविनोद महाशय द्वारा बताये गये पते के अनुसार ६ सितम्बर को माँ का दर्शन करने गया। कुंज बाबू के यहाँ तीसरे पहर पहुँचा। कुंज बाबू के बड़े भाई शशांक बाबू (अखण्डानन्द) ने माँ का दर्शन कराने की यथाविधि व्यवस्था कर दी। उन लोगों ने भोलानाथजी के साथ मेरा परिचय कराया। वे मुझे अपने साथ लेकर एक छोटे कक्ष में आये। वहाँ माँ को गंभीर समाधि में लीन रहते देखा था। भोलानाथजी ने माँ की समाधि भंग करने का प्रयत्न किया, पर उन्हें अपने कार्य में सफलता नहीं मिली। उस दिन माँ का दर्शन होने के बावजूद उनसे कोई बातचीत नहीं कर सका। लगभग रात ९ बजे तक उस दिन प्रतीक्षा करने के बाद घर वापस आ गया। दूसरे दिन ७ सितम्बर भोर के वक्त मैं पुनः वहाँ गया। जाने पर पता चला कि वे अभी तक समाधि में मग्न हैं, इसलिए उनके दर्शन के निमित्त प्रतीक्षा करने लगा।

कुछ देर बाद वे समाधि से उठीं। उस बार जितने दिनों तक काशी में थीं, उस महीने में ८ से १२ वीं तारीख तक दोनों वक्त, सवेरे-शाम उनका दर्शन और बातचीत करने के लिए जाया करता था। एक दिन भारत धर्म महामण्डल के स्वामी दयानन्द को माताजी के निकट देखा था। स्वामी दयानन्द का यह विश्वास था कि साक्षात् भगवती ही माता आनन्दमयी के रूप में पृथिवी पर अवतरित हुई हैं। स्वामीजी पूछ रहे थे—"माँ आप कौन हैं?"

माता आनन्दमयी ने उत्तर दिया—"मैं क्या बताऊँ? आपने जो समझा है, मैं वही हूँ।"

स्वामीजी ने पुनः पूछा—"जब आप समाधि पर रहती हैं, तब वह सविकल्प समाधि होती है या निर्विकल्प? इस बारे में कुछ कहिये।"

उन्होंने उत्तर दिया—"इसका विचार मैं कैसे कर सकती हूँ? मैं समाधि पर रहती हूँ, यह तुम देख चुके हो; अतएव वह तुम्हारी बात है और तुम्हारे विचार का विषय है। समाधि के सम्बन्ध में तुम अनिभज्ञ हो, वह

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

समाधि है या नहीं, कैसी समाधि है ? यह तुम्हारे विचार का विषय है। इस बारे में मैं क्या कह सकती हूँ ? मैं तो अधिक पढ़ी-लिखी नहीं हूँ, फलस्वरूप समाधि के प्रकार-भेदों को नहीं जानती। पर इतना कह सकती हूँ कि सर्वदा एक ही अवस्था में रहती हूँ। समाधि का होना या समाधि से अलग होना, यह तुम लोगों की बात है। मेरे निकट दोनों ही एक हैं। इस स्थिति का क्या नाम है, तुम बताओ।"

उपस्थित भक्त मण्डली में से किसी ने पूछा—"क्या यह स्थिति प्रज्ञावस्था तो नहीं है ?"

माता आनन्दमयी ने कहा—"यह तुम लोगों का ही विचार सापेक्ष है।"

कुंज बाबू के घर इस बार माँ बहुत कम समय के लिए थीं। कुंज बाबू का भवन उन दिनों दिन-रात उत्सव से मुखरित रहता था। समाज के सभी वर्गों के व्यक्ति, पण्डित, साधु, सामान्य लोग, स्त्री-पुरुष वहाँ मौजूद रहते थे। माँ का दर्शन कर प्रणाम करना तथा संभव होने पर दो-एक बातें करना लोगों का मुख्य उद्देश्य था। माँ के सान्निध्य में एक बार जाने के बाद पुनः उनके निकट जाने पर सभी अपने को कृतार्थ समझते थे। माता आनन्दमयी जितने दिनों तक काशी में थीं, उन दिनों विभिन्न स्थानों से आये विभिन्न प्रकार के लोगों की भीड़ लगी रहती थी। उन्हें आगत व्यक्तियों के प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता था। माता आनन्दमयी किस स्थिति में, किस रूप में, कहाँ हैं ? यह बात कोई नहीं जान पाता था। प्रत्येक भक्त अपने-अपने दृष्टिकोण से उनके बारे में सोचा करता था। कोई कहता—"आप काली की अवतार हैं।" ढाका (बांगला देश) में ऐसी ही प्रसिद्धि थी। विभिन्न "महाविद्या" समूह के साथ माँ का साक्षात्कार हुआ है, कुछ भक्त ऐसी कल्पना किया करते थे। कुछ भक्त उन्हें 'शुकदेव' का अवतार मानते थे। बाह्यजगत में उनका कोई गुरु नहीं था। अनुश्रुति है कि माताजी मातृगर्भ से ही पूर्ण ज्ञान लेकर भूमिष्ठ हुई हैं।

माँ के प्रथम दर्शन से पहले-पहले जो प्रभाव मुझ पर पड़ा था, अब

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उसका विश्लेषण करके कुछ बताना मेरे लिए सम्भव नहीं है। यह बात जरूर कह सकता हूँ कि उस दिन अपनी आँखों से जो कुछ देखा था, वह पहले की देखी हुई बातों से भिन्न थी। लगा जैसे ऐसा कभी नहीं देखा था। यह तो स्वप्न में देखे गये दृश्यों को जाग्रत अवस्था में देखने की तरह है।

प्रतिदिन तीसरे पहर सत्संग के समय विभिन्न प्रकार के लोग आते और प्रश्न करते थे। सामान्य बातों के द्वारा अनुपम माधुर्य से माँ उनकी बातों का उत्तर देती थीं। प्रश्न कितना ही जटिल या दुरूह क्यों न हो, उत्तर अवश्य प्राप्त होता था। लगता था जैसे उत्तर के लिए कोई देर नहीं, चिन्ता या कल्पना नहीं है।

एक दिन एक महिला ने रात के समय आकर माता आनन्दमयी (द्रष्टा भाव) से कहा—"माँ, जब मैं आसन पर बैठती हूँ, तब इच्छा होती है कि तुम्हारे पास आऊँ, पर हर समय यह हो नहीं पाता। इससे मेरे मन में दुःख होता है। जब यहाँ चली आती हूँ, तब मन में आनन्द होता है। आपके सान्निध्य में रहने पर सुख मिलता है।"

सारी बातें सुनने के बाद माता आनन्दमयी हँसने लगीं। बोलीं—"तुम्हारी बातें समझ नहीं पायी। तुमने कहा अपना साक्षीभाव या द्रष्टा-भाव या अन्तःचक्षु खुल गया है, यह तो आनन्द की बात है। तब तुम यह क्यों कह रही हो कि जब मेरे सान्निध्य में आती हो, तभी तुम्हें आनन्द या सुख अनुभव होता है। न आने पर दुःख-सुख अनुभव करती हो, फलतः लगता है कि अभी तक तुममें सुख-दुःख का बोध है, इसलिए दुःख-सुख भोग के अन्तर्गत है। द्रष्टा या साक्षी को कहीं भोग होता है?" इतना कहने के बाद वे हँसने लगीं।

माता आनन्दमयी जब-जब काशी आती थीं, तब-तब मैं मुलाकात करने के लिए जाता था। पहले माता आनन्दमयी धर्मशाला में ठहरती थीं। किसी गृहस्थ के घर नहीं जाती थीं। कभी-कभी नाव पर निवास

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करती थीं। कुछ दिनों बाद जब भदैनी में आश्रम बन गया, तब वहाँ आकर ठहरने लगीं। धीरे-धीरे माता आनन्दमयी के साथ मेरी घनिष्ठता बढ़ती गयी। एक बार उन्होंने अपने पिता श्री विपिन बिहारी को मेरे साथ पुरी स्थित जगन्नाथजी की रथयात्रा देखने के लिए भेजा था। मैं उन्हें लेकर अपने गुरुदेव (स्वामी विशुद्धानन्द) के आश्रम में गया था। रथयात्रा मेला देखने के बाद उन्होंने पुरी स्थित विशिष्ट स्थानों का दर्शन किया। उन दिनों गुरुदेव वहीं थे। उनका दर्शन करके विपिन बाबू प्रसन्न हो उठे।

बोले—"इनकी तरह शक्तिसम्पन्न पुरुष इसके पूर्व कभी नहीं देखा था। मेरी हार्दिक इच्छा है कि सुविधानुसार किसी विशेष समय पर माँ और बाबाजी से मुलाकात करायी जाय। दोनों ही व्यक्ति लोकोत्तर हैं। दोनों ही आपस में मिलने पर आनन्दित होंगे।"

उन्होंने इस ढंग से कहा जैसे इस साक्षात् के लिए उनकी इस महान इच्छा की पूर्त्ति अवश्य करूँ। विपिन बाबू की इस इच्छा की पूर्त्ति करने में मुझे पाँच वर्ष का समय लग गया था।

पुरी क्षेत्र के आश्रम का नाम विशुद्धानन्द धाम है। पुरीधाम स्थित आश्रम के निर्माण और व्यवस्थादि का व्ययभार, कलकत्ता हाईकोर्ट के वकील बाबाजी के परमभक्त श्रीयुत क्षेत्र गोपाल वंद्योपाध्याय, एम० ए०, बी० एल० महाशय ने ग्रहण किया था। यह आश्रम आर्मस्ट्रंग रोड पर पुरी जिला स्कूल के समीप है।

सन् १९३५ की बात है। उन दिनों गुरुदेव काशी में थे और माता आनन्दमयी उन्हीं दिनों गोदौलिया स्थित वीरेश्वर पांडे धर्मशाला में ठहरी हुई थीं। उस समय बड़े आग्रह के साथ माता आनन्दमयी को गुरुदेव के आश्रम में ले गया। गुरुदेव ने बड़े प्रसन्नभाव से माता आनन्दमयी का स्वागत किया। १४ अगहन यानी ३० नवम्बर, १९३५ ई० के दिन श्री श्री विशुद्धानन्द परमहंस के साथ श्री श्री माँ आनन्दमयी की मुलाकात हुई थी।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माता आनन्दमयी को बस द्वारा मलदहिया स्थित गुरुदेव के आश्रम (विशुद्धानन्द कानन) में ले गया था। आपके साथ १५ अन्य भक्त थे। साथ में पतिदेव भोलानाथ एवं उनके परमभक्त भाईजी (ज्योतिषचन्द्र बसु) भी थे। माँ के साथ कश्मीर आदि कई प्रान्तों से आये भक्त भी थे। स्त्री और पुरुष दोनों। गुरुदेव ने भक्तों के स्वागत के लिए सूर्य मन्दिर की दूसरी मंजिल पर बरामदे में बैठने का प्रबन्ध करवाया था। बरामदे पर कम्बल बिछाया गया था (भक्तों के लिए), माँ तथा अन्य विशिष्ट लोगों के लिए पृथक-पृथक आसन था। एक ओर कोने में आरामकुर्सी पर गुरुदेव बैठे थे। आश्रम के भक्त लोग बरामदे के पश्चिम ओर बैठे थे। मैंने सोचा था कि माँ जब भक्तों के साथ यहाँ आयेंगी, तब ऊपर जाकर गुरुदेव को समाचार दूँगा, पर माता आनन्दमयी मेरे पहुँचने के पहले ऊपर पहुँच गयी थीं। बाद में मैं वहाँ पहुँचा।

ऊपर आते ही माँ ने गुरुदेव को सम्बोधन करते हुए कहा—"पिताजी, तुम्हारी छोटीलड़की आयी है। इस वक्त कन्या अपने पिता के पास आयी है।"

गुरुदेव आरामकुर्सी पर बैठे थे। यह सम्बोधन सुनते ही उन्होंने खड़े होकर अभ्यर्थना करते हुए कहा—"हाँ, लड़की अपने घर आयी है।"

माँ के लिए आसन पहले से ठीक करके रखा गया था, लेकिन वे बाबाजी के सामने न बैठकर खाली जमीन पर बैठ गयीं। भोलानाथ आसन पर बैठे थे। भक्त लोग कम्बल पर बैठे थे।

कुछ देर बाद माँ के कश्मीरी भक्तों पर दृष्टि पड़ते ही बाबा ने पूछा—"माँ, यह लोग कहाँ से आये हैं, किस प्रान्त के निवासी हैं?"

माता आनन्दमयी ने कहा "पिताजी, ऐसा क्यों पूछ रहे हैं? ये लोग कहाँ से आये हैं, पूछने का क्या तात्पर्य है? ये सभी लोग एक ही जगत से आये हैं जैसे अन्य लोग आते हैं।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बाबा ने सोचा कि शायद माता आनन्दमयो परिहास कर रही हैं। बाबा ने कहा—"हाँ, माँ, सभी एक ही जगत से आये हैं, पर बाहर आकर लोग भिन्न-भिन्न जाति के हो जाते हैं।"

माँ ने कहा—"हाँ, पिताजी, भिन्न-भिन्न होने पर भी तो एक ही में हैं।"

इसके बाद माँ ने भाईजी से कहा—"ज्योतिष, तुम काफी दिनों से बाबा के निकट कुछ पूछना चाहते थे, खासकर सूर्य-विज्ञान के बारे में, आज जब यहाँ आये हो, तब बाबा के निकट अपने हृदय की वासना का उन्मोचन करो। बाबा सब दिखा देंगे।"

इतना कहने के बाद माँ ने मेरी ओर देखा। मैं उनकी इच्छा और तात्पर्य समझ गया। मैंने बाबा से कहा—"आपकी जीवनी पढ़कर ज्योतिष बाबू को सूर्य-विज्ञान के बारे में जानने की इच्छा हुई है। सूर्य-विज्ञान क्या है और वह किस रूप में होता है?"

बाबा ने कहा—"सूर्य-विज्ञान योग-विभूति नहीं है। जो लोग समझ नहीं पाते, वे सोचते हैं कि यह योग-विभूति के अन्तर्गत है, पर वास्तविकता यह है कि सूर्य-विज्ञान के साथ योग-विभूति का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। सूर्य-विज्ञान की सृष्टि विज्ञान से हुई है।

योग और इच्छा-शक्ति से सृष्टि होती है अर्थात् ब्रह्मजगत के किसी भी पदार्थ की सृष्टि दो प्रकार से हो सकती है। इन दो प्रकारों में अनेक प्रकार के भेद हैं। सूर्य-विज्ञान में सूर्य की रश्मियों को पहचानते हुए विभिन्न रश्मियों का संघटन किया जाता है और तब सृष्टि की जाती है। सूर्य का अपर नाम 'सविता' है, अर्थात् प्रसव-कर्ता। समस्त जगत को सृष्टि सूर्य से हुई है। इसके द्वारा सृष्टि, पालन एवं संहार सब कुछ होता है।

सूर्य-विज्ञानविद् इन सभी रहस्यों को कब्जे में ला सकते हैं। उसके

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रहस्यों को जानने के बाद उन्हें मिलाया जाता है। सम्मिश्रण की शुद्ध प्रणाली सीखने के बाद इच्छा के अनुरूप वस्तु सृष्टि की जा सकती है। नाना प्रकार की क्रिया भी सम्भव होती है। इससे योगी की आत्म-शक्ति पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता। यदि इच्छा-शक्ति के प्रभाव से कोई सृष्टि करना पड़े, तो उपादान बाहर से लेना सम्भव नहीं होता। उसे आत्मस्वरूप से लेना पड़ता है। इसी प्रकार सूर्य-विज्ञान में सूर्य रश्मियों से उपादानों का संग्रह करना पड़ता है। उसी प्रकार चन्द्र-विज्ञान चन्द्र से, वायु-विज्ञान वायु से, शब्द-विज्ञान शब्द से ही उपादान संग्रह करना पड़ता है। इच्छा-शक्ति के माध्यम से जो सृष्टि होती है, उसके लिए किसी प्रकार का उपादान कभी नहीं लिया जाता। वह आत्मा ही उपादान के रूप में परिणत हो जाता है। इसीलिए योग अर्थात् इच्छा-शक्ति से सृष्टि करना विशेष रूप से निषिद्ध है। इससे आत्मिक हानि होती है। यद्यपि इसकी क्षतिपूर्त्ति हो जाती है तथापि उक्त योगी की इष्टसिद्धि में बाधाएँ आती हैं।

अगर सूर्य-विज्ञान के द्वारा सृष्टि होती है, तो किसी प्रकार की आत्मिक उन्नति की हानि होने की सम्भावना नहीं रहती।"

इतना कहने के बाद बाबा ने अपने पुराने शिष्य दुर्गाकान्त राय से कहा—"भीतर से लेन्स ले आओ।"

दुर्गाकान्त बाबू अवकाशप्राप्त जज थे। पेन्शन लेने के बाद से बाबा के पास रहते हैं। बाबा के आदेशानुसार 'ज्ञानगंज' से एक लेन्स ले आये। बाबा उस लेंस के माध्यम से विभिन्न प्रकार की रश्मियाँ निकाल कर नाना प्रकार के दृश्य दिखाने लगे।

पहले नाना प्रकार के गन्धों की सृष्टि उन्होंने की। अनेक प्रकार फूल बनाये। उससे कपूर, केसर आदि पैदा किये। ज्योतिष बाबू सूर्य-रश्मि के द्वारा उत्पन्न भौतिक सत्ता सम्पन्न स्थूल वस्तुओं की उत्पत्ति देखकर विस्मित रह गये।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

माता आनन्दमयो ने कहा— 'पिताजी, यह तो प्रकृति की शक्ति की लीला है और एक प्रकार से माया का अलौकिकत्व है।"

बाबा ने कहा—"हाँ, माया तो है ही। समस्त विश्व सृष्टि ही महा-माया से आवृत्त है। क्या इसमें कोई सन्देह है ?"

माता आनन्दमयी ने कहा—"एक माया के धक्के से ये लोग मोहित हो जाते हैं, फिर क्यों माया के ऊपर माया दिखा रहे हैं। माया दूर कर दीजिए।"

मैं वहाँ खड़ा था। माँ ने मेरी ओर देखते हुए कहा—"पिताजी को पकड़ो। आप के पास परमवस्तु रखी है। आपने ढक्कन के ऊपर ढक्कन रखकर आवरण कर रखा है।" इसके बाद बाबा से कहने लगीं—"अब आवरण में आबद्ध मत रखिये। सभी प्रकार के आवरण को मुक्त कीजिए। परमवस्तु का द्वार खोल दीजिए।"

बाबा ने कहा—"बेटी, मैं तो देने के लिए आया हूँ। देने के लिए प्रस्तुत हूँ। दोनों हाथ फैला रखा है, पर लेगा कौन ?" इतना कहने के बाद वे हँसने लगे।

इसके बाद अन्य अनेक बातें हुईं। बाद में बाबा ने कहा—"इन लोगों को जलपान दो।" इसका प्रबन्ध करके रखा गया था। माता आनन्दमयी से उन्होंने कहा—"पिता के घर आयी हो, कुछ खाना पड़ेगा।"

माता आनन्दमयी ने कहा—"ये लोग मुझे यहाँ खिला-पिलाकर लाये हैं।"

यह बात सुनकर बाबा ने सोचा कि माता आनन्दमयी यहाँ कुछ खाना नहीं चाहती। पुनः उन्होंने पूछा—"बेटी, क्या तुम कुछ भी नहीं खाओगी ?"

माँ ने कहा—"खाऊँगी क्यों नहीं ? छोटी लड़की क्या पिताजी के यहाँ नहीं खाती ? किन्तु इस लड़की की एक जिद् है। यह लड़की अपने हाथ से नहीं खाती, इसे खिलाना पड़ेगा।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसके बाद एक प्लेट से कुछ फल लेकर बाबा कुर्सी से उठकर खड़े हो गये। माँ भी उठकर खड़ी हुईं। बाबा की इच्छा थी कि पहले मिठाई उठाकर माँ के मुँह में डाल देंगे, पर उसके पहले ही माँ ने उस मिठाई को उठाकर बाबा के मुँह में डाल दिया।

किसने पहले मिठाई डाली, यह समझ में नहीं आया। शायद दोनों ही व्यक्तियों ने एक साथ परस्पर को मिठाई खिलायी। यह दृश्य देखकर सभी लोग हँसने लगे। जब सभी लोगों का जलपान समाप्त हुआ, तब माँ ने कहा—"अब यह लड़की जाना चाहती है। अब अनुमति दीजिए, जाऊँ।"

बाबा ने भावपूर्ण शब्दों में कहा—"लड़की जब जा रही है, तब इस बूढ़े बाप को कभी न भूले।"

माता आनन्दमयी के साथ यहीं से मेरी घनिष्ठता बढ़ी। मैं उन्हें जगदम्बा का स्वरूप समझता था। आज चालीस वर्षों से मेरा उनके साथ सम्पर्क बना हुआ है।

माता आनन्दमयी के साथ परिचय होने के बाद से आनन्दमयी संघ द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'आनन्दवार्ता' के प्रत्येक अंक में मेरा निबन्ध प्रकाशित होता था। इसके अलावा माँ के संदेश (अमरवाणी) की मेरे द्वारा की गयी व्याख्या प्रकाशित होती थी। बाद में उन निबन्धों का संकलन करके आनन्दमयी संघ द्वारा पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित होता था। उक्त पुस्तक की भूमिका मैंने लिखी थी।

माँ के सम्बन्ध में धारणा और विश्वास मेरे हृदय की वस्तु है जिसे निर्विचार किये अन्य लोग ग्रहण करने के लिए बाध्य नहीं हैं। इस विषय पर दूसरों के साथ तर्क करना सम्भव नहीं है। जो चीज हृदय में छिपाकर रखनेवाली वस्तु है, उसे बाहर निकालकर चर्चा का विषय बनाने के लिए मन गवाही नहीं देता। माँ स्वरूप में भावातीत, महाभाव स्वरूपिणी, माँ अनन्त प्रकार से अनन्त भावों का संगम एवं उद्गम होते हुए भी समस्त

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भावों की अतीत हैं। माँ के इस तुरीयातीत स्वरूप को कौन ग्रहण कर सकता है ? माँ को पहचानने के लिए माँ के चरणों में आत्मसमर्पण करते हुए, उनके साथ एकात्मबोध प्राप्त करना पड़ेगा। माँ से अलग रहकर माँ का परिचय पाना कभी सम्भव नहीं होगा।

काशी, विंध्याचल, रायपुर, वृन्दावन, राजगीर, बम्बई, सोलन, पूना, अलमोड़ा, हरिद्वार आदि स्थानों में माँ के साथ मैं था। उनके साथ विभिन्न विषयों पर बातें कर चुका हूँ। सन् १९४९ ई० की बात है, उन दिनों विंध्याचल आश्रम पूर्णरूप से प्रतिष्ठित नहीं हुआ था। उस समय माता आनन्दमयी ने मुझे विंध्याचल जाने का निमंत्रण दिया। इस आमंत्रण को पाते ही मैं विंध्याचल गया। उन दिनों निशाकाल में वृक्ष के नीचे बैठकर माता आनन्दमयी के सामने अखण्ड महायोग के बारे में चर्चाएँ करता था।

७ सितम्बर, सन् १९२८ को माँ से तत्त्वंकथा पर सूत्रपात हुआ। इसके बाद अनेक दिन, अनेक स्थानों पर तत्त्वकथा होती थी। माता आनन्दमयी सभी के प्रश्नों का उत्तर देती थीं। अक्सर चर्चा चलने पर वे कहतीं—"कोई कुछ भी करे, सब साधना है। इस संसार के बन्धन से अगर मुक्त होना चाहते हो, तो उन्हें बाँध लो। इस संसार को बाँध लो। बाद में वह अपने आप कट जायगा। माया—मोह—प्यार। अभी गृहस्थी के प्रति प्यार है, इसे उलटकर उनकी ओर लगाओ। उनसे प्यार करो। उनके प्रति माया दिखाओ। फिर संसार से माया छूट जायगी। बाद में माया नहीं रहेगी।"

प्रश्न—"मैं बड़ा हूँ या इष्ट बड़ा है ?"

उत्तर—"तुम्हारा क्या ख्याल है ?"

प्रश्न—"मेरा ख्याल है कि मैं बड़ा हूँ, क्योंकि इष्ट मुझमें लीन हो जाता है, पर मैं तब भी रहता हूँ।"

उत्तर—"मैं अभी यह नहीं कहूँगी। मैं कहूँगी कि अभी भी इष्ट बड़ा है तुम्हारे लिए। अभी वह स्थिति नहीं आयी है, जब तक मैं और इष्ट का

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पृथक बोध है तब तक इष्ट बड़ा है। जब पृथक-बोध नहीं रहेगा, तब दोनों एक हो जायेंगे। उस समय एक ही रहेगा, एकमात्र वही रहेगा, वही मैं। लेकिन अभी अगर 'मैं' में विश्राम करने लगोगे, तो तुम्हारी गति रुक जायगी। फिर विकास नहीं होगा। जब तक गुरु-शिष्य का बोध रहता है, तब तक गुरु ही बड़ा होता है। जब दोनों एक हो जायेंगे, तब उस समय कोई बाधा नहीं रहेगी।"

प्रश्न—"माँ, कभी-कभी अपने को देखा जाता है ? अच्छी तरह देखा है कि मैं अपने शरीर को देख रहा हूँ। उस स्थिति में कौन देखता है ?"

उत्तर—"वह अभ्यास मात्र है, प्रकृत द्रष्टा नहीं। जब सामने कीर्तन होता है, तब ऐसा लगता है जैसे मैं सभी के साथ मिल गया हूँ। मानो शब्दमय होकर शब्द सुन रहा हूँ; मानो सभी के साथ मिलकर सभी को देख रहा हूँ। उनके बीच अपना शरीर भी देखा जाता है। यह सब आभास मात्र है। वास्तविकता नहीं।"

प्रश्न—"द्रष्टा और साक्षी में क्या अन्तर है ?"

उत्तर—"दोनों ही एक हैं।"

प्रश्न—"तब पृथक नाम क्यों हैं ?"

उत्तर—'तुम'—'मैं' पृथक नाम क्यों हैं ? व्यवहार में वैसा होता है। मूल में एक है।"

प्रश्न—"तुलसीदास ने वृन्दावन जाकर श्रीकृष्ण का रूप-दर्शन करने के बाद कहा था—'मैं तुम्हारा यह रूप नहीं देखूँगा। तुम वंशी को छोड़कर धनुष-बाण हाथ में लो, मेरे सामने राम के रूप में प्रकट हो।' तुलसीदास ज्ञानी व्यक्ति थे। आखिर उन्होंने ऐसा क्यों कहा ?"

उत्तर—"यह एकाग्रता दिखाना मात्र है। अन्यथा वे जानते थे कि सभी रूप एक ही हैं। अगर ऐसा न होता, तो उन्होंने यह कैसे कहा—'तुम्हारा यह रूप नहीं देखूँगा।' यह तुम कौन हो ? यह वही है जिसका

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

रूप वंशीधर का रूप है, धनुर्धारी रूप है। उन्होंने स्वरूप में यही देखा था। यही वजह है कि उनकी प्रार्थना पर कृष्ण रामरूप में आविर्भूत हुए। मूल को एक रूप में न देखने पर ऐसा नहीं होता।"

प्रश्न—"मन की चंचलता कैसे समाप्त होती है?"

उत्तर—"एक जगह चुपचाप बैठे रहने की आदत डालो। पुरवा में पानी हिलता है और जब पुरवे को स्थिर करके रख दिया जाता है, तब शान्त हो जाता है। इसी प्रकार दीर्घकाल शरीर स्थिर रखने पर मन अपने आप स्थिर हो जाता है।"

प्रश्न—अगर साधक के शरीर का अस्तित्व साधना के ख्याल के साथ-साथ स्वीकार किया जाय, तो शरीर के सभी संस्कार साधारण मनुष्यों के सत् संस्कारादि के अनुरूप हो जाने चाहिए। अगर ऐसा होता है, तो साधना के क्रमिक विकास के प्रभाव से सभी संस्कार क्षीण और अन्त में नष्ट हो जाते हैं। इसके साथ साधक-देह को सिद्धि-प्राप्ति की सम्भावना रहती है। क्या यह बात सही है?

उत्तर—जीव-जगत के जन्म-कर्म में संस्कारादि स्थूल कारण हैं, पर आप लोगों की दृष्टि में साधक देह, साधना, सिद्धि सब दिशा मात्र हैं। जहाँ तुम लोग यह कह रहे हो कि कुछ भी नहीं छूटता, वहाँ पुनः सोचकर देखो। पिताजी, जिधर से जो कुछ कहोगे, अखण्ड में सब कुछ सम्भव है, उसमें यह सब तुम लोगों की दृष्टि की बात है। प्रश्न कहाँ उठता है, एक बात में सभी खोते हैं, पाते हैं जो खोकर पाना है। खोने-पाने का जहाँ प्रश्न नहीं है, वहाँ जो कहोगे, वही सही। इस तरह की बातें तुम लोग बजा लेते हो। जैसा बजाओगे, वैसा सुनोगे।"

इसी प्रकार विभिन्न स्थानों में विभिन्न समय पर हम लोगों को तत्त्वकथा सुनाया करती थीं।

सन्तानवत्सला माँ हर तरह से मेरा कल्याण और मंगल करती रहीं। सन् १९६१ में जब मुझे कैंसर हुआ था, तब इस भयंकर रोग के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इलाज के लिए माँ ने प्रबन्ध किया था। पीड़ित अवस्था में माँ मुझे दिल्ली ले गयीं। वहाँ जाँच कराने के बाद अपने साथ बम्बई ले गयीं। वहाँ विश्वप्रसिद्ध कैंसर चिकित्सक डाक्टर ब्रजेश्वर के द्वारा शल्य चिकित्सा करवायीं। फलस्वरूप मैं सम्पूर्ण रूप से आरोग्य हुआ। उन दिनों एक ओर माँ आनन्दमयी की करुणा का अनुभव करता रहा और दूसरी ओर दीदी माँ (माता आनन्दमयी की माँ) को देखने का अवसर मिला। शिष्यों द्वारा प्रदत्त राशि अपने मन से निकालकर मेरी बराबर सहायता करती रहीं। इसके बाद सन्तानवत्सला माँ ने प्रतिवर्ष बम्बई में चेकअप कराने का सुप्रबन्ध करवाया था। यह सब माँ की करुणा थी।

श्री गुरुदेव के अलावा माँ की तरह इस संसार में मेरा और कोई नहीं है।*

*कविराजजी का शेष जीवन माता आनन्दमयी के भदैनी, वाराणसी, स्थित आश्रम में बीता।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१५

मधुसूदन ओझा

सन् १९०६ में ढाका जुबली स्कूल से इंट्रेंस-परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद दुरारोग्य मलेरिया से पीड़ित हुआ और काफी कमजोर हो गया। ढाका में पढ़ने गया था और कालेज में भर्ती हुआ था, पर बार-बार ज्वर से पीड़ित होने के कारण एक वर्ष के लिए पढ़ाई छोड़ने को बाध्य होना पड़ा। हवा-पानी बदलने पर काफी दिनों के बाद स्वस्थ हुआ। उस समय इच्छा हुई और कुछ लोगों ने सलाह दी कि पछाँह के किसी शहर में जाकर अध्ययन करूँ। कहाँ जाऊँ, कोई निश्चित नहीं था। दूसरी ओर आर्थिक कठिनाई सामने खड़ी थी। यही कारण है कि मैं कलकत्ता भी नहीं जा सका। वहाँ भी शुद्ध जलवायु के अभाव में ज्वर से पीड़ित होने का भय बना हुआ था।

अपने एक मित्र के साथ जेठ के महीने में घर से पैदल टाँगाइल आया। टाँगाइल मेरे गाँव दान्या से ३-४ मील की दूरी पर है। टाँगाइल में पी० एम० कालेज था जहाँ एक विशिष्ट महात्मा का दर्शन करने गया था। यह महात्मा थे—उक्त कालेज के प्रिंसिपल रामदयाल मजुमदार महाशय। मजुमदार महाशय मेरे पिताजी के सहपाठी और अन्तरंग मित्र थे। मेरी विधवा माता और मेरी शिक्षा के बारे में शायद वे सब कुछ जानते थे। बातचीत के सिलसिले में मेरी पढ़ाई-लिखाई की चर्चा चलने पर उन्होंने कहा—"तुम काशी जाकर पढ़ो। वहाँ सभी विषयों की सुविधा होगी। ननी (उनका साला) वहाँ है। मैं उसे पत्र लिख दे रहा हूँ। जाने के पहले उसे एक तार भेज देना। वह स्टेशन आकर ले जायगा और सारी व्यवस्था कर देगा। नारद घाट पर रहता है।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

काशी में उन दिनों बुखार फैला था, इसलिए वहाँ नहीं जा सका। अगर पछांह के किसी शुष्क नगर में जाया जाय तो मलेरिया के आक्रमण से रक्षा हो सकती है और स्वास्थ्य सुधर सकता है।

एक दिन द्रान्या में रहते समय 'बान्धव' पत्रिका में प्रकाशित यात्रा सम्बन्धी एक लेख पढ़ रहा था जिसमें राजपूताना के अन्तर्गत जयपुर नगर का उल्लेख था। लिखा था कि नगर अत्यन्त रमणीक है। उसे इस ढंग से बसाया गया है कि ऐसा नगर भारत में अन्यत्र कहीं नहीं है। इस नगर का प्लान आज से दो सौ वर्ष पूर्व बंगाली कलाकार विद्याधर चक्रवर्ती (भट्टाचार्य) ने बनाया था। कहने का मतलब इस नगर से बंगालियों का घनिष्ठ सम्पर्क है। लेख में यह भी बताया गया है कि यशोहर नायक वीर प्रतापादित्य की इष्टदेवी यशोरेश्वरी अभी तक जयपुर की राजधानी अम्बर में प्रतिष्ठित हैं जहाँ उनकी पूजा होती है। जयपुर नगर से बंगाल का इतना गहरा सम्बन्ध है। बंगाल में गोविन्ददेव की पूजा श्रद्धा के साथ की जाती है। औरंगजेब के अत्याचार से भयभीत होकर वृन्दावन से गोविन्ददेव को जयपुर लाया गया था। देवविग्रह के साथ उसके पूजक बंगाली गोस्वामी भी यहाँ आये थे। ये लोग सनातनी गौड़िय गोस्वामी हैं। बंगाल के साथ जयपुर के संबंधों का यही इतिहास है। श्री धर्मानन्द के लेख से यह भी ज्ञात हुआ कि अभी तक जयपुर में बंगालियों का प्रभाव है। वहाँ के दीवान रायबहादुर संसारचन्द्र सेन, महाराजा के प्राइवेट सेक्रेटरी और कालेज के प्रिंसिपल बंगाली हैं। सबसे बड़ी बात यह रही कि वहाँ फीस नहीं देनी पड़ती। शिक्षा-विभाग सारा व्यय देता है। टाड द्वारा लिखित राजस्थान का इतिहास पढ़कर राजपूताने के प्रति मेरा आकर्षण बढ़ गया था। इन सभी बातों पर विचार करते हुए मैंने सोचा कि अगर कोई सामयिक बाधा न आयी तो जयपुर जाना मेरे लिए उचित होगा।

रेगिस्तानी प्रदेश सूखा होता है अतएव वहाँ मलेरिया की आशा नहीं

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। रेलवे गाइड से मैंने जयपुर के बारे में अनेक तथ्य संग्रह किये थे। इसके बाद १४ जुलाई, सन् १९०६ के दिन जयपुर की ओर रवाना हुआ। जयपुर रात के अन्तिम पहर में पहुँचा। चाँदपोल गेट से नगर के भीतर आया। यहाँ कालेज के उप प्रिंसिपल मेघनाथ भट्टाचार्य महाशय से परिचय हुआ। आप कलकत्ता संस्कृत कालेज के अध्यक्ष महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री के छोटे भाई थे। महाराजा के दीवान संसारचन्द्र सेन के घर रहते हुए मैं अध्ययन करता रहा। कालेज में अंग्रेजी के अध्यापक थे—नवकृष्ण राय। आप ब्रजेन्द्रनाथ शील के प्रियपात्र थे। आचार्य शील कूचबिहार विक्टोरिया कालेज के अध्यक्ष बनने के पूर्व जब बहरमपुर कालेज में थे तभी से आप उनके सान्निध्य में आये। संसारचन्द्र सेन के ज्येष्ठ पुत्र अविनाशचन्द्रसेन महाराज के सहायक सचिव थे। सचिव ने मोतीलाल गुप्त। एकाउण्टेण्ट जनरल थे—सत्येन्द्रनाथ मुखोपाध्याय। आप प्रसिद्ध धर्म-प्रचारक अमेरिका प्रवासी प्रेमानन्द भारती के भाई थे। प्रेमानन्द भारती अमेरिका से 'लाइट आफ इण्डिया' नामक एक पत्रिका का सम्पादन करते थे। आपने 'श्रीकृष्ण' नामक एक उत्कृष्ट ग्रन्थ लिखा है।

जयपुर शहर में एक वृहद पुस्तकालय है। यहाँ अनेक अप्राप्य पुस्तकों का संग्रह है। इंगलिश चैनल के इस पार क्रिश्चियन थियोलाजी के बारे में इतनी पुस्तकें अन्य किसी पुस्तकालय में नहीं हैं। इसके अलावा अन्य विषयों की पुस्तकों का विशाल संग्रह था। अंग्रेजी के अलावा, इतिहास, दर्शन, आर्कियोलाजिकल विभाग से प्रकाशित पुस्तकें, इसके गौरव थे। सबसे बड़ी खूबी यह थी कि अनेक हस्तलिखित पोथियों का विशाल संग्रह था।

उन दिनों मैं सभी की जबानी एक महापुरुष का नाम सुना करता था। वे थे—मधुसूदन ओझा विद्यावाचस्पति। वे महाराजा के व्यक्तिगत पुस्तकालय के प्रधान थे। इस ग्रन्थालय में काफी संख्या में पुस्तकें और

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पाण्डुलिपियाँ थीं। इस पुस्तकालय से साधारण पाठकों को पुस्तकें नहीं दी जाती थीं। बिना अनुमति के कोई भी व्यक्ति पुस्तक प्राप्त नहीं कर पाता था। यहाँ तक कि अभिज्ञ व्यक्तियों को पुस्तकें मिलने में कठिनाई होती थी। मधुसूदनजी इन दुष्प्राय पुस्तकों का अध्ययन कर चुके थे। ओझाजी के बारे में यह बात मशहूर थी कि वे प्राचीन भारत के अनेक लुप्त ग्रन्थों के जानकार हैं। आप प्राचीन विज्ञान के बारे में, इन पाण्डुलिपियों का अध्ययन करने के बाद, विभिन्न ग्रन्थ तैयार कर चुके हैं। लेकिन तबतक उनके नाम से न कोई ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था और न उसका नाम हुआ था। उस समय तक उनकी एकमात्र पुस्तक 'प्रत्ययन्त प्रस्थान मीमांसा' प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक में हिन्दू-धर्म के विचार में विदेश यात्रा सम्बन्धी पक्ष-विपक्ष के उदाहरण दिये गये थे। मधुसूदन जी कुछ दिन पूर्व जयपुर नरेश के साथ इंगलैण्ड गये थे। प्रस्तुत पुस्तक की रचना इसी प्रसंग को लेकर हुई थी।

जिन दिनों मैं संसारचन्द्र के घर रहता था, वहाँ कभी-कभी किसी प्रकार की व्याख्या या चर्चा करने के लिए ओझाजी आते थे। उन्हें निकट से देखने का सौभाग्य वहीं होता था। मेरे दो परिचित साथियों पण्डित आद्यादत्त ठाकुर और पण्डित लक्ष्मणदत्त ओझा से मधुसूदनजी की घनिष्ठता थी। ये लोग ओझाजी से लोकोत्तर विद्या की कहानी सुनने आया करते थे। उनके द्वारा लिखित 'इन्द्र विजय' और 'सौदामिनी विजय' नामक दो पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं।

इन दोनों महात्माओं और मधुसूदनजी का मुझपर स्नेह था, पर कुछ कारणवश इससे मेरी घनिष्ठता नहीं हुई थी। बाद में जिन दिनों मैं काशी में रहने लगा और पण्डित आद्यादत्त ने लखनऊ विश्वविद्यालय का चार्ज लिया, उन दिनों ओझाजी के साथ मेरी घनिष्ठता हुई थी। सम्भवतः यह सन् १९२४ के आसपास की बात है। उन दिनों मधुसूदन ओझाजी काशी आये हुए थे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इन्हीं दिनों मेरे गुरुदेव काशी में रहते हुए सूर्य-विज्ञान के विभिन्न स्तरों का, रश्मियों के द्वारा विश्लेषण कर रहे थे। किसी व्यक्ति ने ओझाजी को बताया कि बाबा किस प्रकार सूर्य-रश्मि-प्रणालियों का प्रयोग कर रहे हैं। सारी बातें सुनने के बाद ओझाजी ने कहा कि सूर्य रश्मियों के विन्यास की बातें वे अपनी पुस्तक 'इन्द्र विजय' में लिख चुके हैं। लेकिन प्रत्यक्ष अनुभव उन्होंने कभी नहीं किया है। उन्हें विश्वास था कि वैदिक युग के ऋषिगण सरस्वती नदी के किनारे इस दिशा में खोज करते रहे। सूर्य-विज्ञान के प्रति उनकी दिलचस्पी देखकर उनकी इच्छा-पूर्त्ति के लिए मैं उन्हें बाबा के पास ले गया। बाबा को ओझाजी की उत्सुकतावाली बातें बतायी। बाबा ने सादर अपनी स्वीकृति दी।

मधुसूदन ओझाको आमंत्रण भेजा गया। इसके बाद उन्हें सूर्य-रश्मियों का धारावाहिक विश्लेषण करके दिखाया गया। किन-किन रश्मियों के संयोग से किस-किस वस्तुओं की सृष्टि हो सकती है। मधुसूदनजी के अनुरोध पर रश्मियों के माध्यम से कर्पूर, जाफरान आदि प्रस्तुत किया गया।

यह सब दृश्य देखकर मधुसूदन ओझाजी चकित रह गये थे। स्वामीजी को प्रणाम करते हुए उन्होंने कहा—"इस तरह का विज्ञान प्रथम बार देख रहा हूँ। सृष्टि-प्रक्रिया के इस रहस्य को मैंने कभी नहीं देखा था। प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन तथा रश्मियों के माध्यम से सृष्टि रहस्यों की जानकारी हो गयी थी। रश्मियों के संयोग और वियोग से यह सम्भव है, यह सब हृदय में विश्वास के रूप में था और आज जबकि उसे प्रत्यक्ष रूप में देखा इसके लिए मैं आभारी हूँ।"

बाबाजी भी ओझाजी के ज्ञान की प्रशंसा करते रहे।

इस सिलसिले में बंगाल के पण्डित शशधर चूड़ामणि की बातें याद आती हैं। आप परमहंस रामकृष्ण के समकालीन थे। ब्राह्मण-धर्म के प्रादुर्भावकाल में, उन्होंने हिन्दू-धर्म के सम्बन्ध में व्याख्या की थी। उनके

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सभी व्याख्यान लोकप्रिय हुए थे। काशी में उनका दर्शन कर चुका हूँ। उस समय वे काफी वृद्ध हो गये थे। आपके एक शिष्य श्री यतीन्द्र मोहन सिंह बड़े अच्छे लेखक थे। संस्कृत में उन्होंने 'चूड़ामणि-दर्शन' नामक ग्रन्थ लिखा था जिसे संशोधित कर मैंने प्रकाशनार्थ दिया था। उसका कुछ अंश काशी में प्रकाशित हुआ था। इसके बाद गुरु-शिष्य दोनों का स्वर्गवास हो जाने के बाद आगे का विवरण नहीं छप सका था। इसमें धर्मतत्त्व की आलोचना वैज्ञानिक ढंग से की गयी थी।

मधुसूदन ओझा और पण्डित शशधर तर्कचूड़ामणि दोनों महाशयों के विचारों को पढ़ने के बाद मैं इस निष्कर्ष में पहुँचा हूँ कि दोनों में प्रक्रियागत एवं दृष्टिगत भेद है। मधुसूदनजी विज्ञान की प्राचीन परिभाषा को मानते थे। उसे वे विशेषण के माध्यम से प्रकट करते थे। लेकिन शशधर तर्कचूड़ामणि महाशय पाश्चात्य प्रणाली के अनुसार व्याख्या करते थे। हिन्दू-धर्म के प्रति दोनों व्यक्तियों की आस्था, थी और वे मौलिक वैज्ञानिकता अत्यन्त निष्ठा के साथ और स्वीकार करते थे, फिर भी दोनों में अन्तर था।

मधुसूदनजी के शिष्यों में अधिकतर विद्वान थे। महामहोपाध्याय पण्डित गिरधरशर्मा चतुर्वेदी इनमें अद्वितीय थे।

●

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१६

मेहेर बाबा

इस नाम से मैं काफी दिनों से परिचित था। पाल ब्रण्टन की 'सर्च इन सिक्रेट इण्डिया' नामक पुस्तक में सर्वप्रथम इनका नाम देखने में आया। इसके बाद हज़रत बाबाजान, उपासनी बाबा और शिरडी के साईं बाबा के संस्मरणों में मेहेर बाबा का नाम देखा था। आपके कई भक्तों से मेरा परिचय था। आपके आश्रम द्वारा प्रकाशित 'पत्रिका' कई साल तक लगातार पढ़ता रहा। सूफी सम्प्रदाय के बारे में मुझे कौतूहल था। यहाँ तक कि कई साधकों की जीवनी पढ़कर अपनी उत्सुकता की निवृत्ति की थी। इन जीवनियों में आपकी भी जीवनी थी। आपके तथा आपके शिष्यों द्वारा लिखित अनेक लेख पढ़कर आपके बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर चुका था। अन्तिम पुस्तक थी—'गॉड स्पीक्स'।

इस पुस्तक को पढ़ने के बाद मेहेर बाबा को देखने की तीव्र इच्छा हुई, पर समयाभाव के कारण मेरी इच्छा पूर्ण नहीं हो सकी। इसके बाद जब मैं पूना गया तब उनके दर्शन का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ।

माता आनन्दमयी के आह्वान पर मैं सन् १९६० ई० के जून माह में पूना गया। वहाँ जाने पर पता चला कि मेहेर बाबा यहाँ हैं। उनके साथ मुलाकात हो सकती है या नहीं, इस बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए मेहेर बाबा के पास एक व्यक्ति को भेजा था। उसने आकर बताया कि मेहेर बाबा सोमवार और गुरुवार को मौन रहते हैं। आपका नाम सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। कल सोमवार को आने की आज्ञा दी है।

मेहेर बाबा के इच्छानुसार मैं सबेरे ८ बजे उनके यहाँ गया। देखा —वे मौन अवस्था में हैं। फलतः न तो कोई बातचीत हो सकी और न

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कोई प्रश्न पूछ सका। बाबा की ओर से अनुरोध हुआ कि आगामी कल यानी मंगलवार को पुनः ८ बजे सबेरे आऊँ। बाबा के अनुरोध पर दूसरे दिन सीताराम को लेकर सबेरे ८ बजे बाबा के यहाँ गया। बाबा मेरे आने की प्रतीक्षा में बैठे थे।

भेंट होते ही उन्होंने मुझे अपनी बाँहों में भरते हुए मस्तक को चूम लिया। इसके बाद मेरे कन्धे पर हाथ रखकर मुझे एक विशेष कक्ष में ले गये यह कक्ष खाली और निर्जन था।

यहाँ आकर बाबा अपने स्थान पर बैठे। मैं अन्य आसन पर बैठा। वहाँ दोभाषिया के आलावा अन्य कोई नहीं था। उस कमरे में बैठने के बाद दरवाजा बन्द कर दिया गया ताकि बाहर से विक्षेप न आ सके।

बाबा ने मौन वार्ता आरम्भ की। बीच-बीच में हाथ चलाते हुए विभिन्न प्रकार से इंगित करते रहे और अपना भाव व्यक्त करते रहे। इसका अर्थ समझने में मैं असमर्थ था। दोभाषी मुझे उसका अर्थ अंग्रेजी में समझाता रहा। मैं भी अंग्रेजी में जवाब दे रहा था।

बाबाजी प्रत्युत्तर में पूर्वोक्त पद्धति से अपने विचार व्यक्त कर रहे थे। दोभाषी मुझे उसका अनुवाद करके बता रहा था। इसी प्रकार की बातें होती रहीं। कभी-कभी बाबाजी के वक्तव्य का भ्रमपूर्ण अनुवाद करने पर बाबाजी उसे शुद्ध कर देते थे। इसके बाद संशोधित उत्तर प्राप्त होता था। इस प्रकार एक घण्टे तक बाबाजी के साथ गूढ़ रहस्यों पर बातें होती रहीं।

बातचीत के माध्यम से यह जानकारी हुई कि यह महात्मा जरो आस्ट्रीयन मतावलम्वी हैं और पारसी हैं। पाँच वर्ष की उम्र में आप स्कूल में भर्ती हुए थे। स्वाध्यायकाल में आप मेधावी छात्र थे। सत्रह वर्ष की उम्र में आप मैट्रिक पासकर पूना के डेकेन कालेज में भर्ती हुए थे। दो साल पढ़ने के बाद एक दिन शाम के समय साइकिल पर सवार होकर अपने परिचित मुसलमान महिला फकीर हजरत बाबाजान के घर के समीप

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

से गुजर रहे थे। हजरत बाबाजान का उम्र उन दिनों एक सौ वर्ष थी। मेहेर बाबा साइकिल पर सवार होकर ज्योंही उनके घर के पास से गुजरे त्योंही हजरत बाबाजान ने इशारे से उन्हें अपने पास बुलाया। जब मेहेर बाबा उनके पास पहुँचे तब बाबाजान ने उन्हें गले लगाते हुए कपोल चूम लिया।

मेहेर बाबा ने कहा—"उस दिन के पहले तक मैं अन्य सभी लड़कों की तरह था। हजरत बाबाजान ने मेरी आँखें खोल दीं। उनके चुम्बन ने मेरे जीवन को बदल दिया। मुझे ऐसा लगा जैसे सारा विश्व चराचर मानो शून्य में विलीन होता जा रहा है। मैं अकेला हूँ, केवल ईश्वर के साथ मैं अकेला हूँ। महीने के बाद महीना गुजरता गया। मेरी आँखों में नींद नहीं आ रही थी, फिर भी मैं दुर्बल नहीं हुआ। पहले की तरह था, पिताजी समझ नहीं पाये। वे सोचते रहे कि मैं पागल हो गया हूँ। एक के बाद एक डाक्टर दिखाते रहे। वे दवा तथा इंजेक्शन देते थे, पर वे सभी मुझे गलत समझ रहे थे। उन दिनों मैं ईश्वर-चेतना में अभिभूत था। यह रोग किसी दवा से ठीक होने वाला नहीं था। मैं बाह्य जीवन से विच्युत हो हो गया था। काफी दिनों बाद मैं स्वाभाविक रूप में आया।"

ज[illegible] मेहेर बाबा पूर्ण रूप से स्वाभाविक अवस्था में आये तब तक उनके मूल चरित्र की विशिष्टता दूसरी प्रकार की हो गयी थी। पढ़ने-लिखने का उत्साह, भविष्य की चिन्ता, खेलकूद में आग्रह दिखाना आदि सब कुछ गायब हो गया था। इसकी जगह उनमें धार्मिक जीवन के प्रति उत्साह बढ़ता गया। हर वक्त आध्यात्मिक चर्चा करने लगे।

इस परिवर्तन का मूल कारण मुसलमान फकीर हजरत बाबाजान का चुम्बन ही रहा—ऐसा उनका विश्वास था। उस मुसलमान फकीर के पास आध्यात्मिक गुरु को तलाश में गये थे। इस फकीर ने इशारे से उपासनी महाराज के पास जाने को कहा था। उपासनी महाराज ने अपने आश्रम में मेहेर बाबा को ठहराया और दीक्षा दी।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विश्व सौहार्द्र भ्रातृत्व, शान्तिपूर्ण सहवस्थान, गरीबों के प्रति सहानुभूति, ईश्वर के प्रति निष्ठा आदि मेहेर बाबा के प्रवचनों के विषय हैं। मेहेर बाबा का कहना था—"सभी धर्मों की मूल बात एक ही है, कारण सभी के मूल में ईश्वर है। मनुष्य के मन से संकीर्ण भेदभाव ज्ञान दूर कर दिया जाय तो वे सारगर्भ सत्य समूह के बारे में एकमत हो सकेंगे।"

थोड़े ही समय में यह समझ गया कि बाबा अन्तर्दर्शी हैं तथा सूक्ष्म मार्ग के ज्ञान से सम्पन्न महापुरुष हैं। जगत का भविष्य, उनके जीवन का लक्ष्य, मनुष्यों क्या के कर्त्तव्य है, इन सभी विषयों पर वे अपने विचार प्रकट कर चुके हैं।

मैंने पूछा—"मेरे बारे में आपका क्या ख्याल है?"

उन्होंने कहा—"आपके बारे में मुझे कुछ नहीं कहना है। आप जो महानिशा करते हैं, वही करते रहिये।"

यह बात सुनकर मैं चौंक उठा। मैं महानिशा करता हूँ, यह बात कोई नहीं जानता, पर इन्होंने कैसे समझ लिया?

इसके बाद कुछ गुह्य विषयों के बारे में उन्होंने मुझे बताया। उन बातों को सुनकर पहले चकित हुआ, बाद में मेरा सारा संशय दूर हो गया।

वहाँ चलते समय उन्होंने 'गाड स्पीक्स' नामक ग्रन्थ और सृष्टि प्रक्रिया सम्बन्धी कुछ चित्र देते हुए कहा—"तुम्हारे साथ मेरा अन्तरंग सम्बन्ध है। उसे धीरे-धीरे जान सकोगे।"

इसके बाद मेहेर बाबा से फिर भेंट नहीं हुई, फिर भी बराबर अन्तरंगता बढ़ती गयी। भीतर अनुभव के द्वारा और बाहर पत्रों के द्वारा उनसे सम्बन्ध दृढ़ रूप में प्रतिष्ठित हुआ था। कभी-कभी अप्रार्थित रूप में उनकी अन्तरंगता को अनुभव के द्वारा समझ लेता था।

●

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१७

सन्तदास बाबाजी

सन् १९१४ के प्रथम विश्वयुद्ध के पहले ही मैं बनारस संस्कृत कालेज के सरस्वती भवन का कार्य भार ग्रहण कर चुका था। इसके एक साल बाद सन् १९१५ में ताराकिशोर चौधुरी लौकिक विषयों को छोड़कर परमार्थ को अपना चुके थे। आपके साथ इन्हीं दिनों मिलने तथा दर्शन करने की इच्छा मेरे मन में हुई थी। लेकिन समयाभाव के कारण मुझे अवसर नहीं मिला।

सन् १८५९ ई० में श्रीहट्ट जिला में ताराकिशोर (सन्तदास बाबाजी) का जन्म हुआ था। मैट्रिक पास करने के बाद वे कलकत्ता चले आये और यहाँ श्रीहट्ट के ही सुन्दरी मोहन दास, विपिनचन्द्र पाल आदि प्रमुख मित्रों के साथ एक ही मेस में रहते हुए अध्ययन करते रहे। छात्रावस्था में ही ताराकिशोर के मन पर ब्रह्मसमाज का प्रभाव पड़ा। फलतः उस दिशा की ओर कार्यरत हुए। कट्टरपन्थी पिता हर किशोर जी उत्तेजित हुए और निश्चय किया कि पुत्र को त्याग देंगे। पिता-पुत्र का आदर्शगत विच्छेद कुछ दिनों तक स्थायी रहा।

पिता हरकिशोर की अस्वस्थता का समाचार पाते ही पुत्र ताराकिशोर काशी में, बीमार पिता के सिरहाने आकर खड़े हो गये। इन दिनों ताराकिशोर मन्दिर, समर्थ साधु और संन्यासियों का दर्शन करते रहे। उन्होंने महायोगी तैलंग स्वामी और भास्करानन्द सरस्वती का सान्निध्य प्राप्त किया। इन दोनों योगियों का दर्शन करने के बाद उनके हृदय में हलचल मच गयी। वे सोचने लगे कि किस साधना के द्वारा महापुरुष लोग एक अलौकिक शक्ति के अधिकारी बन जाते हैं तथा अतीन्द्रिय जगत की वार्ता को मानव-लोक में वहन कर ले आते हैं। इस अनुभूति के बाद

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तारा किशोर का हिन्दूधर्म-व्यवहार तथा शास्त्रों के प्रति विश्वास हढ़ होता गया। धीरे-धीरे वे पुनः हिन्दूधर्म के प्रति आस्थावान होते गये। इसके बाद वे सद्गुरु की तलाश में लगे और अन्त में काठिया बाबा की कृपा उन्हें प्राप्त हुई।

सन्तदास बाबाजी रामदास काठिया बाबा के शिष्य थे। वृन्दावन में सन्तदास बाबाजी प्रसिद्ध सन्त के रूप में थे। जिन दिनों आप कलकत्ता हाईकोर्ट के वकील थे, उन्हीं दिनों काठिया बाबा के शिष्य बन चुके थे और आध्यात्मिक-जीवन व्यतीत करने की चेष्टा करते थे।

अपनी असाधारण प्रतिभा और कर्म कुशलता के कारण आपको हाईकोर्ट के रासबिहारी घोष के समकक्ष माना जाता था। आध्यात्मिकता से मन ओतप्रोत रहने के कारण गलत ढंग से रकम नहीं पैदा करते थे। दूसरी ओर उदारता के साथ दान करते रहने के कारण अर्थ संचय नहीं कर पाते थे। मुकदमे का ब्रीफ पाते ही मुवक्किल से पूछते—'इस मुकदमें में कहीं धोखाधड़ी या झूठ है या नहीं?' अगर इस तरह का मुकदमा होता, तो वे उसे लेने से इनकार कर देते थे। झूठा मुकदमा कभी नहीं लेते थे। मुकदमा स्वीकार करने के बाद उसकी सारी कमजोरियाँ देखते, कानून की बारिकियों की जाँच करते थे। फलतः अदालत में उन्हें कोई परेशानी नहीं होती थी। उन दिनों रासबिहारी घोष की आमदनी आसमान छू रही थी।

अगर विरोधी पक्ष की ओर से ताराकिशोर अदालत में आते, तो रासबिहारी घोष काफी सावधान हो जाते थे। सन् १९१५ में ताराकिशोर जी ने निश्चय किया कि वकालत का पेशा छोड़कर वृन्दावन में अपने गुरु के पास जाकर रहेंगे। हाईकोर्ट की बार लाइब्रेरी की ओर से उन्हें विदाई दी गयी। उस समारोह में सर रासबिहारी घोष ने अपने कनिष्ठ ताराकिशोर का चरण-रज ग्रहण किया। ताराकिशोर ने उन्हें ऐसा करने से मना किया। यह तक कि उनके प्रयत्नों का भरसक विरोध करते रहे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर रासबिहारी घोष ने कहा—"यह ठीक है कि मैं तुम से उम्र में बड़ा हूँ, पर तुम ज्ञानवृद्ध हो मैं बुजुर्ग हो गया हूँ, किन्तु सच-झूठ, वस्तु-अवस्तु, आदि का ज्ञान आज भी नहीं हुआ है। तुम्हें हो गया है, इसलिए तुम सम्भावनापूर्ण जीवन की सभी सुविधाओं को छोड़कर वृन्दावन जा रहे हो। तुम मुझे अपनी चरण-धूलि लेने दो। आज मुझे बाधा मत दो।"

उनके द्वारा रचित 'ब्रह्मवादी ऋषि ओ ब्रह्मविद्या' तथा 'दार्शनिक ब्रह्मविद्या' अध्यात्म-साहित्य के रूप में हमेशा इस देश में समादृत होगा।

ब्रजविदेही सन्तदास बाबाजी के साथ किशोरी भगवान परिचित थे। कलकत्ता निवासकाल में आप दोनों में शास्त्रालोचना बराबर होती थी। कहने की आवश्यकता नहीं है कि किशोरी भगवान उस समय तक भगवान के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हुए थे। बाबाजी भी उन दिनों गृहस्थाश्रम में ताराकिशोर के नाम से प्रसिद्ध थे।

सन् १९२१-२२ में रामदास काठिया बाबा की समाधि-मन्दिर देखने के लिए पुरी गया था। यहाँ आने पर पता चला कि आजकल सन्तदासजी बाबा यहीं हैं। उन्हीं दिनों उनसे मुलाकात हुई। अत्यधिक भीड़ होने के कारण मैं उनसे खुलकर बातचीत नहीं कर सका। आपकी पत्नी उन दिनों काशी में रहती थी जहाँ बाबाजी आये थे। उस समय भी आपका दर्शन पाने की सुविधा नहीं हुई थी।

सन् १९२६ में एक बार मैं अपने एक मित्र के साथ वृन्दावन गया था। उस समय वृन्दावन स्थित उनके आश्रम में गया था। मेरा एक मित्र प्रयत्न करके उनके आश्रम में ले गया था। उस समय वे अस्वस्थ थे, फिर भी मेरे जाने पर उन्होंने मेरा आदर-सत्कार किया था। यहाँ तक कि प्रसाद ग्रहण का प्रबन्ध किया था। इस समय आपके साथ काफी बातचीत हुई थी।

मैंने पूछा था—" महाराज, जीवन्मुक्ति के क्या लक्षण हैं? शास्त्रों में इसके लक्षण बताये गये हैं, पर इस बारे में आप अपने अनुभवों पर प्रकाश डालने की कृपा करें।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बाबाजी ने कहा—"बाहरी लक्षणों से जीवन्मुक्ति, के लक्षणों को समझने का कोई उपाय नहीं हैं। जीवन मुक्त, वस्तुतः जीव-मुक्त हो गया है या नहीं हुआ है, इसे देखने या अनुभव करने का एक सरल उपाय है। वह है आम तौर पर मनुष्य के दोष-गुणों पर विचार करते हुए, इसी आधार पर उसके चरित्र का मूल्यांकन किया जाता है। जो गुणी होते हैं, उनकी प्रशंसा की जाती है, दोषयुक्त होने पर उसकी निन्दा होती है। लेकिन इस ढंग के विचार में दोष रहता है। जबतक अपने कतृत्व का अभिमान रहता है, तबतक जगत में सर्वत्र कतृत्वाभिमान दिखाई देता है। पर जब अपना कतृत्वाभिमान दूर हो जाता है और आगे बढ़ने पर यह अनुभव होता है कि समस्त संसार अभिमान से आवृत्त है अर्थात् बाधाओं में पड़ा है। इसीलिए अच्छा या बुरा कर्मों के कर्ता हैं, अभिमान में बद्ध हैं, समझा जाता है। वास्तव में आत्माभिमान के कारण स्वरूप ऐसे विचार उत्पन्न होते हैं और लौकिक दृष्टि से यही ठीक मालूम पड़ता है। लेकिन दूर हो जाने पर अर्थात् चले जाने के बाद ज्ञात होता है कि कोई भी किसी कर्म का कर्ता नहीं है। कर्ता एक परम पुरुष और एक परम शक्ति है। वे जिस आधार पर जिस प्रकार के कर्म कराते हैं, उसी प्रकार के कर्म होते हैं या कर्म में प्रवृत्ति होती है या तदानुरूप कर्म सम्पादित होता है। इसमें कर्ता को तनिक भी स्वतंत्रता नहीं है। जगत् इसी आधार का वशवर्ती होकर या इस तरह का अनुभव करते हुए दोष-गुणों की विवेचना करता है। जागतिक दृष्टि से यही ठीक मालूम पड़ता है। लेकिन जीवन्मुक्त पुरुषों को ऐसी दृष्टि नहीं होती। वे स्पष्ट रूप से देखते हैं कि सभी कर्मों के कर्ता या वास्तविक कर्तृत्व महाशक्ति के द्वारा ही सम्पादित होता है। जीव कुछ नहीं करता या कर नहीं सकता, अतएव जीवकृत किसी भी कर्म के लिए वास्तव में जीव उत्तर देने में असमर्थ होता है, इसीलिए दुःख-सुख होता है; किन्तु यह लौकिक दृष्टि के अलावा और कुछ नहीं है। अगर गुड़िया ठीक से नाचती रहे, तब उसका महत्व होता है, जो उसे अच्छी तरह नचाता है, वह गुड़िया नहीं है। इस प्रकार की

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दृष्टि मुक्त पुरुषों के अलावा अन्य किसी पुरुष के पास नहीं होती और न ऐसी शक्ति रहती है। अगर इस प्रकार की दृष्टि किसी को मिल जाती है, तो उसे जीवन्मुक्त कहा जाता है। जीवन्मुक्त पुरुष ही एकमात्र महाशक्ति का कर्तृत्व देखता है। यही है जीवन्मुक्तों का स्वरूप और लक्षण।

सन्तदास बाबाजी बड़े उदार महापुरुष थे। आपका संसर्ग पाकर मैं धन्य हुआ हूँ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१८

शोभा माँ

सन् १९३७ में मेरे परमाराध्य गुरुदेव श्री श्री विशुद्धानन्द परमहंस का देहावसान हुआ था। गुरुदेव के देहावसान के दूसरे वर्ष हरिद्वार में पूर्ण कुम्भ मेला हुआ था। वहाँ मैं काफी दिनों तक था। हरिद्वार स्थित कुशावर्त्त घाट के समीप एक धर्मशाले में लगभग दो माह था। उस समय माता आनन्दमयी भी वहाँ आयी हुई थीं। गंगा किनारे डा० पन्त के यहाँ वे ठहरी थीं। मैं उनके यहाँ नित्य जाया करता था।

उन्हीं दिनों सन्तदास बाबाजी के एक शिष्य ब्रह्मचारी शिशिर कुमार राहा भी हरिद्वार में मौजूद थे। वे नित्य मुझसे मिलने के लिए आया करते थे। ब्रह्मचारी शिशिर कुमार राहा एक परम भक्त और धर्मप्राण व्यक्ति थे। २८ मार्च, सन् १९३८ ई० के दिन अचानक एक दिन उन्होंने कहा—"मेरी एक चचेरी बहन के जीवन में आध्यात्मिक परिवर्तन अचानक हुआ है।"

आगे आपने कहा—"उसका (बहन को) १७–१८ वर्ष की उम्र में ही ब्रह्म से साक्षात् हुआ है। इन दिनों उसकी उम्र २० वर्ष है। बहन को सन्तदास बाबाजी से नाम-दीक्षा प्राप्त हुई थी, पर दीक्षा (मंत्र) नहीं हुई है। नाम-दीक्षा के बाद धीरे-धीरे अन्तर से सभी प्रकार के आवरण दूर हो गये और 'ब्रह्म-साक्षात्कार' हुआ।"

इतनी कम उम्र में ब्रह्म से साक्षात् होने की बात पर मैं विश्वास नहीं कर सका। दूसरी ओर ब्रह्मचारी शिशिर राहा की बात पर अविश्वास नहीं कर सका। उसके पास उक्त बहन द्वारा लिखित एक डायरी थी। उसे पढ़ने के बाद बहन के अनुभव की बातें जान सका। उनका दर्शन करने की इच्छा जागृत हुई।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कुंभ मेला की समाप्ति के बाद मैं काशी वापस आ गया। गर्मी की छुट्टियाँ पुरी में बिताऊँगा, यह सोचकर कलकत्ता चला आया। यहाँ अपने गुरुभाई तथा मित्र डा० सुरेशचन्द्र देव के यहाँ ठहरा। कुछ दिनों बाद बातचीत के सिलसिले में इस ब्रह्मज्ञ बालिका की चर्चा चली। देव बाबू ने कहा—"अगर आप इस ब्रह्मज्ञ बालिका से मिलने के लिए चलें, तो मैं भी आपका साथ दे सकता हूँ।"

जिस समय यह सारी बातें हो रही थीं, उस समय सीताराम पाण्डेय मेरे साथ था। इन्हीं दिनों 'देवहरि' नामक एक बालक से मुलाकात हुई। यह बालक सन्तदास बाबाजी का शिष्य था, इसलिए ब्रह्मचारी शिशिर कुमार राहा तथा ब्रह्मज्ञ बालिका के परिवार से इस बालक का परिचय था।

इस बालक ने हम लोगों से कहा—"अगर आप लोग इस ब्रह्मज्ञ बालिका से मिलना चाहते हैं, तो उसका प्रबन्ध करके मैं वहाँ तक पहुँचा सकता हूँ।

हम लोगों के साथ एक और व्यक्ति शामिल हुआ। जितेन चक्रवर्ती। आप मेरे बचपन के गुरु श्री हाराणा चक्रवर्ती के सुपुत्र थे।

पथप्रदर्शक देवहरि बाबू ने वहाँ जाने के लिए पत्र के माध्यम से सम्पर्क स्थापित करने की सलाह दी। मैंने एक पत्र बालिका के पिता सुकुमार राहा, (बी० ए०, बी० टी०) के नाम लिखा। वे त्रिपुरा के कुमिल्ला जिला के बरकान्दा नामक गाँव में स्थित हाईस्कूल के प्रधान शिक्षक थे। मेरा पत्र पाते ही उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर पत्र लिखा—"आप लोग किस गाड़ी से कुमिल्ला आ रहे हैं, अगर यह बात तार द्वारा सूचित करें, तो मैं स्टेशन पर स्वागत करने के लिए उपस्थित रहूँगा।"

उन्हें तार भेजने के बाद २० मई, सन् १९३८ ई० के दिन कुमिल्ला रवाना हुआ। कलकत्ता के सियालदह स्टेशन पर चलकर ग्वालन्द स्टीमर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

घाट आया। यहाँ से चाँदपुर और चाँदपुर से कुमिल्ला आया। गाड़ी से उतरते ही देखा—स्टेशन पर प्रियनाथ बाबू नामक एक सज्जन मौजूद थे। आप सुकुमार बाबू के घनिष्ठ मित्र थे। उनके अनुरोध पर हम लोगों की सहायता करने के लिए आये थे। काफी शिक्षित, उदार और नम्र स्वभाव के प्रतीत हुए।

कुमिल्ला नगर से बरकान्दा ८-१० मील दूर है, इसीलिए प्रियनाथ बाबू हम लोगों को बस स्टेशन ले गये। इसके बाद हम बरकान्दा की ओर रवाना हुए। २१ मई को सायंकाल ४ बजे हम लोग वहाँ पहुँचे।

हम लोगों को ठहरने के लिए एक पक्का भवन पहले से ही सुकुमार बाबू ने ठीक करके रखा था। यह भवन शान्त परिवेश में था। हम लोग कुछ देर तक इधर-उधर घूमने के बाद सुकुमार बाबू के घर आये। दर-असल हम लोगों का उद्देश्य बालिका का दर्शन करना था। उनके घर आकर हमारा चित्त प्रसन्न हो उठा। मकान काफी साफ-सुथरा था। आंगन भी साफ था और परिवेश अत्यन्त मनोरम था। घर के दक्षिण स्थित तालाब में पानी लबालब भरा हुआ था। सुकुमार बाबू का स्कूल पास ही था। उक्त भवन के एक बड़े कमरे में हम लोगों को बैठाया गया। वहाँ कई कुर्सियाँ सजाकर रखी हुई थी। इसी कमरे के एक कोने में १८-१९ वर्ष की एक लड़की प्रसन्न मुद्रा में बैठी थी। हम लोगों ने अभिवादन किया और इसके बाद कुर्सी पर बैठे।

बालिका ने अभिवादन करने के बाद कहा—"आप लोग आये हैं, यह देखकर मैं आनन्दित हूँ।"

मैंने कहा—"यहाँ आने की इच्छा मेरी पहले से थी। देवहरि बाबू का पत्र आने के पहले से ही। क्या यह बात तुम्हें ज्ञात थी ?"

बालिका ने कहा—"जी हाँ।"

मैंने पूछा—"कब, किस समय जान पायी थी ?"

बालिका ने कहा—"जिस दिन ब्रह्म साक्षात्कार हुआ था।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मैंने पूछा—"ब्रह्म साक्षात्कार के साथ क्या सभी प्रकार की बड़ी-छोटी घटनाएं ज्ञात हो जाती हैं ?"

उसने कहा—"हाँ, पूर्ण ब्रह्मज्ञान होने पर यह सम्भव होता है वर्ना नहीं।"

मैंने कहा—"इस विषय में मेरे कुछ सवाल हैं।"

उसने कहा—"कहिये।"

मैंने कहा—"तुमने जो पूर्ण ब्रह्मज्ञान की चर्चा की, ब्रह्मज्ञान और पूर्ण ब्रह्मज्ञान में किसी प्रकार का भेद या पार्थक्य है ?"

उसने कहा—"हाँ, भेद है। ब्रह्मज्ञान सामान्य ज्ञान है और पूर्ण ब्रह्मज्ञान सामान्य ज्ञान के साथ ही अनन्त विशेष ज्ञान होता है।"

मैंने पूछा—"सामान्य ब्रह्मज्ञान के बाद अखण्ड सत्ता का बोध होता है, पर विशेष ज्ञान की भूमि पर विचरण करना सम्भव नहीं होता और न होने की सम्भावना रहती है। जबकि योगी सामान्य ब्रह्मज्ञान के द्वारा इच्छाशक्ति जाग्रत कर विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकता है। पूर्ण ब्रह्मज्ञान के बाद उस प्रकार की इच्छाशक्ति की आवश्यकता नहीं होती। उस समय सामान्य ज्ञान तथा विशेष ज्ञान दोनों ही रहता है।"

मेरा प्रश्न था—"योगी को अगर ब्रह्मज्ञान न हो, तो क्या वह इच्छाशक्ति के प्रभाव से सब कुछ जान सकता है ?"

बालिका ने कहा—"इच्छाशक्ति का उदय कहाँ से होगा ? जब तक अखण्ड सत्ता का ज्ञान न हो तबतक इच्छाशक्ति का लाभ कभी प्राप्त नहीं हो सकता। इच्छामात्र में ही शक्ति है।"

तब मैंने अनुभव किया कि बालिका ठीक ही कह रही है। इसके बाद विभिन्न विषयों पर बातें होती रहीं। बातचीत के सिलसिले में अवतारवाद की चर्चा चल पड़ी। उसने कहा—"मेरी दृष्टि में वास्तव में भगवान का कभी अवतार नहीं होता या अवतार के रूप में कभी नहीं आते।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मैंने पूछा—"तब भगवान का अवतार है, कहकर क्यों माना जाता है क्यों भगवान का अवतार है कहा जाता है ?"

उसने कहा—"उसका कारण यह है कि जीव भगवान के साथ सायुज्य प्राप्त कर उसके साथ अभिन्न हो जाता है। इसलिए एक दृष्टि से उन्हें भगवान का अवतार कहने पर कोई दोष नहीं होता। वास्तव में भगवान की कोई अंशकला नहीं होती, सब कुछ उनकी शक्ति की लीला है। शास्त्रों में अनेक बातों का गुप्त रूप से उल्लेख है जो आज तक प्रकट नहीं हुई है।" आगे उसने कहा—जबतक दृष्टि नहीं खुलेगी तबतक समझने की शक्ति उत्पन्न नहीं होगी।"

बालिका ने पाण्डवों के महाप्रस्थान और विशेष रूप से युधिष्ठिर का सशरीर स्वर्ग गमन के बारे में अनेक बातें बतायी थीं जिसका यहाँ उल्लेख करना अनावश्यक है।

शोभा माँ के पिता श्री सुकुमार राहा ने मुझसे कहा—"आप अपने में गुरुदेव की शक्ति के बारे में कुछ कहिये।"

बातचीत के सिलसिले में मैंने उन लोगों को बताया कि घर में अनेक प्रकार के संकट आये हैं, वे जहाँ कहीं भी थे, वहाँ से आकर संकट से मुझे बचाते रहे। ऐसी घटनाएँ अनेक बार हो चुकी हैं। सन् १९२२ में जब मेरी पत्नी सीढ़ी से गिरकर बेहोश हो गयी और हिस्टिरिया रोग से आक्रान्त हो गयीं, तब किसी भी चिकित्सा से उन्हें लाभ नहीं हुआ। इंजेक्शन देने पर दैहिक आक्षेपों की निवृत्ति या निद्रा नहीं आयी। निराश होकर पुरीधाम में बाबा को तार भेजा। पूरे ३६ घण्टे बाद सारे उपद्रवों का उपशम हो गया था। अगर वही हालत कुछ देर और बनी रहती, तो उनकी जीवन-रक्षा करना असम्भव हो जाता। यही सब सोचकर मजबूरी में तार भेजना पड़ा था। तार करने के डेढ़-दो घण्टे बाद रोगिणी के कमरे में पद्मफूलों की महक महकने लगी थी। उस वक्त जितने लोग कमरे में थे, सभी समझ गये कि बाबा का शुभागमन हुआ है। वही हुआ। पद्म

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गन्ध के साथ ही रोगिणी शान्त होकर सो गयी। नींद खुलने पर देखा गया कि रोग निवृत्त हो चुका है। शरीर में नवजीवन का संचार हुआ है और मन में स्फूर्ति आयी है। एक बार मेरी पत्नी रक्त वमन करने लगी थी। क्रमशः हालत बहुत खराब हो गयी। दवाओं से लाभ नहीं हो रहा था। अकस्मात् बाबा के आगमन पर वमन निवृत्त हुआ और रोग दूर हो गया। पिछले वर्ष पुनः वह अस्वस्थ हो गयी थी। निरन्तर वमन, रेचन, हिचकी, दिल का धड़कना, तेज बुखार, बेहोशी, हिस्टिरिया, कमजोरी आदि अनेक उपद्रव प्रारंभ हो गया था।

जीने की कोई आशा नही थी। यहाँ तक कि रात बीतेगी, इसकी आशा नहीं थी। उस समय गुरुदेव सूक्ष्म शरीर से आये और स्वस्थ करके चले गये। सिर्फ यही नहीं, जाते समय कुछ गोलियां देते हुए प्रयोग-विधि बता गये। कुछ देर बाद रोगिणी के तमाम कष्ट दूर हो गये और उन्हें शान्ति प्राप्त हुई। इस तरह की अनेक घटनाएं हो चुकी हैं। सद्गुरु सर्व-व्यापक होते हैं। उनके ज्ञान से अगोचर कुछ भी नहीं रहता। इससे यह प्रमाणित हुआ, मेरे द्वारा कोई समाचार न देने पर भी—समाचार देने की सुविधा नही थी—यहां तक कि 'तार' भेजने का भी अवकाश नहीं था फिर भी गुरुदेव स्वतः प्रवृत्त होकर आविर्भूत हुए और अयाचित रूप में आसन्न मृत्यु से रोगी को बचाया। क्षण मात्र में रोगी का रोग दूर कर दिया। इससे सद्गुरु की सर्वज्ञत्व, करुणा और लोकोत्तर शक्ति प्रकट हो रहे हैं।

यह सब बातें सुनकर सुकुमार बाबू ने शोभा माँ से कहा—"क्यों री, तुझे तो इस तरह कहीं जाते नही देखा?"

शोभा माँ ने कहा—"वे (बाबा) क्या कहीं जाते थे? जो पूर्ण है, उसे कहीं जाना नहीं पड़ता। शिष्य के प्रयोजन पर ठीक जगह में उनका विकास होता है।"

इसके बाद हम डेरे पर लौट आये। आहार आदि किया। रात और

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दोपहर के समय जब हम लोग सुकुमार बाबू के भवन में भोजन करने जाते तब उस बालिका के साथ अध्यात्म विषयों पर चर्चा करते थे। प्रियनाथ बाबू हर समय मेरे साथ रहते थे। वहाँ एक सज्जन रहते थे जिन्हें बालिका ने यह बताया था कि श्री गोस्वामी के अंशरूप में वे आविर्भूत हुई हैं। वहाँ से लौटते समय हम लोग पास ही के शैव पीठस्थान 'चन्द्रनाथ' का दर्शन करते हुए आये।

इस परिचय के बाद सन् १९३८ के दिसम्बर माह में पुनः शोभा माँ का दर्शन हुआ। इसके बाद जब वे एक बार काशी आयीं, तब उनके साथ घनिष्ठ परिचय हुआ था। उनके जीवन की अनेक घटनाओं का वर्णन श्री अक्षय कुमारदत्त गुप्त ने अपनी पुस्तक में किया है।

बरकान्दा गाँव में ही श्री राधागोविन्द नाथ महाशय से हम लोगों का परिचय हुआ। उन दिनों वे कुमिल्ला विक्टोरिया के अध्यक्ष थे। इसी स्थान पर गोपीचन्द्र की माता मयनामती* का आश्रम था। हम लोगों ने इस आश्रम को देखा। यह आश्रम गोरखनाथ-सम्प्रदाय का प्रमुख आश्रम है। शोभा माँ का दर्शन करने जाकर इन स्थानों का दर्शन करने का अवसर मिला था, ऐसा मेरा विश्वास है।

●

*मयनामती त्रिपुरा राज त्रिलोकचन्द्र की कन्या थीं। नाम था—शिशुमती। किशोरी शिशुमती गोरखनाथ से दीक्षा लेकर मयनामती बन गयी थी। उनका विवाह बंगाल राज माणिक चन्द्र के साथ हुआ था। इन्हीं के पुत्र गोविन्दचन्द्र या गोपीचन्द्र थे। त्रिपुरा के समीप जो विस्तृत शैलमाला है, उसका नाम मयनामती है। त्रिलोकचन्द्र की कन्या के नाम का यही चिरस्थायी निदेशन है। माणिक चन्द्र के पुत्र गोविन्दचन्द्र अथवा गोपीचन्द्र को दक्षिण के राजा राजेन्द्र चोल ने हराया था। उनकी जयगाथा तिरुमल्लई की शिलालिपि में अंकित है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

१९

भोलागिरि

एक अर्से से आपका नाम सुनता आ रहा था। सन् १९१२ में अपने एक मित्र के साथ हरिद्वार गया हुआ था। उन्हीं दिनों इस महानुभाव संन्यासी का दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। गंगातट के किनारे स्थित लालतारा बाग में जाने पर मेरी पूर्ववर्ती इच्छा की पूर्ति हुई थी।

कहा जाता है कि देवादिदेव शंकर की कृपा से भोलागिरि का जन्म हुआ था। आपके चार भाइयों में सबसे कनिष्ठ को छोड़कर सभी संन्यासी हो गये थे। केवल भारत के तीर्थों का ही नहीं, बल्कि साइबेरिया और तिब्बत स्थित अनेक स्थानों में संन्यासी के रूप में भ्रमण कर चुके हैं।

सन् १८९३ ई०, प्रयाग में कुम्भ-मेला का आयोजन हुआ। इस मेला में प्रभुपाद विजय कृष्ण गोस्वामी को लेकर संन्यासियों में तीव्र झमेला उठ खड़ा हुआ था। सामाजिक दृष्टि से वे गृहस्थ थे, ऐसी स्थिति में संन्यासियों के निर्दिष्ट स्थान में उनका तम्बू नहीं लग सकता था। इसी समस्या को लेकर संन्यासियों ने अपने यहाँ उनका तम्बू गाड़ने में असहमति प्रकट की। उस दिन भोलानाथ गिरि ने आगे बढ़कर साधुओं को समझाया और गोस्वामीजी को महापुरुष के रूप में मान्यता दी। विजयकृष्ण गोस्वामी को वे 'मेरे आशुतोष' कहकर सम्बोधन करते थे। प्रभुपाद के जीवित-काल में उन्होंने बहुत लोगों को दीक्षा दी थी।

विजयकृष्ण गोस्वामीजी ने भोलागिरि महाराज का मूल्यांकन करने में गलती नहीं की। वे सर्वदा अपने शिष्यों से कहा करते थे कि इस तरह के महापुरुष आज के युग में दुर्लभ हैं। आप जगत-ध्वंस और सृष्टि करने

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की शक्ति रखते हैं। ऐसी दुर्लभ योगशक्ति के अधिकारी होते हुए भी उनका व्यवहार नम्र था। करुणा के अवतार, शिव स्वरूप थे।

महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी की भक्त मण्डली में बार-बार उनका नाम सुनने के कारण मैं उनके प्रति आकृष्ट हुआ था। धीरे-धीरे उन्हें देखने की इच्छा तीव्र से तीव्रतर हो उठी। लेकिन उन्हें दर्शन करने का सौभाग्य सन् १९१२ के पूर्व प्राप्त नहीं हुआ।

एक अर्से तक उनका सत्संग प्राप्त होने पर बड़ा आनन्दित हुआ था। उनकी विशेष प्रतिभा का परिचय पाकर मैं प्रभावित भी हुआ था। बाबा-जी ने अन्तर्दृष्टि-साधना के अन्तर्गत अजपा-रहस्यों के बारे में अनेक तथ्यपूर्ण बातें बतायी थी। इनमें कुछ गोपनीय बातें थीं। जो प्रकाश योग्य हैं, उसे इस ढंग से बताया था—

क—मनुष्य की स्वाभाविक श्वासों की संख्या २१६०० है, ऐसा कहा जाता है, इसलिए प्रति श्वास के साथ नाम का घनिष्ठ सम्पर्क है और अजपा-रहस्यों के साथ इसका विशेष तात्पर्य देखने में आता है। ऐसा न कर पाने पर भी प्रतिदिन अभ्यास करते हुए, उसे पूरा करना चाहिए। मानव-शरीर धारण करने के बाद से, अर्थात् मातृगर्भ से भूमिष्ठ होने के बाद से प्रयाण काल तक, समग्र जीवन के माध्यम से स्वाभाविक श्वास-प्रश्वासों की क्रिया होती रहती है, इसी को मूल जड़ बनाकर अजपा-साधना अनुष्ठित होता है। इसके लिए कोई विशेष उपकरण, किसी प्रकार की कृत्रिम प्रक्रिया या किसी प्रकार के विशेष अनुशासन की आवश्यकता नहीं होती। श्वास-प्रश्वास जिस प्रकार ज्ञात और अज्ञात-सार में हर वक्त प्रवाहित हो रहा है, श्वास-प्रश्वास के साथ ही सर्वश्रेष्ठ अजपा-क्रिया भी उसी प्रकार जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति काल में, समरूप में जारी रहता है। यह साधना अत्यन्त निगूढ़ तथा इसका विज्ञान भी एक गंभीर रहस्य है। इसका फल अन्य कृत्रिम साधना की तरह नहीं होता। निष्क्रिय परमसत्ता के हृदय को आश्रय बनाकर जो क्रिया विश्व

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में निरन्तर जारी है, अजपा मनुष्य शरीर में उसकी प्रतिच्छाया मात्र है—यह स्वभाव की साधना है। प्रकृति के बीच व्यष्टि भूमि में एवं समष्टि में, समरूप से इसका प्रभाव पड़ता है। अजपा-विज्ञान को अगर ठीक से जान लिया जाय तो तत्त्वज्ञान का पूर्ण उदय हो जाता है। यह साधना जितनी स्वाभाविक है, इसका फल भी उतना ही स्वाभाविक है अर्थात् स्वभाव में स्थिति की प्राप्ति।

शिशु जब मातृगर्भ से बाहर आता है और जब उसकी नाल काटी जाती है, तभी से उसके शरीर में श्वास-प्रश्वास की क्रिया चालू हो जाती है। मातृगर्भ में रहते समय गर्भधारिणी जननी से अलग शिशु का श्वास-प्रश्वास नहीं रहता। गर्भस्थ शिशु माँ के द्वारा व्यवहृत भोजन से पुष्टि प्राप्त करता है और माँ के श्वास-प्रश्वास से ही उसके शरीर का विकास होता है। लेकिन प्रसव के साथ ही उस पर वैष्णवी माया का आक्रमण होता है और तभी से वह काल-राज्य में निवास करने लगता है। शिशु का प्रथम श्वास जन्म और अन्तिम श्वास त्याग मृत्यु के नाम से प्रसिद्ध है। जन्म से मृत्यु तक मध्यावस्था ही उसका जीवन है। इस दृष्टि से मनुष्य का समग्र जीवन ही श्वास-प्रश्वासमय है। प्रकृत प्रस्ताव में श्वास-प्रश्वास काल की लीला है। हम लोग जिसे जीवन कहते हैं, वह काल या मृत्यु की अपनी महिमा का प्रकाश मात्र है।

ख—शिष्य का पुरुषकार या तपस्या ही सर्वदा गुरूकृपा को आकर्षित करती है। कठोर भाव से बिना तपस्या किये वह कभी प्राप्त नहीं होती। साधन रूप पत्नी के साथ युक्त होकर ज्ञानरूप पुत्र प्राप्ति शिष्य को ही करना पड़ेगा। इसके लिए तीव्र तपस्या की जरूरत है। तपस्या की दीवार है—वैराग्य।

गुरु शिष्य को दीक्षा देने के बाद साधन दान करते हैं। साधन रूप पत्नी का अगर संग नहीं किया, कठोर तपस्या में व्रती न हुए, तो मोक्षरूप पुत्र की प्राप्ति से वंचित रहना पड़ेगा। इसके लिए गुरु जिम्मेदार नहीं है बल्कि इसके लिए शिष्य ही जिम्मेदार होगा।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ग—प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह दैनिक आय में से कुछ अंश दान करता रहे।

आपके साथ सत्संग के समय मैं विद्यार्थी था। उनकी अन्तर्दृष्टि का वास्तविक परिचय मुझे प्राप्त हो गया था।

सन् १९१८ में परमहंस विशुद्धानन्द से मुझे दीक्षा प्राप्त हुई थी। उसी वर्ष मैं प्रयाग के कुम्भ में गया था। वहाँ आपसे मुलाकात हुई थी। आप सभी सम्प्रदाय वालों तथा मनुष्य मात्र के प्रति श्रद्धा प्रकट करते थे। उसी प्रकार लोग आपके प्रति यथायथ सम्मान रखते थे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२०

योगप्रकाश ब्रह्मचारी

सन् १९२०-२१ के आसपास ब्रह्मचारी महाशय से मेरा परिचय हुआ था। सचित्र साधन-विज्ञान नामक एक पुस्तक १२ खण्डों में प्रकाशित हुई थी। इसमें आनुषंगिक प्रक्रियादि के बारे में विवरण था। इसके अलावा षटचक्र एवं उपास्य देवी मूर्त्ति के ध्यान सम्बन्धी बातें अलग-अलग चित्रों के माध्यम से चित्रित की गयी थीं। ये चित्र बाजार में उपलब्ध थे जिनमें सचित्र साधन विज्ञान का नाम अंकित रहता था। चित्र पाते ही सर्वप्रथम मैं उनके प्रति आकृष्ट हो गया था।

इस महात्मा से मिलने के बाद मैं उनके पास इसलिए गया ताकि उनके साधना-जीवन की अलौकिक घटनाएँ सुन सकूँ। आप सदगुरु प्राप्त करने की इच्छा से विभिन्न स्थानों का पर्यटन करते रहे। अन्त में आबू पर्वत पर एक महापुरुष से आपकी मुलाकात हुई जिनकी कृपा से आपका जीवन धन्य हुआ।

पर्यटन करते हुए जब आप आबू पहाड़ पर गये, तब देखा कि एक गुफा में एक साधु समाधि लगाये बैठे हैं। चूँकि वे समाधि में थे, इसलिए बातचीत नहीं कर सकते थे। समाधि भंग होने की आशा में एक घण्टे तक प्रतीक्षा करते रहे, लेकिन उन्हें निराश होकर वापस आना पड़ा।

दूसरे दिन जाने पर उन्होंने देखा कि महात्माजी पहले की तरह समाधिस्थ हैं। कुछ देर तक प्रतीक्षा करने पर उनकी आँखें खुलीं और उन्होंने इनकी ओर देखा। आपने साष्टांग प्रणाम करने के बाद उपदेश की भिक्षा माँगी।

महात्माजी ने कहा—"पास के झरने में स्नान करके आओ।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्नान समाप्त करने के पश्चात् जब वे वापस आये तो देखा कि स्वामीजी पुनः समाधिस्थ हो गये हैं। दिन भर बैठे रहने पर भी समाधि भंग नहीं हुई, तो निराश होकर वापस लौट आये। दूसरे दिन आने पर काफी देर के बाद महात्मा की समाधि भंग हुई और उन्होंने पूछा—"स्नान समापन हो गया ?"

महात्माजी को समय का ख्याल नहीं था। इसके बाद उन्होंने योग-क्रिया का उपदेश देने के बाद अभ्यास करने का निर्देश देते हुए बोले—"इससे तुम्हें सभी प्रकार का लाभ होगा।"

महात्मा द्वारा प्रदत्त योग प्रक्रिया में कुछ विशेषता थी। वायु-प्रक्रिया में भी अनेक सरल और सहज साध्य है। इस प्रक्रिया के माध्यम से ब्रह्मचारीजी ने अनेक अलौकिक अनुभव प्राप्त किया था।

एक दिन उक्त महात्माजी से आज्ञा लेकर उनके गले में फूलों की एक गाला पहनायी गयी थी। कई दिन समाधिस्थ रहने पर भी माला के फूल ताजे थे, सूखे नहीं थे। इससे यह अनुभव हुआ कि महात्माजी का समय या काल से कोई सम्बन्ध नहीं था। शायद इसीलिए माला पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। वह पूर्ववत ताजे थे। ब्रह्मचारी को महात्मा की योग-शक्ति से यह अनुभव हुआ था।

सचित्र साधन विज्ञान नामक पुस्तक आपने महात्माजी से सम्बन्धित योग प्रक्रियाओं को स्तरानुसार शाख-प्रशाखा सहित, विस्तार के साथ लिखा था।

ब्रह्मचारीजी अपने काशी निवासकाल में रामापुरा मुहल्ले के एक भवन में प्रति दिन सत्संग करते थे। वहाँ अनेक वृद्ध और अन्य नागरिक उपस्थित होकर ब्रह्मचारीजी का प्रवचन सुनकर तृप्ति अनुभव करते थे। किशोर और युवक भी रहते थे उनके प्रवचनों का मूल विषय होता—शिक्षा के माध्यम से आनन्द की प्राप्ति और स्वास्थ्य बनाना। वे श्वास-प्रश्वास के माध्यम से बताते थे जो सरल और सहज होते थे। किसी के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लिए भी असुविधा जनक नहीं थी। प्रत्येक व्यक्ति इसका उपयोग आसानी से कर सकता था।

ब्रह्मचारीजी कहा करते थे कि श्वास-प्रश्वास के कारण मनुष्य सुख-दुःख भोगता है। अगर श्वास-प्रश्वास की गति नियमित रूप से चलायी जा सके, तो अपार आनन्द सहज ही प्राप्त हो सकता है, ऐसा अनुभव मानव जीवन के लिए एक मात्र काम्य है।

प्रतिदिन आप योगक्रिया के बारे में उपदेश देते थे। वे दिन भर के समय में प्रातःकाल को सर्वश्रेष्ठ समझा करते थे। कुछ दिनों बाद अचानक काशी से चले गये। कहाँ गये? इसे कोई जान नहीं सका। जानने का कोई उपाय भी नहीं था।

अचानक पाँच वर्ष बाद काशी की एक गली में उनसे मुलाकात होने पर चित्त प्रसन्न हो गया। मुझे देखकर वे भी खुश हुए। उनके साथ मैं अपने गुरुभाई श्री सतीशचन्द्र दे के यहाँ गया था। वे बंगाली टोला हाई स्कूल के पीछे तिलभाण्डेश्वर के पास रहते थे। उनके मकान में एक बाग था। वहीं हम लोग कुर्सी पर बैठे। उस समय शाम हो गयी थी। ब्रह्मचारीजी से नाना प्रकार की बातें होने लगीं। इतने दिनों तक हम अलग-अलग रहे, इसलिए बातें घनिष्ठ रूप में होती रहीं।

ब्रह्मचारीजी ने कहा—"मेरे जीवन का बहुरूप परिवर्तन साधित हुआ है।"

मैंने पूछा—"आपकी मुलाकात जब आबू पहाड़ स्थित महात्मा से हुई, क्या तभी से परिवर्तन साधित हुआ है?"

उन्होंने कहा—"वह जीवन गुजर गया है, अब मुझमें एक नये जीवन का आविर्भाव हुआ है। पहले योगी का जीवन था, उसमें योगाभ्यास ही प्रधान था। लेकिन अब जो जीवन प्राप्त हुआ है या जिस तत्त्व एवं तथ्य का पता प्राप्त हुआ है, वह बहुत ऊँची चीज है। इसे बहुत कम लोग जानते हैं या प्राप्त कर सके हैं जिसे मैं पहले नहीं जानता था। योगाभ्यास

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करते-करते मेरा मन अभिमान से भर गया था जबकि योग-प्रक्रिया इस सहज-मार्ग से काफी दूर एवं कष्टसाध्य है।"

मैंने पूछा—"इस सहज-जीवन का स्वरूप क्या है ?"

ब्रह्मचारीजी ने कहा—"यह सजह-मार्ग बिना श्रीगुरु की कृपा के प्राप्त नहीं होता। इसमें कुछ करना-धरना नहीं पड़ता। किसी अनुष्ठान या प्रक्रिया से लाभ नहीं होता। यह तो स्वभावसिद्ध है।"

मैंने कहा—"अगर इसका कुछ आभास दें, तो हम सब लाभ उठा सकते हैं।"

उन्होंने जो कुछ कहा था, उसमें कुछ मुख्य बातें लिख रहा हूँ।

मनुष्य जीवन की परिपूर्ण सार्थकता रस के आस्वादन के भीतर ही है। लेकिन वर्तमान में अनेक लोग इस रस से वंचित हैं। इसका उपाय वे नहीं जानते। उर्ध्वरेता बिना हुए इस रस का आस्वादन नहीं किया जा सकता। अखण्ड ब्रह्मचर्य या धर्मप्राण गृहस्थ जीवन में वीर्य या शुक्र धारण पर ही दारोमदार है। इड़ा-पिंगला, नाड़ियों का संचालन, उसके स्वरूप और क्रियाओं का ज्ञान तथा अभ्यास आवश्यक है। इसके बाद भाव हो जाने के बाद इन दोनों नाड़ियों के बारे में सम्पूर्ण ज्ञान का होना आवश्यक है। इड़ा नाड़ी में जिस प्रकार प्रक्रिया होती है, ठीक उसी प्रकार पिंगला में होना आवश्यक है।

विन्दु या शुक्रात्मक-वीर्य तेजोमय होता है, किन्तु शुक्रवहा नाड़ी तरल अवस्थापन्न विन्दु को बाहर निकाल देता है—इसी का नाम है स्खलन। यही है—मृत्यु का द्वार। जबकि ऐसी क्रियाएँ हैं या कौशल हैं जिससे विन्दु या शुक्र या वीर्य धारण करने के पहले ही उसमें वायवीय रूप में उत्पन्न हो जाता है, फलतः उसके पतन की कोई सम्भावना नहीं रहती या इस बारे में कोई प्रश्न नहीं पैदा होता। यह तेजोमय विन्दु अपनी शुष्क नाड़ी के द्वारा ऊपर की ओर आकर्षित होता है। इसका शोषण पिंगला के माध्यम से होता है तथा इड़ा नाड़ी द्वारा अमृत क्षरण होता है। वास्तव

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में विन्दु सोमविन्दु के नाम से अभिहित है। वह स्वच्छ और निर्मल होता है। जब अमृत विन्दु-रूप में परिणत होता है, तब उर्ध्वगामी होकर सोम-चक्र में चला जाता है। उस समय वीर्य की अधःगति निरुद्ध हो जाती है। वीर्य या विन्दु आकर्षित होकर वायवीय या आकाशीय रूप में उर्ध्व में चला जाता है।

ऊपर जो सोमधारा प्रवाहित होती है, उसमें अमृत की बाढ़ रहती है। कौशल का अभ्यास हो जाने पर वीर्य या विन्दु की अधागति होने की सम्भावना नहीं रहती। बाद में शक्ति या प्रकृति का साथ होने पर वह ऊर्ध्व मार्ग की ओर दौड़ता है तब स्खलन होने की आशंका नहीं रहती। इसमें भक्ति और शृंगार-रस का आस्वादन रहता है।

प्रस्तुत शृंगारावस्था दिव्यावस्था में ही सम्भव है। विन्दु सिद्धि नाम ग्रहण करता है, तब साधक सिद्ध हो जाता है। भावावस्था में विन्दु क्षुब्ध होकर खेलता है—इसे भी रसास्वादन की स्थिति कहा गया है। इसमें प्रकृति की आवश्यकता है। बंगाल के बाउल या सहजिया सम्प्रदाय वाले इस रहस्य से परिचित हैं। मुझे वैद्यनाथ धाम के पास एक गृहस्थ से यह तत्त्व प्राप्त हुआ था। इसमें अनेक रहस्य हैं जिसमें कुछ का आभास मात्र मैंने आपको दिया।

सम्भवतः प्राचीनकाल में चण्डीदास और विद्यापति इसी साधना के माध्यम से सिद्ध हुए थे। यह भाव की लीला है। आत्मा, पुरुषाकार द्वारा कुछ नहीं होता। यह योग मार्ग नहीं है। भाव साधना या प्रेम साधना के मार्ग में गहरी खाई है। प्राचीन वैष्णव लोग इस साधना के ज्ञाता थे। इसे कुलाचार-प्रक्रिया भी कहा जा सकता है।

इस प्रकार ब्रह्मचारीजी ने पूर्वोक्त योग-मार्ग को छोड़कर आगे कभी बाउल-सम्प्रदाय में प्रचलित रस-साधना के मार्ग को अपनाया। उस मार्ग में साधना की जो धारा वर्तमान थी, उसमें ऊर्ध्वावस्था प्राप्त कर चुके थे। कुछ दिनों बाद ब्रह्मचारीजी काशी से चले गये। इसके बाद उनका कोई समाचार नहीं मिला।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२१

बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ

आपका जन्म पश्चिमी बंगाल स्थित हुगली जिला के हुमुरदह नामक गाँव में, एक निष्ठावान ब्राह्मण परिवार में हुआ था। पिता थे—श्री प्राणहरि चट्टोपाध्याय और माता का नाम था—श्रीमती माल्यवती देवी। घर में कुल देवता श्री ब्रजेन्द्रनाथ और राधारानी प्रतिष्ठित थे, इसीलिए मकान का नाम था—'श्री ब्रजनाथ निकेतन'।

इस परिवार का द्वितीय पुत्र श्री प्रबोधचन्द्र चट्टोपाध्याय थे जो आगे चलकर बाबा सीताराम दास ओंकारनाथ नाम से प्रसिद्ध हुए। ६ फाल्गुन, कृष्ण पंचमी तिथि, बुधवार, सन् १८९२ ई०, सबेरे ८ बजकर १ मिनट पर, अपने नाना के घर, जिला हुगली, ग्राम केवटा में गंगा के किनारे आपका जन्म हुआ था।

सन् १९०० ई० में अपने मामा के घर रहते हुए आप प्रसन्न गुरु की पाठशाला में भर्ती हुए। इसके बाद संस्कृत अध्ययन करने के लिए, दिगसई गाँव में श्री दाशरथी स्मृति भूषण महाशय की चतुष्पाठी में आये। यहीं आपकी शिक्षा और दीक्षा दोनों हुई थी। गुरुदेव श्री दाशरथी स्मृति भूषण ने नामकरण किया—"सीतारामदास।" गुरुदेव के इच्छानुसार गुरुदेव की आत्मीया सिद्धेश्वरी देवी के सहित सन् १९१७ के अगहन मास में विवाह सम्पन्न हुआ। उस समय छात्र-जीवन समाप्त नहीं हुआ था।

आगे चलकर आप बंगाल के उच्चकोटि के महात्मा बने। आपके नाम से मैं एक अरसे से परिचित था। उन्हीं दिनों से आपके सम्प्रदाय का नाम 'जय गुरुदेव' हुआ था। लेकिन मेरे साथ आपका परिचय और

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दर्शन सन् १९४८ ई० में पुरी रहते हुआ था। उन दिनों आप मौन थे, पर आपके शिष्य चारों ओर से आपको घेर कर हरि-नाम कीर्त्तन करते रहे। आप जहाँ कहीं जाते, वहीं कीर्त्तन-मण्डली के लोग साथ जाते थे। आपका जीवन बड़ा ही विचित्र था। कुछ ग्रन्थ आपने प्रकाशित किए थे।

बचपन में ही आपको भगवत्-कृपा प्राप्त हो गयी थी। सन् १९१७ के दिनों में आपने प्रत्यक्ष रूप से शिव का दर्शन किया और उनसे दीक्षा ली। सन् १९३० में पत्नी के देहान्त हो जाने का बाद आप एकनिष्ठ भाव से आराधना में सचेष्ट हो गये। इन्हीं दिनों स्वप्न में ब्राह्मदीक्षा प्राप्त हुई थी। इस घटना के बाद आप दो वर्ष तक मौनव्रत पालन करते रहे तथा साक्षात् जगन्नाथ देव से आदेश प्राप्त कर तारक-ब्रह्म नाम के प्रचार में लगं गये।

आप मुझे अच्छी तरह से जानते थे, बल्कि अपने यहाँ से प्रकाशित 'देवयान' नामक पत्रिका बराबर भेजा करते थे। जब आप ओंकारेश्वर में मौन धारण किये हुए थे तब आपसे मेरो घनिष्ठता हुई थी। इसके बाद आपके कुछ भक्तों ने सन् १९५६ में मुझसे अनुरोध किया कि मैं उनकी पुस्तक 'नादलीलामृत' की भूमिका लिख दूँ। आपके आदेशानुसार मैंने भूमिका लिख दी। उसे पढ़कर आपने मुझे एक बड़ा पत्र प्रशंसा के रूप में भेजा था। इस पत्र में आपने अपने आध्यात्मिक जीवन के बारे में उल्लेख किया था।

उन्होंने लिखा था—जब वे चुचड़ा स्थित टोल में पढ़ते थे तब शिव तथा जगदम्बा का साक्षात दर्शन उन्हें हुआ था जिसका कितना प्रभाव उनके जीवन में पड़ा था इन बातों का उन्होंने उल्लेख किया था। पत्र के अन्त में कुछ प्रश्न भेजने का उन्होंने अनुरोध किया था। बाद में मैंने पत्रोत्तर दिया था। उन बातों की चर्चा मैं यहां नहीं करना चाहता।

बाबाजी के अनुरोध पर मेरे द्वारा सम्पादित ग्रन्थ श्री विशुद्धानन्द प्रसंग पाचों खण्ड तथा विशुद्ध वाणी मैंने उन्हें भेजा था। इन ग्रन्थों को

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पढ़ने के पश्चात् वे मुझसे मिलने के लिए काशी आये थे। इसके बाद जब कभी वे काशी आते तब मैं उनसे मिलने के लिए अवश्य जाता। बाद में जब वे काशी आते तब सर्वप्रथम श्री विशुद्धानन्द कानन जाकर रोनवमूर्त्ति माँ का आसन दर्शन करते, फिर वहाँ से मेरे यहाँ आते तब बंगाली टोला स्थित अपने आश्रम में जाते थे। उनके साथ उनके भक्त कीर्त्तन करते हुए चलते थे।

आपने ओंकार-साधना पूर्णरूप से किया था। आप वैष्णव-सम्प्रदाय के थे, फिर भी ज्ञानमार्ग और योगमार्ग में आपकी दक्षता थी। आचार्य रामदयाल मजुमदार को आप गुरू की तरह मानते थे। इस बारे में एक बात लिखना उचित समझता हूँ—कलकत्ता के 'उत्सव' पत्रिका कार्यालय में, सन् १९३७ के ज्येष्ठ मास में, रामदयालजी ने सीतारामदास ओंकारनाथ के वक्षस्थल में दक्षिण हस्त रखते हुए वहा था—"तुम्हें मैं अपनी समस्त शक्ति दे रहा हूँ।"

बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ इससे अभिभूत हो उठे। इसके बाद उन्होंने यह भी कहा था—"मैं मंच से उतर रहा हूँ अब तुम मंच पर विराजमान हो।"

इसी वर्ष बाबा सीताराम ओंकारनाथ ने अपना प्रथम चातुर्मास्य व्रत का उद्यापन, कलकत्ता स्थित शांखारी टोला में प्रारंभ किया था। पूरे चार माह तक वे वहाँ रहे। उन दिनों प्रति शनिवार को सत्संग में भाग लेते थे। एक दिन रामदयालजी ने बाबा सीतारामदास ओंकार-नाथजी से कहा—"मैं अब 'चण्डी' लिख नहीं पा रहा हूँ, तुम लिखो।"

इधर बाबा सीतारामजी के हाथ अचल हो गये थे। लिखने लायक शक्ति उनमें नहीं थी। रामदयालजी ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा—"तुम जरूर लिख लोगे।"

बाबा सीताराम दास ओंकारनाथ जी ने इस आशीर्वाद को शिरोधार्य कर लिखना प्रारंभ किया और अपने कार्य में सफल रहे। पाण्डुलिपि के कुछ अंशों को पढ़कर स्वर्गीय धीरेन्द्रनाथ ने उसे प्रकाशित करने की आज्ञा माँगी तो उन्होंने कहा—"अभी नहीं। पुस्तक पूरी हो जाय।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आपके जीवन पर महात्मा शिव-शंकर (योगत्रयानन्दजी) का प्रभाव पड़ा था। आप वर्णाश्रम धर्म के सेवक थे। धर्म-प्रचार के लिए विभिन्न भाषाओं में शास्त्रीय ग्रन्थ और पत्रिका प्रकाशित करवा चुके हैं। बंगला में देवयान, पथेर आलो, अंग्रेजी में मदर, संस्कृत में प्रणव, पारिजातम आदि पत्र पत्रिकाएँ हैं। हिन्दी, उड़िया और दक्षिण भारत की विभिन्न भाषाओं की पत्रिकाएं हैं।

उनकी तीव्र तपस्या, पूर्ण गुरुभक्ति तथा अनुभव ऐसा है कि वे निर्मल-समाधि में आसानी से प्रवेश कर सकते हैं। मेरे प्रति उनका अकृत्रिम स्नेह रहा है, जिसकी पूर्त्ति मैं नहीं कर सकता।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२२

माया चैतन्य

सन् १९१८ के जाड़े में श्री श्री विशुद्धानन्द परमहंस से मैंने दीक्षा ली थी। इसी वर्ष प्रयाग में महाकुम्भ का मेला हुआ था। महाकुम्भ समाप्त होने के बाद अनेक साधु-सन्त काशी आये थे। वे लोग दशाश्वमेध घाट तथा गंगा उस पार रेती पर भी रहते थे। काफी लोग शिवरात्रि तक काशी में थे, बाद में सभी लोग अपने-अपने स्थान चले गये।

सन् १९१८ ई० में कुम्भ-स्नान करने के बाद महात्मा मायानन्द चैतन्य काशी आये थे। यहाँ अन्य साधु-सन्तों की तरह दशाश्वमेध घाट पर रहते थे। वे महाराष्ट्री थे। द्वादश ज्योतिर्लिगों में अन्यतम, नर्मदा तटवर्ती ओंकारेश्वर के समीप इस महात्मा का स्थान था। शंकराचार्य के गुरुदेव आचार्य गोविन्दपाद का साधनास्थल ओंकारेश्वर ही था। ओंकारनाथ पहाड़ को खण्डित कर नर्मदा निकली है। पुराणों में इस पहाड़ को वैदुर्य-मणि पर्वत कहा गया है। भक्तवीर मान्धाता की राजधानी ओंकारेश्वर थी।

तेरहवीं शताब्दी के मध्य नाथपन्थी साधना के विशिष्ट धारक के रूप में महात्मा गहिनीनाथ महाराष्ट्र में आविर्भूत हुए थे। ज्ञानदेव के ज्येष्ठभ्राता निवृत्तिनाथ ने गहिनीनाथ से दीक्षा ली थी। ज्येष्ठ भ्राता निवृत्तिनाथ ने ही अपने कनिष्ठ भ्राता ज्ञानदेव को दीक्षा दी। इसी समय नाथपन्थी-साधना और पण्ढरपुर के भक्तिवादी सम्प्रदाय की वाणियाँ, ज्ञानदेव की भावुकता के अन्तर्गत एक समन्वयधर्मी साधना के रूप में, 'ज्ञानेश्वरी' के माध्यम से प्रकाशित हुई थी।

महात्मा माया चैतन्य ने इसका हिन्दी में अनुवाद किया था।

इस महात्मा में एक विशिष्टता यह थी कि आप प्रचण्ड गर्मी में भी किसी प्रकार के आच्छादन का प्रयोग नहीं करते थे। वैशाख जेठ माह

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की प्रचण्ड गर्मी और लू में जब घाट के पत्थर लाल हो उठते थे तब उस समय भी बिना किसी आसन के तपते पत्थर पर बड़े आराम से बैठे नजर आते थे।

एक दिन बंधुवर सतीशचन्द्र दे महाशय को साथ लेकर इस महात्मा के पास आया। उस समय आप 'विश्वरूप-दर्शन' विषय पर प्रवचन दे रहे थे। महात्माजी के चारों ओर श्रोताओं की अपार भीड़ थी। उस समय महात्माजी गीता के एकादश अध्याय की व्याख्या कर रहे थे।

उन्होंने कहा—'विश्वरूप दर्शन' अनेक लोग पढ़ चुके हैं, पर आज तक किसी को दर्शन नहीं हुआ है, कारण यह है कि विश्वरूप के प्रति सामान्य लोगों में श्रद्धा नहीं है। ऐसा होता है। मैं आप लोगों को विश्वरूप दिखाऊँगा। सर्व प्रथम यह जानना चाहिए कि भगवान का विश्वरूप क्या है? विश्वरूप का तात्पर्य है—भगवान निर्गुण, निराकार एवं निष्कल होते हुए भी सर्वाकार सम्पन्न हैं। इसलिए हम जो कुछ देखते हैं, वह सब विश्वरूप के अन्तर्गत है अर्थात् सब कुछ में उनका (ईश्वर का) आकार-रूप विद्यमान है। जो कुछ देखता हूँ या दिखाई नहीं देता, समझना चाहिए कि मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंगादि—सभी विश्वरूप के अंग हैं। सभी वस्तुओं के भीतर भगवान के दर्शन होते हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि एक ही समय में कोटि कोटि चन्द्र-सूर्य देखे गये।"

यह विज्ञान उन्हें अपने गुरु की कृपा से प्राप्त हुआ है। सुप्रसिद्ध महात्मा विशुद्धानन्द सरस्वती आपके गुरु थे। काशी के अहिल्याबाई घाट पर श्री श्री स्वामी विशुद्धानन्द रहते थे। उन्होंने आपको विश्वरूप दर्शन रहस्य सिखाया था। उनका कहना था कि अगर मृत्यु के समय किसी में ऐसी भावना रहे तो उसकी अधोगति नहीं होती। उस समय जो कोई आयेगा, वही ईश्वर होगा। इसी से जगत का कल्याण होना संभव है। मनुष्य मृत्युकाल में देव-देवी की मूर्त्ति सामने रखता है। सभी ईश्वर हैं, यह सोचने पर परगति हो जाती है और सद्गति स्वाभाविक रूप से हो जायगी।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वे कहते थे—मूर्ख मानव पास के रत्न को छोड़कर, दूर या बाहर खोजने जाता है। आत्मा ही रत्न है जो प्रत्येक मनुष्य के पास की वस्तु है और सभी के पास है। उसे जानने के लिए किसी मठ-मन्दिर में जाने की आवश्यकता नहीं है। केवल चित्त को अन्तर्मुखी करके उसमें ध्यान लगाना चाहिए। मनुष्य समुद्र की उत्ताल तरंगों को देखकर मोहित हो जाता है। पर उसे यह नहीं मालूम कि ये तरंगें विभूति के अलावा और कुछ नहीं है। तरंगे आती हैं और जाती हैं, इसलिए इसे नित्य वस्तु नहीं कहा जा सकता। जबकि पानी नित्य वस्तु है। तरंग विशिष्ट समुद्र का ईश्वर और जल ही आत्मा है। आत्मा सत्यवस्तु है और काफी निकट रहता है। समुद्र के बिना हमारा काम चल सकता है और काफी लोगों का चल जाता है, पर आत्मा के बिना कुछ सोचा नहीं जा सकता। सभी आत्मा की विभूति हैं, उनकी लीला हैं।

मोहवश मनुष्य अपनी आत्मा के प्रति ध्यान नहीं देता या नहीं रखता। सिर्फ विभूतियों के प्रति आकृष्ट हो जाता है।

यह महात्मा हिन्दी या बंगला ठीक से बोल नहीं पाते थे। दोनों भाषाओं को मिलाकर प्रवचन देते थे। आपके निकट लौकिक नियमों का कोई बन्धन नहीं था। न तो आवाहन करते थे और न विसर्जन। किसी के आने पर न बैठने को कहते और न किसी को चले जाने का आदेश देते थे।

महात्माजी की आँखें बड़ी-बड़ी और उज्ज्वल थी। उनमें तेज था। उनकी पलकें बहुत कम गिरती थी। मुझे एक घटना की याद अभी तक है। एक बार महामहोपाध्याय प्रमथनाथ तर्कभूषण आपका दर्शन करने आये थे।

बातचीत के सिलसिले में महात्माजी ने उनसे कहा—"तुम शास्त्रों-ग्रन्थों के अध्ययन से पण्डित बने हो, अनुपदेशिक ज्ञान से ही प्रकृत ज्ञान प्राप्त होता है, इसी से आत्मा का शुद्ध परिचय प्राप्त होता है, बाकी सभी माया की लीला है।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२३

प्रेमानन्द तीर्थ स्वामी

जो अपने स्वरूप में रहना पसन्द करते हैं, उन्हें खींचकर बाहर लाने की व्यर्थ चेष्टा करने की अपेक्षा, उनकी संगत करने वाले भक्तों को भी उनकी तरह अन्तर्मुख होकर स्पर्श-सुख के लिए प्रयत्न करना श्रेयस्कर है। वर्तमान शिक्षित-समाज में, अग्रगामी व्यक्तियों में काफी लोग उन्हें जानते हैं और श्रद्धा करते आये हैं। उनके आदर्श और उपदेशों से वे लोग प्रभावित हुए हैं।

मैं अपने कर्मयुग के मध्यकाल में अनेक स्थानों पर उनके अद्‌भुत जीवन के बारे में सुनता रहा। काफी दिनों से उनका दर्शन कर पाने की लालसा थी, काल पूर्ण न होने के कारण मेरी इस इच्छा की पूर्ति नहीं हो पा रही थी।

जहाँ तक स्मरण आता है कि सन् १९३८ में गर्मी के मौसम में कलकत्ता स्थित लेक के किनारे सर्वप्रथम इनका दर्शन किया था। प्रथम दर्शन होते ही मैं यह समझ गया था कि आप इस जगत के आदमी नहीं हैं। आप एक माँ की वास्तविक सन्तान हैं। कठोर ब्रह्मचर्य, आध्यात्मिक शक्ति-सम्पद, अनुपम-वैराग्य, त्यागमय-परार्थ के लिए उन्मुख, सेवामय भाव, सहृदय, करुणा, की मूर्त्ति आदि असंख्य गुण सम्पन्न होने पर भी यदि किसी में बड़ी बात न हो तो मैं उसके प्रति आकृष्ट नहीं होता। लेकिन आप माँ की एक सन्तान हैं जानकर आपकी ओर आकृष्ट हुआ था।

उनके प्रथम दर्शन पर ही उनकी पवित्र मूर्त्ति मेरे हृदय में अंकित हो गयी थी। उन्हें अपना जन समझकर पहचान गया था। सोचता रहा कि अपने चिरपरिचित पुरातन को पुनः नये रूप में प्राप्त किया है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसके बाद सन् १९४५ के बाद से आपके साथ घनिष्ठता बढ़ी। उन दिनों आप प्रति वर्ष काशी में आकर लक्ष्मीकुण्ड मुहल्ले में कुछ दिनों तक रहते थे। प्रथम दर्शन के बाद से ही उनका मुझपर स्नेह हो गया था। क्रमशः इस सम्बन्ध में हमारी अन्तरंगता बढ़ती गयी। मनुष्य-जगत में ऐसे लोग बिरले हैं।

आपके जीवन के आदर्श थे—पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण। वास्तव में उनका हृदय मातृगत था, मातृभक्त सन्तान थे। शाक्त, वैष्ण वाया शैव किसी सम्प्रदाय का बाह्य आडम्बर उनमें नहीं था। वे बुद्ध, यीशु, महम्मद, ज़रथुस्थ, महाप्रभु चैतन्य आदि सभी को समान दृष्टि से देखते थे। उनकी दृष्टि में ये सभी महापुरुष माँ की कृति-सन्तान थे। लेकिन उनके जीवन के आदर्श थे—पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण।

बीस वर्ष का समय बीत गया है। उन दिनों मैं काशी में सिगरा स्थित अपने घर में, कुछ दिनों के लिए गुरुपदिष्ट साधना-कार्य में नियुक्त था। इसे महानिशाकाल में करना पड़ता था। इन्हीं दिनों श्रद्धेय स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज कुछ दिनों के लिए काशी में विश्राम करने के लिए आये थे। वे लक्ष्मीकुण्ड स्थित बगीचेवाले भवन में ठहरे हुए थे। यह सौभाग्य की बात है कि इसके कुछ दिनों पूर्व से ही उनसे मेरी घनिष्ठता बढ़ गयी थी। वे कृपा करके कभी मेरे पास आते और मैं स्वयं भी कभी-कभी उनके पास जाता था।

एक दिन कुछ समय के लिए उनके अनुरोध पर श्रीकृष्ण तत्त्व के बारे में उनके साथ चर्चा होती रही। इस चर्चा का परिणाम यह हुआ कि उन्होंने मेरे सामने प्रस्ताव रखा—अगर मुझे विशेष असुविधा न हो तो यथा सम्भव प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा श्रीकृष्ण प्रसंग लिखवा दिया करूँ। मैंने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया और उनके प्रिय सेवक और भक्त श्रीमान सदानन्द ब्रह्मचारी मेरे यहाँ आते थे। मेरे 'महानिशा' क्रिया में बैठने के पूर्व रात ९-१० बजे के लगभग आते। मैं नित्य कुछ न

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लिखा दिया करता था। समय के अनुसार कभी कम तो कभी अधिक लिखवाया करता था। कभी-कभी ऐसा भी होता कि कारणवश सामयिक रूप से लिखाई का कार्य बन्द रहता था।

सदानन्द धीर, स्थिर और सुलेखक थे। इसके अलावा उनमें श्रुत-लिपि लिखने की आसाधारण क्षमता थी। इससे मुझे काफी राहत मिलती थी। मैं एक आसन पर बैठा, एकाग्र चित्त से जो कुछ बोलता था, उसे वे अबाध गति से लिख लेते थे। प्रकरण समाप्त होने पर वे उसे पढ़कर सुनाते थे। किसी जगह संशोधन या परिवर्तन की जरूरत होने पर कर देता था।

स्वामीजी को प्रतिदिन जब यह सामग्री प्राप्त होती तब वे अपने प्रयोग के लिए एक प्रतिलिपि अपने हाथ से लिखते थे। असल में सभो प्रसंग स्वामीजी की Intensive study के विषय थे। श्रद्धेय स्वामीजो अपनी कापी को अपनी साधना का साथी समझते थे। उसे एक गेरुआ रंग के झोले में बड़े यत्न के साथ संजोये रहते थे। स्वामीजी अपनी कापी का कितनी बार, मनोयोग से पाठ करते थे, इसके प्रमाण उनके द्वारा नाना प्रकार की पेंसिलें से खींची गयी रेखाओं को देखने पर ज्ञात होता था।

उन लेखों को सन् १९४४ के अक्टूबर माह से १९४५ ई० के अगस्त माह तक लिखवाया था। इन लेखों को ऐतिहासिक या सांस्कृतिक दृष्टि से नहीं लिखवाया गया था। श्रीकृष्ण को वे भगवान के रूप में मानते थे और मेरा भी यही विश्वास है। यही है श्रीकृष्ण का परमभाव। मानव-शरीर धारण कर वे किस समय इस धरा पर प्रकट हुए थे, यह इतिहास की खोज का विषय है। कुछ वैष्णव आगम-ग्रन्थों में है कि पुरुषोत्तम की तीन प्रकार की लोलाएँ हैं—पारमार्थिक, प्रातिभासिक और व्यावहारिक। पारमार्थिक लीला निरन्तर अक्षर ब्रह्म के अभ्यन्तर में होती है, प्रातिभासिक लीला भक्तों के हृदय में और व्यावहारिक लीला धरा पर होती है। उनकी पार्थिव-लीला इतिहास का विषय है। यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि तीनों लीलाओं का आपस में सम्बन्ध नहीं है, ऐसी बात नहीं है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भगवान को मनन करने की अनेक प्रणालियाँ और दिशाएँ हैं। प्राचीन और मध्ययुग के भागवतों ने उसके बारे में लिखा है। इस सम्बन्ध में सामान्य रूप से कई सूत्रों का अवलम्बन किया गया है। उसे समझने के लिए विभिन्न दिशाओं से दृष्टि निक्षेप का प्रयत्न किया गया है।

जिनके व्यक्तिगत मनन के लिए पुस्तक का संकलन हुआ था, वे किसी विशेष सम्प्रदाय के अवलम्वी न होने पर भी सभी सम्प्रदायों को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। उनके भाव से प्रभावित होकर मुझे लिखने को बाध्य होना पड़ा था।

जब मैं इन प्रसंगों को लिखवा रहा था तब इस बात की कल्पना नहीं थी कि यह आगे प्रकाशित होगा। न मुझे यह आशा थी और न स्वामीजी जबतक जीवित थे तबतक उनकी साधना के नित्य साथी के रूप में उनके साथ कापी थी। जब सन् १९५९ में उनका देहावसान हुआ तब उनकी भक्त-मण्डली ने बड़ी हिफाजत से पाण्डुलिपि रख छोड़ी थी। सुरक्षित ढंग से रखने पर भी इसका भविष्य अनिश्चित है जानकर मेरे स्नेहभाजन स्वर्गीय डाक्टर शशिभूषणदासगुप्त ने एक दिन मुझे सौंप देने का विचार किया। समय और स्थिति के अनुसार कुछ दिनों बाद मैंने सोचा कि बात ठीक है। इस निश्चय के बाद श्रीमान सदानन्द ने उन कापियों को स्वामीजी के झोले के साथ वापस किया। सदानन्द द्वारा लिखित कापियाँ मेरे पास पहले थी। कापियाँ साल भर मेरे पास पड़ी रही।

इसी बीच स्वामीजी की 'यज्ञ' नामक पुस्तक प्रकाशित हो जाने के बाद श्रीमान सदानन्द ने कहा कि 'श्रीकृष्ण प्रसंग' छप जाता तो अच्छा होता। उसके प्रकाशन की जिम्मेदारी उसने लेली। सिर्फ यही नहीं, काशी में मेरी देखरेख में प्रकाशित होगी, यह सुझाव भी दिया। चूँकि ये लेख स्वामीजी को प्रिय थे अतएव उनके भक्त इसे सादर ग्रहण करेंगे। मैंने सोचा कि इतने दिनों का श्रम उपेक्षित रूप से पड़े रहने की अपेक्षा प्रकाशित हो जाना ठीक है। फलतः मैंने प्रकाशन की अनुमति दे दी।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आज उनके बारे में अनेक बातें कहने की इच्छा हो रही है। लेकिन कहने का उपाय नहीं है फिर भी एक बात बिना कहे रहा नहीं जा रहा है। शायद १९५२-५३ की बात है। शिवरात्रि के दिन थे। स्वामीजी की इच्छा थी कि मैं उनके साथ कुछ दिन एकान्तवास करूँ। इस बारे में वे कई बार कह चुके थे। लेकिन इस दिशा में सुविधा प्राप्त नहीं हो रही थी। अन्त में सारनाथ स्थित रामतीर्थ आश्रम में हम दोनों के लिए रहने की व्यवस्था हो गयी। साथ में कई भक्त थे। बाहरी उद्देश्य था—'पूजा' नामक ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना। उस समय तक उसके प्रकाशन की व्यवस्था नहीं हुई थी। इन्हीं दिनों मुझे स्वामीजी के अन्तर्जगत का परिचय मिला। यह प्रकाशन योग्य तो नहीं है, पर मैं उसे कभी भूल नहीं सकता। उस समय यह समझ सका कि उनके बारे में कोई कुछ सोचे, पर वे थे—मुक्तयोगी भक्त।

इस प्रकार के महापुरुष का जीवन-वृत्तान्त जानने की इच्छा किसे नहीं होती। अन्य लोगों की हो या न हो, मेरी इच्छा होती है। वे लोगों से मिलना-जुलना पसन्द नहीं करते थे—अहेरिव गणात् भीतः—उन्हें एकान्त बहुत प्रिय था।

वास्तविक रूप में भावना को पाने के लिए, उनकी तरह आत्मविस्मृत होकर अन्तर्मुख से उनकी संगति करनी चाहिए। बाह्य दृष्टि से माया-जगत का प्रकाश—देश-काल का विराट व्यवधान और जटिलता है। अन्तर्मुख होने पर एक मात्र चिदाकाश से साक्षात्कार होता है। वहाँ देश, काल या किसी आचरण का कोई व्यवधान नहीं रहता, वहाँ जो कुछ खोजा जाता है, वह क्षणमात्र में प्राप्त हो जाता है। वहाँ उनसे नित्य संसर्ग हो सकता है। यह संसर्ग आवश्यक है—हमारी ओर से और उनकी ओर से भी।

सारनाथ के निर्जन, शान्त परिवेश में रहते हुए हमारी आपसी चर्चाएँ पुष्ट हुई। बाद में वही बातें 'पूजा' नामक पुस्तक के रूप में, जन्माष्टमी सन् १९५६ के अवसर पर मेरे नाम से प्रकाशित हुई।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

गोकि आपका जन्म पूर्वी बंगाल में हुआ था, परन्तु जीवन का अधिकांश समय भारत के उत्तर-पश्चिम भागों में व्यतीत हुआ था। एक अर्से तक आप काशी में थे। उनमें एक विशेष गुण यह था कि वे रुपये-पैसे लेना दूर रहा, कभी स्पर्श भी नहीं करते थे। एक प्रकार से अयाचक प्रवृत्ति उनमें थी। न तो उनमें अभाव-बोध था और न कभी उन्हें अभाव का सामना करना पड़ा। पूर्वी बंगाल में उनके बारे में अनेक अलौकिक कहानियाँ प्रचलित थी। इस तरह की घटनाओं से मैं मुग्ध हो उठा था।

आपने अपने भक्तों को जितने पत्र लिखे थे, उनमें से अधिकांश प्रकाशित हो चुके हैं। इन पत्रों में विभिन्न स्थानों के पते होते थे जैसे कलकत्ता, आगरा, कश्मीर आदि। आप अपनी इच्छा के अनुसार भ्रमण करते थे। आप जिस प्रकार बाहर से 'प्रेमानन्द' थे, ठीक उसी प्रकार आपके भीतर भी प्रेम तरंग प्रवाहित होती थी। उनके भक्तों के अलावा और भी जितने लोग आपके पास आते, वे भी यही अनुभव करते थे। आपके सम्पर्क में आकर अनेक सन्तप्त व्यक्ति अपने में शान्ति अनुभव करते थे।

आपका सिद्धान्त था कि साधना के माध्यम से भगवत्-कृपा प्राप्त करते हुए पुरुषोत्तम तक पहुँचना चाहिए। माँ के सान्निध्य में जाने या योग्यता प्राप्त करने के लिए इस स्थिति की आवश्यकता होती है।

पूजा ही साधना

एक दिन श्रीमान सदानन्द ब्रह्मचारी ने पूछा था—"मनुष्य को जो अवश्य प्राप्त होना चाहिए, क्या वह पूजा द्वारा अर्जित करना सम्भव है ?"

प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा था—"सदानन्द, यद्यपि तुम्हारा प्रश्न संक्षिप्त है तद्यपि उत्तर विशद रूप से देने का प्रयत्न करूँगा। पूजा के बारे में धार्मिक-ग्रन्थों में जातियों तथा भक्ति-सम्पन्न साधकों को, जो कुछ करणीय है, उसके बारे में संक्षेप में लिखा गया है। वास्तव में पूजा ही साधना है। कर्म, ज्ञान, भक्ति सब कुछ पूजा के अन्तर्गत है। लेकिन यहाँ

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्मरण रखना पड़ेगा कि केवल पूजा से ही साधक पूर्णता प्राप्त नहीं कर पाता इसका वास्तविक रहस्य क्या है, संक्षेप में उसे बता रहा हूँ।

"मानव पंचकोष विशिष्ट जीव है। अन्नमय और प्राणमय कोष का विकास तथा मनोमय कोष का पूर्वाभास, मनुष्य के चौरासी लाख पूर्वतन योनि में ही पूर्ण हो जाते हैं। मनोमय कोष का विकास मनुष्य के शरीर से ही होता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य के शरीर के गठन में वृद्धि होती हैं त्यों-त्यों मनोमय कोष का विकास होता रहता है। मनुष्य शरीर प्राप्त होने के पूर्व उसमें विवेक, ज्ञान, विचार, बुद्धि सदविवेचन प्राप्त नहीं होते। कतृत्वाभिमान की अभिव्यक्ति मनुष्य शरीर की विशिष्टता है। मनुष्य शरीर प्राप्त होने पर लोगों की प्रकृति में पशुभाव दीर्घकाल तक बना रहता है। सदसत् विवेक उत्पन्न होने के बाद ही नैतिक जीवन का सूत्र-पात होता है। नैतिक जीवन का महत्त्व ही पशु-जीवन से मनुष्य-जीवन को उत्कर्ष देता है। अगर भगवान की कृपा प्राप्त हो जाय तो इस नैतिक जीवन की विशिष्टता में, मनुष्य के आधार का बीज निहित हो जाता है। मनुष्य-जीवन का इस प्रकार निर्माण होना आवश्यक है जिससे उसकी क्षुद्रता और संकोच भाव दूर होकर व्यापक उदार भावनाओं का विकास हो सके जिससे मनुष्य चित्तशुद्धि के द्वारा अन्तर्मुख की ओर अग्रसर होने में समर्थ हो सके और दूसरी ओर व्यापक सत्ता के साथ सम्पर्क करते हुए, विश्व कल्याण के लिए उन्मुख हो सके। श्री भगवान ने उपदेश दिया है कि निष्काम कर्मानुष्ठान ही मुख्य सीढ़ी है। कर्त्तव्य के अनुसार कर्म करके कर्मफल भगवान को समर्पित करना चाहिए। कर्मफल में अनासक्त रहने पर चित्तशुद्धि होना अनिवार्य है और कर्म का अनुष्ठान भी सुचारु रूप से सम्पन्न होता है। इसी का नाम है—योगस्थ कर्म। कर्म करना होगा, पर कर्म से प्राप्त फलों को समस्त विश्व में वितरित करना होगा—स्वकर्म पर अधिकार न रखना ही ऊर्ध्वगति की पहली सीढ़ी है। यहीं पर सिद्धि-असिद्धि का मूल्यांकन हो जाता है। इसके प्रभाव से चित्त की मलिनता दूर हो जाती है। कर्म का निरूपण गुरू या उपदेष्टा के

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अधीन होता है। देश-काल और व्यक्तिगत प्रकृति के अनुसार है, इस पर विचार करना चाहिए।

"इस प्रकार लम्बे अर्से तक कर्म में लगे रहने पर एक ओर बाह्य-जगत के साथ अपना सम्पर्क अक्षुण्ण बना रहता है और दूसरी ओर निष्कामता के कारण चित्तशुद्धि होती है और तब सहज रूप में ज्ञान का उदय होता है। यह ज्ञान, शास्त्रों से उपलब्ध ज्ञान नहीं है, यह अपनी उपलब्धि के लिए ज्ञान है। इस ज्ञान के उदय होने पर स्पष्ट रूप से देखने में आता है कि मनुष्य चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, वस्तुतः वह कुछ नहीं करता। वह स्वयं देखता है कि त्रिगुणा प्रकृति के गुणों के द्वारा सभी कर्म सम्पन्न होता हैं। वह अपने अहंकार से विमूढ़ होकर कर्त्ता समझता है—"प्रकृतेः क्रिय माणानि गुणैः कर्माणि सवशः। अहंकार विमूढ़ात्मा कर्ताहहमिति मन्यते ॥" यही स्थिति ज्ञान की सूचना देती है जब हम अपने अहंकार को देख पाते हैं और तब समझ पाते हैं कि अहंकार से कर्म सम्पन्न नहीं होता। कर्म सम्पन्न होता है प्रकृति के गुणों से। निष्क्रिय अकर्त्ता पुरुष अभिमानवश अपने को कर्त्ता समझता है। वास्तव में वह उसी समय समझ पाता है कि वह कुछ करता नहीं और न कुछ कर सकता है।

"इस प्रकार मनुष्य कर्म के स्तर से ज्ञान के स्तर तक पहुँचता है। ज्ञान के स्तर में कुछ दिनों तक सँचरण करने के बाद उसे अनुभव हो जाता है कि अचेतन गुण अपने आप संचालित होकर कर्म नहीं कर पाता, प्रकृति के द्वारा ही सभी कर्म सम्पन्न होते हैं। अगर पृष्ठभूमि से परमात्मा संचालन न करें तो केवल प्रकृति अपने आप कुछ नहीं कर सकती। दर-असल प्रकृति जड़ होती है, इसलिए भगवान ने कहा है—"मयाहध्यक्षेणा प्रकृतिः सूयते सचराचरम"—मैं प्रकृति का संचालन करते हुए जीवों के सभी कर्मों का सम्पादन करता हूँ—प्रकृति की सभी क्रियाओं में मैं अधिष्ठाता हूँ।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"अब हमें यह ज्ञात हो गया कि कर्म के पृष्ठभाग में परमात्मा की संचालन अँगुली है। इसी समय मनुष्य में भक्ति का स्तर आरंभ होता है। परमात्मा का जबतक दर्शन नहीं होता तबतक भक्ति का जन्म नहीं होता। महाजन कह गये हैं कि वास्तविक भक्ति का उदय ज्ञान के बाद होता है। सन्तान के जन्म के पहले जिस प्रकार उसके प्रति माँ में वात्सल्य का जन्म नहीं होता, उसी प्रकार भगवान से साक्षात्कार न होने पर उनके प्रति वास्तविक भक्ति उदय होने की सम्भावना नहीं रहती। अब मनुष्य कर्म के बाद ज्ञान प्राप्त कर भक्ति का अधिकारी बना। भगवत्-स्वरूप में अब कोई दूरी नहीं है, क्योंकि परमात्मा आत्मा के रूप में रहते हुए आत्मा को, तत्कार्यों में माया-शक्ति के द्वारा नियोजित करते हैं। भगवान ने कहा है—'ईश्वरः सर्वभूतानाँ हृद्देशहर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया ॥' अब मनुष्य अपने भीतर स्थित भगवान को देख पाता है। अब उसकी समझ में आया कि ईश्वर ही माया के अधिष्ठाता हैं। वे प्रत्येक के हृदय में स्थित रहते हुए माया के द्वारा कार्य करवाते हैं। मनुष्य के सभी कार्यों का मूल कर्तृत्व उनका है, मनुष्य का नही है। मानव में केवल अभिमान मात्र है। मनुष्य अपने हृदय स्थित परमात्मा को लक्ष्य करके उनके निकट आत्म-समर्पण करता है और प्रार्थना करता है कि वे उसे असत् से सत की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर ले चलें। इस आत्म-समर्पण को शास्त्रों में प्रपत्ति कहा गया है। इसका अर्थ है—शरणागति। यही है वास्त्रविक संन्यास। इस प्रकार सर्वधर्म को छोड़कर एक मात्र अपने अधिष्ठाता परमपुरुष का जो कि हृदय में है, आश्रय ग्रहण करना चाहिए। यही कार्य मनुष्य के कर्त्तव्यों का चरम कर्त्तव्य है। इसके बाद मनुष्य को और कुछ करना नहीं रह जाता। उसे जो कुछ करना है, वह सब प्रभु उसका प्रतिनिधि बनकर स्वयं करते हैं। उस वक्त मनुष्य को एक ही कार्य करते रहना चाहिए। वह यह कि हृदय स्थित इस प्रभु को पकड़े रहना चाहिए। यह निष्ठा के अलावा और कुछ नहीं है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इससे मनुष्य पहले पहल स्खलित हो जाता है तब महाकारुणिक परम-पिता उसे ढाँढ़स देते हुए कहते हैं—'हे मनुष्य, अब तुम शिशु बनकर मेरी गोद में बैठ जाओ। तुम्हारा कर्त्तव्य समाप्त हो गया है। अब मेरा कर्त्तव्य आरम्भ हो रहा है। कभी तुम अहंकार में उन्मत्त थे, अज्ञान में डूबे थे, मुझे पहचान नहीं पाये थे, मेरा आश्रय तुमने नहीं लिया, इसीलिए तुम्हें इस लम्बे मार्ग पर इतना कष्ट सह्य करना पड़ा। अब तुम्हारे लिए कोई कर्त्तव्य अवशिष्ट नहीं रहा। आज से तुम मेरे आश्रित हो। तुम्हें शुद्ध करना, पूर्ण करना—मेरा काम है—तुम्हारा नहीं।'

"यही है मनुष्य जीवन का द्वितीयार्द्ध। जब तक मनुष्य अहंकार के घेरे में रहता है तबतक उसे कर्म में व्रती रहते हुए भगवान को पाने के मार्ग की ओर बढ़ते रहना चाहिए। इस मार्ग पर चलते रहने पर कर्म ज्ञान के रूप में परिणत हो जाता है, ज्ञान भक्ति के रूप में परिणत होता है—भक्ति शरणागति में सार्थकता प्राप्त होती है और भगवान स्वयं मनुष्य के सभी भार को सहर्ष ले लेते हैं। यही है मनुष्य जीवन का प्रथमार्द्ध। अभी तक जीवन की पूर्णता नहीं हुई है—यह पूर्णता भगवान के हाथ में रहती है। अब तक भगवान अज्ञात थे, गुप्त थे और मनुष्य के ज्ञान की सीमा से बाहर थे। अब तक मनुष्य ने उनके निकट आत्म-समर्पण नहीं किया था, इसलिए भगवान ने बल पूर्वक उसे सुधारने की जिम्मेदारी नहीं ली, क्योंकि स्वतंत्रता ही सर्वत्र अग्रगति का मूल है। शेष अर्द्ध मार्ग में, प्राकृत मनुष्य-जीवन अप्राकृत दिव्य-जीवन में परिणत हो जाता है और इस परिणाम-क्रिया के मूल शिल्पी भगवान स्वयं हैं।

"पंचकोषों के बारे में पहले ही कह चुका हूँ। ऊर्ध्वगति में विज्ञानमय कोष दिखाई देता है। इसके बाद आनन्दमय कोष बाकी रहता है। आनन्दमय कोष अमृत स्वरूप है। जब मनुष्य प्रपन्न हो जाता है तब भगवान की इच्छा-शक्ति कृपा रूप में अवतीर्ण होती है और ज्ञान शक्ति तथा क्रिया शक्ति के द्वारा मनुष्य का पूर्ण शोधन करती है। पूर्ण शोधन-क्रिया से सर्वप्रथम मनुष्य भगवान की कृपा से काल से अपनी रक्षा

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करने में समर्थ होता है। इसी को अमरत्व कहते हैं। पंचकोषों की शुद्धि हो जाने के बाद कायशुद्धि के रूप में परिणत हो जाता है। इसके बाद इस सिद्धकाया से जरा-मृत्यु हट जाते हैं और अमरत्व की प्राप्ति होती है।

"इससे भी मनुष्य को पूर्णत्व की प्राप्ति नहीं होती। इसके बाद परम प्रेम की अभिव्यक्ति होती है जो सिद्ध पुरुषों के लिए भी अनधिगम्य होता है। उस वक्त मनुष्य—मनुष्य होने पर भी भगवत् स्वरूप में परिणत हो जाता है। यहाँ आकर मनुष्य द्वितीयार्द्ध समाप्त करता है। प्रथमार्द्ध में मनुष्य कर्त्ता, भगवान उसके अन्तरस्थित साक्षी स्वरूप रहते हैं, द्वितीयार्द्ध में भगवान कर्त्ता और मनुष्य उस समय उनके श्रीचरणों में या गोद में बैठा उनकी अनन्त लीला का दर्शन करता है। इसके बाद कोई कर्त्ता नहीं रहता। नित्य सिद्ध रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। यही है मनुष्य-जीवन की सार्थकता एवं पूर्णता। मनुष्य भगवत्ता प्राप्त करने के बाद भी मनुष्य बना रहता है वर्ना उनकी लीला का आस्वादन कैसे करेगा ?

"पूजा-ग्रन्थों में मनुष्य के आरोह के बारे में लिखा गया है। यहाँ संक्षेप में भगवान को लेकर उनके आरोह-गति की बातें बतायी गयी। इस प्रकार दोनों गति में प्राथमिक गति समाप्त हुई। इसके बाद जो गति है, वह स्थिति से अभिन्न है। उस समय स्थिति भी गति, गति भी स्थिति, शिव ही शक्ति, शक्ति ही शिव है—यही है अद्वयतत्त्व।

"पारमार्थिक राज्य का नियम है कि पूजा के बाद प्रणाम और प्रणाम के बाद प्रसाद लेना। इसका तात्पर्य यह है कि पूजा तभी समाप्त होती है जब उसके फल में ममत्व तथा अहन्ता पूर्ण रूप से समाप्त हो जाता है। गीता में श्री भगवान ने इसे निर्मम निरहं भाव को कहते हुए इसकी व्याख्या की है। वास्तव में पूजा तथा अन्य सेवाओं के बाद प्रणाम अहंभाव की निवृत्ति है, यही चरम स्थिति है। उस समय अपने में शून्य भाव के बाद परिपूर्ण रिक्तता का अभाव उत्पन्न होता है। इसके बाद वाली अवस्था प्रसाद है। इस अवस्था की रिक्तता को भगवान पूर्ण कर देते हैं, अर्थात्

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपनी सत्ता—अखण्ड सच्चिदानन्दमय परम सत्ता के माध्यम से भक्त की रिक्तता की पूर्ति कर देते हैं। भक्तों की ओर से इसे प्रसाद-ग्रहण कहा जाता है। पहले ही बताया गया है कि भगवत्-कृपा से जो भागवत-जीवन प्राप्त होता है, वही वास्तव में पूजा के अनुसार प्रसाद है। भक्त जब पूजा करने जाता है तब आत्म-समर्पण करने के बाद समझ जाता है कि वे कुछ नहीं है। भगवान उसे प्रसाद देते हुए समझा देते हैं, तुम्हीं सब कुछ हो, तुम्हीं भगवान हो। पूजा अगर ठीक से सम्पन्न हो जाय तो प्रसाद अवश्य आयेगा, इसमें अन्यथा नहीं है।"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२४

बालानन्द ब्रह्मचारी

इस महात्मा का नाम मैं बचपन से सुनता आ रहा था, पर किसी प्रकार का अवसर, सुविधा न पाने के कारण इनसे मिल नहीं सका।

सन् १९०५ ई० में टेस्ट परीक्षा आरंभ हुई। परीक्षा में प्रथम आया था। सन् १९०५ में ही रमेश ग्रन्थावली, महाराज नन्दकुमार, हरिनाथ दे द्वारा सम्पादित पैलग्रेव्स गोल्डेन ट्रेजरी, हितवादी का उपहार, रवीन्द्र ग्रन्थावली, योरोप यात्री की डायरी, प्रवास चित्र और परीक्षा देने लायक कुछ पुस्तकों का संग्रह किया था।

सन् १९०५ ई० बंगाल तथा भारतीय राजनीतिक जीवन का एक नया अध्याय रहा है। इसी वर्ष बंगाल का विभाजन हुआ था और सम्पूर्ण भारत में आन्दोलन हुआ था।

२० अप्रैल को मैमनसिंह में बंगीय प्रादेशिक सम्मेलन हुआ। राष्ट्रगुरु सुरेन्द्रनाथ बनर्जी इस सभा में उपस्थित थे। इस सम्मेलन में उनका अभिनन्दन हुआ था। इस सम्मेलन में मैं भी मौजूद था। ऐसे माहौल में १९०५ ई० में मैं इन्ट्रेस की परीक्षा में पास हुआ। मलेरिया के आक्रमण का शिकार हो गया। दवाओं से कोई लाभ नहीं हुआ। लोगों ने सलाह दी कि पछांह कीं ओर चला जाऊँ।

२८ अक्टूबर को माँ को साथ लेकर नवद्वीप आया। माँ के गुरुपुत्र वृन्दावनचन्द्र गोस्वामी इन्हीं दिनों दान्या आये हुए थे। उन्होंने सलाह दी कि मधुपुर चला जाऊँ। उन्होंने यह भी बताया कि मधुपुर में मेरे परिचित लोग हैं। वहाँ किसी प्रकार की असुविधा नहीं होगी। माँ ने सोचा कि उधर नवद्वीप में गंगा स्नान की सुविधा होगी। यह सोचकर वे राजी हो गयीं। नवद्वीप में पूर्व परिचित अभय गोस्वामी थे। माताजी उन्हीं के आश्रय में रहेंगी और वृन्दावनचन्द्र मुझे साथ लेकर मधुपुर

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जायगा। यह सारी बातें तय होने के बाद हम दान्या से रवाना हुए। पहले ग्वालन्दो आये, वहाँ से कृष्ण नगर। इसके बाद माँ को अभय गोस्वामी के पास रखकर मैं वृन्दावनचन्द्र के साथ मधुपुर चला आया।

धामराई रहते सुना था कि देवेन्द्रराय यहाँ रहते हैं। उनके यहाँ रहने की जगह मिल जायगी। देवेन्द्रराय धामराई गाँव के भारत सेन की पुत्री गिरिबाला के पुत्र थे। काफी तलाश करने पर भी देवेन राय का पता नहीं चला। मैंने सोचा कि वैद्यनाथधाम पास ही है। यहाँ किसी पण्डा के यहाँ ठहर जाऊँ, फिर फुरसत से सब कुछ करूँगा। यह सोचकर वैद्यनाथ धाम चला आया।

वैद्यनाथ धाम में नरेशचन्द्र बसु नामक एक बंगाली छात्र के घर गृह शिक्षक के रूप में एक महीना था।

इन दिनों प्रसिद्ध पत्रकार महात्मा शिशिरकुमार घोष देवघर में रहते थे। राजनारायण बसु भी थे। एक दिन साहस करके शिशिर कुमार घोष से मिलने गया। परलोक तत्त्व के बारे में उनसे बातें करता रहा। कम उम्र के बालक में इस सम्बन्ध में जिज्ञासा देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए। बाद में उन्होंने कहा कि आगे फिर मिलना।

देवघर के शान्त परिवेश में स्वास्थ्य ठीक होने लगा।

ब्रह्मचारीजी अधिकतर देवघर में रहते थे। उनसे मिलने की इच्छा तीव्र हो उठी। उनके तपोवन का पता मालूम था और वहाँ तक पहुँचने का रास्ता जानता था, पर साथी के अभाव में वहाँ जा नहीं सका। मेरे एक रिश्तेदार कम उम्र में संन्यासी बनकर भारत के अनेक तीर्थों का दर्शन कर चुके थे और अनेक साधु-सन्तों को देख चुके थे। आपकी जबानी ब्रह्मचारीजी के बारे में विस्तार से सुना था।

उज्जैन के सारस्वत ब्राह्मण वंश में आपका जन्म हुआ था। संन्यास ग्रहण करने के पूर्व आपका नाम पीताम्बर था। गंगोनाथ ब्रह्मानन्द महाराज से दीक्षा लेने के बाद आपका नाम हुआ—बालानन्द। इस प्रकार ज्योतिः मठकी आनन्द उपाधि प्राप्त कर साधक वंश के अन्तर्भुक्त हुए।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सात्त्विक-संस्कार आपमें बचपन से ही था। शिप्रा नदी के तट पर, उज्जैन स्थित भर्तृहरि और गोरखनाथ की गुफाओं में आपका आना-जाना जारी था। कभी-कभी सन्दीपन मुनि के जंगलवाले आश्रम में जाते थे।

गवर्मेण्ट संस्कृत कालेज में जब मैं कार्यरत था तब एक बार बालानन्द ब्रह्मचारी के प्रधान शिष्य श्रीमान प्राणगोपाल मुखोपाध्याय मुझसे मिलने के लिए काशी आये थे। आप स्वयं एक तपस्वी पुरुष थे। आपसे मुलाकात होने के बाद ब्रह्मचारीजी से मिलने की इच्छा तीव्र हो उठी, पर समयाभाव के कारण मिल नहीं सका।

सन् १९३५ में बेरी-बेरी से पीड़ित होकर जब हवा-पानी बदलने के लिए शिमूलतला आकर रहने लगा तब शिवरात्रि के दिन शिव-पूजा करने के लिए वैद्यनाथधाम गया। उन्हीं दिनों वहाँ प्राण गोपाल बाबू से भेंट हुई। गृहस्थाश्रम में रहते हुए वे संन्यासी जैसा जीवन व्यतीत करते थे। समाज में शुक्ल संन्यासी के नाम से प्रसिद्ध थे। प्राणगोपाल बाबू मुझे अपने साथ लेकर ब्रह्मचारीजी के पास ले आये। ब्रह्मचारीजी अस्वस्थ थे। उन दिनों नर्मदा कुण्ड के समीप एक निर्जन स्थान पर रहते थे। इस बेमौके पर उन्होंने जिस ढंग से आदर-स्वागत किया, ऐसा कम लोग करते हैं।

बातचीत के पूर्व मुझे तथा दो अन्य व्यक्तियों को उन्होंने बड़े स्नेह के साथ जलपान कराया। हम लोग फलाहार करने में व्यस्त थे और आप खिलाने का आनन्द ले रहे थे। उनके स्नेहपूर्ण व्यवहार को अनुभव करते हुए हम लोग भी आत्ममग्न हो गये।

फलाहार के बाद तत्त्वकथा पर चर्चा होने लगी। 'स्वरोदय विज्ञान' के बारे में मैंने कई सवाल किये। ब्रह्मचारीजी ने इस सम्बन्ध में अनेक नये तथ्य के उदाहरण देते हुए मुझे समझाया। इसके

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

बाद उन्होंने कहा—"कविराजजी, इस बारे में मैं क्या कहूँगा। आपके गुरुदेव इस विषय के विशेषज्ञ है। उनकी तरह विज्ञान-अभिज्ञ पुरुष बिरले होंगे। पुरी के दिगम्बर बाबा (तोतापुरी) इस शास्त्र में पारंगत हैं।"

इसके बाद अन्य विषयों पर देर तक बातें होती रहीं। बाद में प्राणगोपाल बाबू आश्रम के चारों तरफ घूमकर देखते रहे। लौटते वक्त ब्रह्मचारीजी को प्रणाम कर वापस चला आया। बहुत दिनों से उनके दर्शन के लिए लालायित था। ब्रह्मचारीजी से यही पहली और अन्तिम मुलाकात थी। बाद में उनसे कभी भेंट नहीं हुई।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२५

भूपेन्द्रनाथ सान्याल

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शान्ति निकेतन के प्रारंभिक काल में जब ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थापना की, उन दिनों भूपेन्द्रनाथ सान्याल कुछ दिनों तक ब्रह्मचर्य आश्रम में अध्यापक थे। निष्ठावान और सदाचारी ब्राह्मण होते हुए भी ब्राह्मसमाजी रवीन्द्रनाथ ठाकुर को वे कितनी श्रद्धा से देखते थे, इसके प्रमाण रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पत्रों में प्राप्य हैं। मैंने यह भी सुना है कि विधुशेखर शास्त्री और क्षितिमोहन सेन इन दोनों अध्यापकों का संवाद रवीन्द्रनाथ को सान्याल महाशय ने ही दिया था।

सन् १९१२ के जुलाई माह में एम० ए० के सेकेण्ड इयर में भर्ती हुआ। इन्हीं दिनों सान्याल महाशय का नाम सुनने में आया। आप काशी निवासी श्यामाचरण लाहिड़ी के वृद्धावस्था के शिष्य थे। आपके द्वारा विभिन्न विषयों पर लिखित लेखों को पढ़ कर आनन्दित हुआ था। खासकर योग सम्बन्धी अनेक तत्त्व आपसे मुझे प्राप्त हुए थे। 'योगाश्रम' के निर्माण के समय इस महात्मा से मेरा परिचय हुआ था।

हिन्दू-धर्म-प्रचारक स्वामी कृष्णानन्द ने 'योगाश्रम' की प्रतिष्ठा की थी। इसी योगाश्रम में सान्याल महाशय से घनिष्ठ परिचय हुआ था। जब वे काशी आते तब यहीं ठहरते थे। स्वामी कृष्णानन्द के शिष्य और आश्रम के प्रधान सेवक स्वर्गीय क्षेत्रमोहन सेन महाशय के समय से मैं इस आश्रम से सम्बन्धित रहा।

वे जब काशी आते तब मेरे यहाँ खबर भेजते थे। यहाँ तक कि अनेक बार मेरे घर आकर मुलाकात करते थे। मैं स्वयं भी उनके यहाँ जाता था, क्योंकि श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय के साधना-जीवन के बारे

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

में विभिन्न प्रकार के तथ्यों का संकलन करने की मेरी इच्छा थी। हम इस सम्बन्ध में नित्य तरह-तरह की बातें करते थे। वे लाहिड़ी महाशय के बारे में अपने अनुभव, साधना तत्त्व तथा अन्य बातों को बताया करते थे। इन सब कारणों से थोड़े ही दिन के भीतर हम दोनों में गहरी मैत्री हो गयी थी।

बिहार के भागलपुर जिले में मन्दार पर्वत है जहाँ वे गुरुधाम की स्थापना कर रहे थे। वहाँ जाने के लिए आपने मुझसे बार-बार अनुरोध किया था ताकि कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न करने में उचित सलाह दे सकूँ। मेरी हार्दिक इच्छा थी कि ऐसे अवसर पर वहाँ जाऊँ, फिर भी समयाभाव के कारण नहीं जा सका।

बाद में काशी के हरिश्चन्द्र घाट पर आपने एक आश्रम बनवाया और निश्चय किया कि जीवन के अन्तिम दिन यहीं व्यतीत करेंगे। आपके इस आश्रम में उनसे मिलने के लिए मैं नियमित रूप से जाया करता था।

सन् १९३६-३७ की बात है। वे अपने गुरू द्वारा लिखित श्रीमद्-भगवतगीता की व्याख्या कर रहे थे। बाद में उन्होंने भूमिका लिखने का भार मुझे दिया। उनके इच्छानुसार उक्त ग्रन्थ की भूमिका मैंने लिख दी थी। मेरी भूमिका पाकर वे प्रसन्न हो गये थे।

आप मेरे प्रति जितने आस्थावान थे, मैं भी उनके प्रति उतना ही श्रद्धावान था। अगर कोई व्यक्ति अध्यात्म के मार्ग पर अग्रसर होने की इच्छा प्रकट करता था तब मैं उन्हें सान्याल महाशय के पास जाने की सलाह देता था। विदेशी तथा भारतीय जिज्ञासुओं को वे मेरे अनुरोध पर दीक्षा देते थे और उन्हें योगमार्ग में प्रवेश कराते थे।

सान्याल महाशय गुरु-परम्परा में योगी थे ही, ऊपर से वे शास्त्र विहित आचार-मार्ग का अनुसरण करते हुए अपनी निष्ठा और

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पराकाष्ठा का प्रदर्शन करते रहे। वर्तमान समय में उनकी तरह का आदर्शपूत चरित्र देखने में नहीं आता।

उनकी छोटी मुद्रित पुस्तक से आरोप-साधन सम्बन्धी विषय-वस्तुओं का संकलन करके मैंने एक लेख लिखा था। उनके प्रति मेरी ऐसी आस्था थी कि बिना उनका दर्शन किये मैं रह नहीं पाता था। जब मैं पुरी में अपने गुरुधाम में जाता था तब यदि सान्याल महाशय अपने गुरुधाम पुरी में उपस्थित रहते तो प्रति दिन उनका दर्शन करने के लिए मैं अवश्य वहाँ जाता था।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२६

आचार्य ब्रजेन्द्रनाथ शील

आज से बहुत दिन पहले की बात है। शायद सन् १९०३ की बात है जब पहली बार मैंने ब्रजेन्द्रनाथ शील का नाम और ख्याति सुनी। उन दिनों मैं ढाका जुबली स्कूल में पढ़ता था। हमारे गाँव (काँठालिया) के समीप देवहाटा नामक एक छोटा सा गाँव था। वहाँ अविनाशचन्द्र सरकार नामक एक लड़के का मकान था। वह लड़का मुझसे २–४ साल बड़ा था। बहुत गरीब परिवार का था और बचपन से ही परदेश में रहकर घर-घर छात्रों को पढ़ाते हुए शिक्षा प्राप्त कर रहा था। पहले ढाका में पढ़ता था, बाद में बी० ए० पढ़ने के लिए कूचबिहार गया और वहीं विक्टोरिया कालेज में भर्ती हो गया। गर्मियों की छुट्टियों में वह अपने घर आता तो मुझसे मुलाकात करता था। इसी की जबानी मैंने पहले पहल ब्रजेन्द्रनाथ शील का नाम सुना। बाद में शील महाशय के बारे में कई जगह उनके असाधारण ज्ञान के बारे में सुना था, पर सर्वप्रथम तो अविनाश बाबू की जबानी उनकी बातें सुनीं थी।

शील महाशय कूचबिहार विक्टोरिया कालेज के अध्यक्ष थे। अंग्रेजी, साहित्य, दर्शन, गणित आदि विषयों पर उनका असाधारण ज्ञान था। लेकिन उनका भाषण अधिकांश छात्र समझ नहीं पाते थे। उनकी रचना-शैली मस्तिष्क में प्रवेश नहीं कर पाती थी। अति सरल जीवन-धारा और असामान्य ज्ञान गरिमा—यही उनकी विशिष्टता थी।

मेरे पिता ने जगन्नाथ कालेज से एफ० ए० पास किया था। उनके सहपाठी थे—रामदयाल मजुमदार। रामदयालजी महाशय तत्कालीन प्रसिद्ध अध्यापक नीलकण्ठ मजुमदार के छोटे भाई थे। आपकी 'गीता-रहस्य' पुस्तक अपूर्व है।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एफ० ए० पास करने के बाद वे कलकत्ता के प्रेसिडेन्सी कालेज में भर्ती हुए थे। बाद में जनरल असेम्बली में चले गये। वहाँ से बी० ए० परीक्षा में, संस्कृत में आनर्स के साथ प्रथम श्रेणी में पास हुए थे। द्वितीय हुए थे—विधुभूषण गोस्वामी। आगे चलकर विधुभूषण गोस्वामी ढाका के जगन्नाथ कालेज में संस्कृत के प्रधान अध्यापक पद पर नियुक्त हुए थे।

जिन दिनों मैं ढाका के जुबली स्कूल में पढ़ता था, उन दिनों एक दिन जगन्नाथ कालेज के संस्कृत विभाग के प्रधान अध्यापक विधुभूषण गोस्वामी के घर जाकर मिला था। विधु बाबू मेरे पिता का नाम सुनकर चौंक उठे थे। बाद में उन्होंने कहा—"तुम बैकुण्ठ के लड़के हो? वह तो मेरा अन्तरंग मित्र था। तुम मुझसे पाणिनि का पाठ पढ़ोगे, यह तो प्रसन्नता का विषय है। तुम्हारे प्रति विशेष ध्यान रखना, मेरा परम कर्त्तव्य है।"

आपके इस व्यवहार से मेरा हृदय आनन्द से भर उठा। इसके बाद से वे मुझे सिद्धान्त-कौमुदी पढ़ाने लगे। मेरे पिता और जानकीनाथ भट्टाचार्य आचार्य ब्रजेन्द्रनाथ शील के घनिष्ठ मित्रों में अन्यतम थे। ब्रजेन्द्रनाथ, नरेन्द्रनाथ दत्त (विवेकानन्द) सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय (डान सोसायटी), रामदयाल मजुमदार और बारीशाल के प्रसिद्ध व्यक्ति जगदीश मुखोपाध्याय को लेकर जो मित्र-गोष्ठी बनी थी, उसमें बड़े-छोटे का भेद नहीं था। तत्कालीन विद्वत्-समाज में पिताजी विशेष रूप से परिचित थे। संस्कृत कालेज के अध्यक्ष महेशचन्द्र न्यायरत्न का पिताजी पर विशेष स्नेह था। विभिन्न सम्प्रदाय के आचार्य जैसे हिन्दू-धर्म के व्याख्याता शशधर तर्कचूड़ामणि, ब्राह्मधर्म के प्रचारक शिवनाथ शास्त्री, विजयकृष्ण गोस्वामी आदि के साथ पिताजी की घनिष्ठता थी। सुना है कि विद्यासागर महाशय तथा उस युग के प्रसिद्ध चिकित्सक महेन्द्र लाल सरकार पिताजी को पुत्रवत स्नेह करते थे।

मेरा 'एकाडेमिक लाइफ' पहले ढाका में व्यतीत हुआ, बाद में चार वर्ष (१९०६-१९१० ई०) जयपुर में। यहाँ भी कई प्रसंगों में शील महाशय

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

की ज्ञान गरिमा के बारे में बराबर सुनता रहा। रह रहकर उनका दर्शन पाने की इच्छा मेरे मन में होती थी।

जिन दिनों मैं जयपुर में पढ़ता था, उन दिनों हमारे बी० ए० क्लास के अंग्रेजी के आध्यापक थे—नवकृष्ण राय। आप खूब बढ़िया पढ़ाते थे। शेक्सपीयर और मिल्टन के बारे में आप अच्छी तरह पढ़ाते थे। अनेक सन्दर्भ देकर विषय को समझाते थे। आपकी हस्तलिपि अच्छी थी। आपसे पहले परिचय नहीं हुआ था, क्योंकि फर्स्ट इयर में पण्डित सूरजनारायण शर्मा पढ़ाते थे और नव बाबू सेकेण्ड इयर के छात्रों को।

एक दिन नव बाबू के साथ परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला। अस्वस्थ हो जाने के कारण उस दिन सूरज नारायणजी कालेज नहीं आये थे। फलतः उनके स्थान पर नवकृष्ण बाबू पढ़ाने आये। नवागत छात्र को देखकर वे मेरे प्रति आकृष्ट हुए। मेरी योग्यता की परीक्षा लेने के लिए वर्डसवर्थ की एक सॉनेट की व्याख्या करने को कहा।

हेरम्ब मैत्र महाशय ढाका जगन्नाथ कालेज में अंग्रेजी के अध्यापक थे। वर्डसवर्थ-तथा एमरसन के बारे आपका विशेष ज्ञान था। टेनिसन एवं 'पासिगं आफ आर्थर' के बारे में वे नोट्स लिखवाते थे, आगे चलकर काम दे सकता है, यह जानकर उसे मैंने हिफाजत से रख छोड़ा था। उनके द्वारा लिखाई गई व्याख्या को सुनकर वे विस्मित हो उठे। क्लास के छात्रों के सामने उन्होंने कहा—"यह इतना सुन्दर है कि इससे अच्छा शायद मैं नहीं बता सकूँगा।"

यहीं से नव बाबू के साथ मेरी घनिष्ठता बढ़ी। इस परिचय का परिणाम यह हुआ कि मुझे १५० रुपये वजीफा मिले, इसके लिए उन्होंने प्रिंसिपल को पत्र लिखा। सिफारिश काम कर गयी और फर्स्ट इयर से मुझे वजीफा मिलने लगा। वे मेरी पढ़ाई-लिखाई, खासकर अंग्रेजी साहित्य के व्यापक अध्ययन के बारे में बराबर प्रशंसा करते थे। उनका घर मेरे निवास स्थल के समीप था। फलतः मैं बराबर उनके निकट जाया करता था।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नव बाबू ब्रजेन्द्र शील महाशय के छात्र थे और बड़े प्रिय छात्र थे। ब्रजेन्द्र बाबू जिन दिनों बहरमपुर कालेज के प्रिंसिपल थे, उन्हीं दिनों नव बाबू छात्र थे। यह बात उन दिनों की है जब वे कूचबिहार नहीं गये थे। नव बाबू ने शील महाशय के लेखों के बारे में चर्चा करते हुए कहा कि अगर सम्भव हो तो मैं उनके लेखों को पढ़ूँ। उस लेख का नाम था—'न्यू रोमाण्टिक मूवमेण्ट इन बेंगाली लिटरेचर'। उनका यह लेख 'कैलकटा रिव्यू' (१८९१-९२) में प्रकाशित हुआ था। सुना था कि एम० ए० पास करने के कई साल बाद उन्होंने इस लेख को लिखा था। मैं जयपुर पुस्तकालय का सदस्य था। वहाँ से पत्रिका का वह अंक लाकर पढ़ा और प्रसन्न हो गया। निस्सन्देह उनकी रचना-शक्ति अद्भुत थी। उक्त लेख में हरप्रसाद शास्त्री की 'वाल्मीकि की जय' और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्राथमिक रचनाओं की प्रशंसा की गयी थी। आपकी अंग्रेजी भाषा पढ़कर कुछ लोग 'जानसेनीय' की संज्ञा देते थे। पर आपकी सरल भाषा का प्रयोग उनके पत्रों में देखने में आया था। उनके पत्रों का कोई संकलन देखने में नहीं आया है, पर नव बाबू के पास रखे पत्रों को मैं देख चुका था।

इन पत्रों की भाषा उनके लेखों की भाषा से अलग-थलग है, अत्यन्त सरल और प्रांजल। दिल की गंभीर वेदना उससे प्रगट होती थी। एक पत्र देखा था जिससे यह ज्ञात हुआ की कई वर्षों बाद वे जीवन के पचास वर्ष पूर्ण कर लेंगे और तब प्राचीन पद्धति के अनुसार 'वनं व्रजेत्' यानी सक्रिय जीवन से अवकाश ग्रहण कर लेंगे। मैंने उनके कितने पत्र देखे, उन सभी में एक बात पर गौर किया तो लगा सभी में विषाद के स्वर थे। मुझे आज याद है कि उन्होंने एक पत्र में लिखा था—'फल हीन वृक्ष के नीचे रोने गाने से क्या वह फलेगा ?'

यद्यपि नव बाबू उनके छात्र थे तद्यपि उनके साथ पत्राचारे दिल खोलकर करते थे। अपने मन की सारी वेदनाओं का जिक्र करते थे। बहरमपुर रहते समय नव बाबू पण्डित शशधर तर्कचूड़ामणि के शिष्य थे।

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(शशधर तर्कचूड़ामणि के बारे में रामकृष्ण कथामृत में चर्चा है।) वे बड़े कट्टरपन्थी, निष्ठावान, सदाचारी हिन्दू थे। दूसरी ओर शील महाशय कठोर ब्राह्म थे, फिर भी भाव-राज्य में दोनों का मिलन हुआ। शशधर तर्कचूडामणि की धर्म व्याख्या पर शील महाशय बराबर कटाक्ष करते थे, फिर भी नव बाबू के साथ उनकी आन्तरिक अन्तरंगता थी, इसमें कोई सन्देह नहीं।

नव बाबू प्रायः कहा करते थे—"तुम ब्रजेन्द्र शील और तर्कचूड़ामणि के साथ अवश्य भेंट करना। ये दोनों व्यक्ति मेरे जीवन के आदर्श हैं। मुझे आशा है ये तुम्हारे जीवन को भी प्रभावित करेंगे।"

सच तो यह है कि उन दिनों मैं विशिष्ट पुरुषों के दर्शन करने के लिए लालायित रहता था। इलाहाबाद में परीक्षा समाप्त कर जयपुर से घर वापस आते समय कलकत्ता आया। ब्रजेन्द्रनाथ शील महाशय से मिलकर यह जानकारी प्राप्त करनी थी कि एम० ए० में कहाँ भर्ती होना उचित होगा ? यह मई-जून की बात है।

शील महाशय राममोहन साहा स्ट्रीट स्थित अपने भवन में रहते थे। उनके भवन में प्रवेश करते समय भय सा अनुभव हुआ। लगा—'इतने बड़े विश्व विख्यात् ज्ञानी के पास जा रहा हूँ' उनके सामने तो मैं नगण्य विद्यार्थी मात्र हूँ। क्या कहूँगा ? बहरहाल बड़े साहस के साथ भीतर चला गया। भोतर आकर बैठक में देखा—चौकी पर गलीचा बिछा है। एक मसनद के सहारे एक व्यक्ति आराम कर रहा है। वे जाग रहे थे। इन्हें देखते ही समझ गया कि मेरे अभीष्ट शील महाशय आप ही हैं। उनके दीर्घ श्मश्रु, प्रसन्न आकृति से लगता था कि आप एक प्राचीन वयस्क पुरुष हैं। गर्मी का मौसम होने के कारण नंगे बदन थे।

मुझे देखते ही उन्होंने पूछा कि कहाँ से आ रहे हो। उत्तर में मैंने जयपुर कहने के बाद अपना परिचय पत्र दिया। पत्र को बिना खोले ही, केवल हस्तलिपि देखते ही उन्होंने कहा—"यह तो नव का पत्र है।"

दो-चार लाइनें पढ़ने के बाद वे ठहर गये। मैंने गौर किया कि उनके

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चेहरे की रंगत बदल गयी है। मेरी ओर स्नेह से देखते हुए बोले—"तुम वैकुण्ठ के लड़के हो ? तब नव के पत्र की क्या जरूरत थी ? वैकुण्ठ तो मेरा मित्र था।"

इतने दिनों से मेरे मन में उद्दीपन के अभाव में प्रसुप्त भाव था, उस दिन पिताजी की बातें सुनकर पुनः जग उठा। मुझे लगा कि दोपहर का भोजन के करने के बाद वे विश्राम कर रहे थे। मुझे पाकर वह भाव दूर हो गया। वे उठकर बैठ गये। उन्होंने मेरी विधवा माँ के बारे में पूछा। उनकी सहृदयता देखकर मेरी आशंका और संकोच दूर हो गया। लगा जैसे वे मेरे अपने हैं। यहाँ संकोच करने की आवश्यकता नहीं है।

इसके बाद अनेक बातें हुईं। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा—'तुम एक बार जानकी से मिल लेना। वे तुम्हारे पिता के मित्र थे।" इतना कहने के बाद उन्होंने जानकी बाबू के नाम एक पत्र लिखकर दिया।

जानकी बाबू यानी सुप्रसिद्ध अध्यापक जानकीनाथ भट्टाचार्य उन दिनों रिपन कालेज में पढ़ाते थे। प्राथमिक परिचय के बाद बातें होती रही। प्रश्नों के बारे में कोई योजना नहीं थी। मन में जो आ रहा था, पूछ बैठता था।

उन दिनों मैं ब्राउनिंग को खूब पढ़ता था। केवल राबर्ट ब्राउनिंग ही नहीं, एलिजाबेथ बैरेट ब्राइनिंग को भी पढ़ता था। पूछा—"ब्राउनिंग यद्यपि काफी कड़े हैं, पर मुझे शेली, कीट्स और बायरन अधिक पसन्द हैं। वर्डसवर्थ की तो बात ही अलग है। इन लोगों की कविता ब्राउनिंग की तरह कठिन नहीं हैं। ब्राउनिंग को कविताएँ कठिन होने पर भी अच्छी लगती है।"

उन्होंने कहा—"सचमुच वह कठिन है। ब्राउनिंग के बारे में उनके यहाँ आलोचना की अनेक पुस्तकें हैं। तुम ब्राउनिंग इनसाइक्लोपीडिया देख सकते हो। इससे तुम्हें मदद मिलेगी।"

इसके बाद मैंने पूछा—"अरविन्द घोष के बारे में आपके क्या विचार हैं ?"

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उन्होंने कहा—"अरविन्द एक ओर पोयेट, प्रॉफेट और फिलॉस्फर है।"

मैंने पूछा—"उनके वासुदेव-दर्शन के बारे आपकी क्या राय है? उन्होंने 'कारा कहानी' नामक जो लेख लिखा था, क्या आपने उसे पढ़ा है? उसमें अपने वासुदेव-दर्शन की बातें लिखी है। इस बारे में आपकी क्या राय है?"

उन्होंने कहा—"इसमें मेरी राय क्या है? उन्हें दर्शन मिला है, यही उन्होंने कहा है, इसमें अविश्वास की बात कहाँ है? यह असम्भव बात नहीं है।"

मैंने कहा—"इतिहासकार श्रीकृष्ण की ऐतिहासिकता स्वीकार नहीं करते।"

शील महाशय ने हँसते हुए कहा—"क्राइस्ट की ऐतिहसिकता के बारे में काफी लोग सन्देह प्रकट करते हैं। इससे क्या बड़े-बड़े सन्त तथा सन्त टेरेसा का ईसा-दर्शन असत्य प्रमाणित हुआ है? ऐसा नहीं हो सकता। पृथ्वी पर अवतीर्ण होकर शरीर धारण न करने पर भी उनकी आत्मा दर्शन दे सकती है। ऐतिहासिक श्रीकृष्ण और तत्वरूपी श्रीकृष्ण दोनों अलग-अलग हैं। उनके प्रति जिसकी जैसी भावना हो, वह वैसा देखेगा। विश्व के आध्यात्म-साहित्य में इसके उदाहरणों की कमी नहीं है। सभी साधु पुरुष क्या झूठे होते हैं—ऐसा नहीं होता। साधक की भावना के अनुसार परमशक्ति आकार धारण कर प्रकट हो सकते हैं।"

इसके बाद परलोकगत आत्माओं के बारे में मैंने प्रश्न किया।

प्रत्युत्तर में आपने कहा—"संसार के अनेक देशों में परलोकगत आत्माओं के अस्तित्व पर खोजें हो रही हैं और इस बारे में कुछ घटनाओं का प्रकाशन किया गया है। फोटो भी लिए गये हैं। पहले मैं इस पर विश्वास नहीं करता था। अब विश्वास हो गया हैं। अपने जीवन की एक घटना तुम्हें बता रहा हूँ। कुछ दिन हुए मेरी पत्नी की मृत्यु हुई है। वे ही घर की सर्वेसर्वा थीं। घर-गृहस्थी के सारे कागजात उनके पास

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

थे। मैं इस ओर से उदासीन था। अचानक वे अस्वस्थ हो गयीं और दो-तीन दिन बाद उनकी मृत्यु हो गयी। कुछ दिनों बाद मकान के कागजों की खोज होने लगी। सभी जगह देखे गये, पर सारा श्रम व्यर्थ हो गया। रात को स्वप्न में पत्नी को देखा। उन्होंने कहा—'इसके लिए चिन्तित क्यों हो ?' कहने के साथ ही किस आलमारी के किस कोने में सारे कागजात रखे हैं, बताती रहीं। यहाँ तक कि उक्त स्थान को दिखाया भी। दूसरे दिन सारे कागज वहीं प्राप्त हुए।"

इसके बाद उनसे कोई बातचीत नहीं हुई। अपनी लिखित दो-तीन पुस्तकें उपहार स्वरूप देते हुए उन्होंने कहा कि इसे कलकत्ता में पढ़ लेना। कलकत्ता में रिसर्च करने की जितनी सुविधाएँ हैं, उतनी अन्यत्र नहीं है।

आचार्य शील से हुई यह मुलाकात मेरे लिए स्मरणीय है। संसार के जाने-माने विद्वान का कितना सुन्दर व्यवहार रहा है। उन दिनों मैं विद्यार्थी था,। फिर भी मेरे साथ वे जिस अन्तरंगता से बातें करते रहे, उससे मैं मोहित हो गया था।

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDAL
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No.....8596.....

S.J.V.J. PRATISHTHAN
LIBRARY
Jangamawadimath, Varanasi
Acc. No 143

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDAL
LIBRARY
Jangamwadi Math, Varanasi
ACC No.....

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अध्यात्मपरक साहित्य

महामानव महावीर	डॉ. गुणवन्त शाह
करुणामूर्ति बुद्ध	डॉ० गुणवन्त शाह
मनीषी की लोकयात्रा (म०म०पं० गोपीनाथ कविराज का जीवन-दर्शन)	डॉ० [illegible]वतीप्रसा[illegible] सिंह
सूर्य-विज्ञान प्रणेता योगिराजाधिराज स्वामी विशुद्धानन्द परमहंसदेव : जीवन और दर्शन	नंदलाल[illegible] गुप्त
ज्ञानगंज	पं० गोपीनाथ कविराज
साधुदर्शन एवं सत्प्रसंग (भाग : 1-2)	पं० गोपीनाथ कविराज
साधुदर्शन एवं सत्प्रसंग (भाग : 3)	पं० गोपीनाथ कविराज
शक्ति का जागरण और कुण्डलिनी	पं० गोपीनाथ कविराज
श्रीसाधना	पं० गोपीनाथ कविराज
दीक्षा	पं० गोपीनाथ कविराज
सनातन साधना की गुप्तधारा	पं० गोपीनाथ कविराज
अखण्ड महायोग	पं० गोपीनाथ कविराज
योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी	सत्यचरण लाहिड़ी
योग एवं एक गृहस्थ योगी : योगिराज सत्यचरण लाहिड़ी (प्रपौत्र महायोगी लाहिड़ी महाशय)	शिवनारायण लाल
योगिराज तैलंगस्वामी	विश्वनाथ मुखर्जी
भारत के महान योगी (1 से 10 खण्ड)	विश्वनाथ मुखर्जी
प्रकाशपथ का यात्री	डॉ० भानुकुमार नायक
मारणपात्र (योगी साधकों तथा तांत्रिकों के चमत्कार)	अरुणकुमार शर्मा
जपसूत्रम (द्वितीय खण्ड)	स्वामी श्री प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती
कृष्ण और मानव सम्बन्ध	हरीन्द्र दवे
ब्रह्मर्षि देवराहा-दर्शन	डॉ० अर्जुन तिवारी
उत्तराखण्ड की सन्त परम्परा	गिरिराज शाह
सोमबारी महाराज	हरिश्चन्द्र मिश्र

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

मूल्य : पचास रुपये

CC0. In Public Domain. Jangamwadi Math Collection, Varanasi